Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बदलता युग

(देवयानी)

Ramew

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बदलता युग

(देवयानी)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

Badalta Yug

बदलता युग

(देवयानी)

उपन्यासकार

यज्ञदत्त शर्मा

Yagya Dutt Sharma

साहित्य-प्रकाशन

नई सड़क, मालीवाड़ा, दिल्ली

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आर्यों और अनार्यों में संघर्ष चल रहा था। अनार्य आर्यों पर विजय प्राप्त करते जा रहे थे। आर्य राजे यह देखकर भयभीत हो उठे। उन्हें अपने विनाश की आशंका होने लगी।

उस समय आर्य-दल के संगठक ययाति थे और अनार्य दल के संगठक वृषपर्वा। दोनों बहुत पराक्रमी राजा थे। वृषपर्वा के गुरु शुक्राचार्य थे। शुक्राचार्य अपने समय के महान् राजनीतिज्ञ, समाजशास्त्री और धर्माचार्य थे। उन्होंने अनार्य राज्यों को संगठित कर आर्य-शक्ति को त्रस्त कर दिया। अनार्यों की विजय-पताकाएँ देश के कोने-कोने में फहराती दिखाई दीं तो आर्यों के दिल बुझने लगे।

आर्यों के राज्याचार्य गुरु वृहस्पति थे। वह धर्मनीति के प्रकाण्ड पंडित और समाजशास्त्र के आचार्य थे, परन्तु राजनीति में प्रवेश करने की उनकी प्रवृत्ति नहीं थी। इसलिये वह शुक्राचार्य से पराजित हो रहे थे। वृहस्पति को इससे हार्दिक पीड़ा और ग्लानि हुई। उन्होंने आर्य-राजाओं की एक सभा का आयोजन किया, जिसमें देश के सभी आर्य-राजाओं, विद्वानों तथा सम्मानित व्यक्तियों ने भाग लिया।

आचार्य वृहस्पति ने सभा में खड़े होकर कहा, "आर्यजनो! आज की इस सभा का आयोजन आर्यों के सामने प्रस्तुत एक विकट समस्या को सुलझाने का उपाय खोजने के लिये किया गया है।

आप देख रहे हैं, कि अनार्य-शक्ति देश में बलवती होती जा रही है। आर्य राजे जहाँ जाते हैं, परास्त होते हैं। उनकी धन-जन-शक्ति का ह्रास हो रहा है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

यह सब आप जानते हैं किस लिये ? मेरी कमी के कारण। मैं अपनी दुर्बलता आप लोगों से छिपाकर नहीं रखना चाहता। मैं नहीं चाहता कि आप लोग अन्धकार में रहें और मैं वर्त्तमान स्थिति में भी आपका आचार्य-पद ग्रहण किये रहूँ।"

आचार्य वृहस्पति ने अपनी इतनी कटु आलोचना पहिले कभी नहीं की थी। अपनी भूलों को स्वीकार करने का महान् गुण उनमें अवश्य था और अपने आचार्यत्व के आवरण में उन्होंने कभी अपनी दुर्बलताओं को छिपाने का प्रयास नहीं किया, परन्तु आज उनका जो रूप सामने आया उसे देखकर सभा में उपस्थित जन स्तब्ध रह गये। उन्हें आशंका होने लगी कि कहीं इस परिस्थिति में आचार्य-पद त्याग न करदें और उन लोगों का, जो थोड़ा-बहुत सहारा है वह भी छिन जाये।

सभा में सन्नाटा छागया। महाराज ययाति आचार्य वृहस्पति के तेजस्वी चेहरे पर आँखें गड़ाकर बोले, "आचार्य ! आपके इस कथन ने आर्य-जनों को हतोत्साहित कर दिया। क्या आप अपना संरक्षण हम लोगों के सिर से उठा लेना चाहते हैं ?"

सभा में उपस्थित आर्यजनों के चेहरों पर व्याप्त उद्विग्नता, भय और चिंता का अध्ययन कर आचार्य वृहस्पति बोले, "मेरे इस सत्य कथन से आप लोग भयभीत हो उठे। यह भयभीत होने की बात नहीं, अपनी दुर्बलता को समझने और उसे दूर करने का उपाय खोजने की बात है।

मैं धर्म नीति का आचार्य हूँ और धर्म-नीति के अन्तर्गत विश्व की सब नीतियाँ समाविष्ट हैं। सब नीतियों का जन्म धर्म-नीति से ही हुआ है।

"आज की सभा का आयोजन धर्म-नीति के आधार पर किया गया है। मैं उसीका पालन करता हुआ उस समय तक आर्य-संगठन का संचालन करता रहूँगा जब तक शरीर में प्राण शेष हैं। धर्म की सर्वदा विजय होती है। आपकी भी विजय होगी। धर्म-नीति के सामने राज-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

नीति नहीं ठहर सकती, परन्तु देश और काल की परिस्थिति के अनुसार उसका भी ज्ञान आवश्यक है।"

आचार्य वृहस्पति के इन शब्दों ने आर्यों के निराशापूर्ण जीवन में आशा का संचार किया। उनके मस्तिष्क में पैदा होने वाली चिन्ता दूर हुई और सबने एक स्वर में आचार्य वृहस्पति का जयनाद किया। सबके नेत्रों में आशा झलक उठी।

सभा के एक कोने में बैठा आचार्य वृहस्पति का पुत्र कच अपने पिता के कथन को बड़े ध्यान से सुन रहा था। वह उनके मस्तिष्क में पैदा होने वाली समस्या का अध्ययन कर रहा था।

आचार्य वृहस्पति बोले, "उपस्थित आर्यजनो! इस समस्या को सुलझाने के लिये मुझे एक ऐसे ब्रह्मचारी की आवश्यकता है जो हमारी धर्म और समाज-नीति का प्रकांड पंडित हो। उसे अपना जीवन इस समस्या के अग्निकुण्ड को समर्पित करना होगा। आप लोगों में कोई ऐसा वीर है, जो उठकर सामने आये?"

सभा में निस्तब्धता छा गई। सब एक-दूसरे का मुँह ताकने लगे। किसी में यह साहस नहीं हुआ कि वह स्वयं को इस अग्नि-कुण्ड के समर्पित कर सके।

"मैं आर्य-जाति के उद्धार के लिये स्वयं को अग्नि-कुण्ड में आहूत करने के लिए उद्यत हूँ पिताजी! आज्ञा दीजिये, मुझे क्या करना होगा?" आचार्य वृहस्पति के पुत्र कच ने कहा।

"इस महान् कार्य के लिये अपने इकलौते पुत्र कच को खड़ा देखकर आचार्य वृहस्पति का हृदय पुष्प के समान खिल उठा। सभासदों ने हर्षोल्लास के साथ कच को अपने कंधों पर उठा लिया। महाराज ययाति ने सहर्ष अपने कंठ में पड़ा हार उतार कर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ब्रह्मचारी कच के गले में डालकर कहा, "आर्य-भूमि त्यागी-तपस्वियों से रिक्त नहीं हुई है आचार्य ! अपने मित्र कच को इस महान् यज्ञ में आहूति देने को प्रस्तुत देखकर मेरे हर्ष का पारावार नहीं रहा।"

आचार्य वृहस्पति गम्भीर वाणी में बोले, "पुत्र कच ! तुमने इस महान् यज्ञ में अपनी आहूति देने का संकल्प कर मेरा मस्तक आर्य-जगत् के समक्ष सर्वदा के लिये उन्नत कर दिया। मुझे गर्व है कि तुम जैसा त्यागी-तपस्वी वीर मेरा पुत्र है। जब तक विश्व में आर्य-संस्कृति रहेगी, तुम्हारे त्याग, तपस्या और विवेक का सूर्य दमदमाता रहेगा।"

पिता के मुख से आशीर्वाद ग्रहण कर ब्रह्मचारी कच घुटने टेक कर, आचार्य वृहस्पति के सामने हाथ जोड़कर बोला, आपके आशीर्वाद से मैं आपकी आज्ञा का पालन करने में समर्थ हूँगा। मैं आपकी आज्ञा सुनने के लिये उत्सुक हूँ। आचार्य अपने प्रिय पुत्र तथा शिष्य को आज्ञा करें, उसे क्या करना है ?"

आचार्य बोले, "प्रिय पुत्र कच ! तुम्हें शुक्राचार्य के आश्रम में उनका शिष्य बनकर, राजनीति का अध्ययन करना है। तुम्हें वहाँ से संजीविनी विद्या ग्रहण कर आर्यों का उद्धार करना है।

तुम्हारे इस कार्य से आर्य-संस्कृति का पुनरुत्थान होगा। ह्रासोन्मुख आर्य-जाति उन्नत दशा को प्राप्त होगी। आर्यों की विजय होगी, धर्म की रक्षा होगी और देश में सुख तथा शांति के साम्राज्य की स्थापना होगी।

तुम्हें उनके आश्रम में रहकर पूर्ण ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करना होगा।"

ब्रह्मचारी कच ने आदरपूर्वक अपने पिता के चरण छुए। मित्र ययाति के कंठ में अपनी बाँहें डालकर सप्रेम-भेंट की और उपस्थित आर्य-जनों को सादर प्रणाम करके यात्रा पर चल दिये। आर्य-समुदाय बहुत दूर तक उन्हें छोड़ने के लिये उनके साथ गया और अन्त में उन्हें विदा करके वापस लौटा।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

२

ब्रह्मचारी कच के मन में असीम उत्साह था। उनके सामने आर्य-जाति के उद्धार का लक्ष्य था।

ब्रह्मचारी कच बीहड़ वनों में भयंकर जानवरों के बीच से होते हुए अपने मार्ग पर आगे बढ़ रहे थे। गहन वन, गिरि, काननों को पार करते हुए वह कई मास की कठिन यात्रा के पश्चात् एक दिन प्रातःकाल एक पर्वत-शिखर पर पहुँचे। वह बहुत थक गये थे। इधर कई दिन से उनकी यात्रा ऐसे वनों के बीच हुई थी कि उन्हें कोई खाद्य-वस्तु प्राप्त न हो सकी।

वह विश्राम करने के लिये एक शिला पर लेट गये। लेटते ही उन्हें नींद आ गई। जब उठे और पूर्व दिशा में दृष्टि डाली तो उन्हें एक नगरी दिखाई दी।

वह उठे और नगरी की ओर चल दिये। उन्हें आशा बँधी कि उस नगरी में उन्हें कुछ खाद्य-सामग्री मिलेगी।

भूख और प्यास से कच इतने दुर्बल हो गये थे कि उनके पैर आगे नहीं बढ़ रहे थे। उनका बदन पत्ते के समान वायु के झकोरे खाकर काँप उठता था।

उनका अपने लक्ष्य पर पहुँचने का उत्साह किसी प्रकार कम नहीं हुआ था। उनकी स्फूर्ति में कोई कमी न हुई।

कच कुछ आगे बढ़े तो नगरी के उद्यानों पर से तैर कर आती हुई सुहावनी शीतल पवन ने उनके तप्त बदन को शान्ति प्रदान की। मार्ग की गर्म लुओं के मध्य यात्रा करने से उनका बदन झुलस गया था

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उस शीतल पवन ने कच को एक नये राज्य में प्रवेश करने की सूचना दी।

कच आगे बढ़ते गये। हरे-भरे खेतों और बाग-तड़ागों के बीच यात्रा करने में उन्हें आनन्द आ रहा था। उनकी दृष्टि जहाँ तक गई, उन्हें समृद्धि बिखरी दिखाई दी। फूलों की सुगंधि से वहाँ का सम्पूर्ण वायुमण्डल महक रहा था।

कच को आशा थी कि उस नगरी में पहुँचकर, उन्हें विश्राम करने की सुविधा प्राप्त होगी। दूर से देखने पर वह नगरी उन्हें सुन्दर लग रही थी।

वह साहस के साथ आगे बढ़े और चलते-चलते एक उद्यान के निकट पहुँच गये। उस उद्यान के अन्दर उन्होंने कुछ जल-पक्षी उड़ते देखे, तो सोचा, उसमें निश्चय ही कोई जलाशय होगा। यह अनुमान कर वह उद्यान की ओर बढ़ गये, परन्तु वह थक इतने गये थे कि आगे बढ़ना उसके लिये कठिन हो गया। फिर भी उन्होंने साहस न छोड़ा और अमराइयों के बीच से होते हुए जलाशय की ओर बढ़ चले। कुछ दूर आगे बढ़ने पर उनके पैर लड़खड़ाये और वह अचेत होकर गिर गये।

आचार्य शुक्राचार्य की कन्या देवयानी और महाराजा वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा उद्यान-विहार के लिये वहाँ आई हुई थीं। वे अमराइयों के बीच से निकल कर जलाशय की ओर जा रही थीं। वे थोड़ी आगे बढ़ीं तो उनकी दृष्टि आम्र-वृक्ष के नीचे अचेत पड़े एक व्यक्ति पर गई। देवयानी उसे देखकर उसके पास गई। वह शर्मिष्ठा से बोली, "सखी शर्मिष्ठा! यह यात्री मरु-खण्ड की यात्रा करके आया प्रतीत होता है। देख रही हो, इसका बदन कैसा कृश हो गया है। तुम यहीं

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ठहरो, मैं जलाशय से थोड़ा जल लाकर इसे सचेत करने का प्रयास करती हूँ।"

शर्मिष्ठा ब्रह्मचारी कच के पास रुकगई। उसने कच के गौर वर्ण और सुडौल बदन को देखा तो वह ठगी सी रह गई। कच का उन्नत मस्तक, शुक-जैसी नासिका और चौड़ा वक्षःस्थल उसके हृदय में प्रवेश कर गये।

देवयानी एक पात्र में जल लेकर आ गई और कच के मुख पर छिड़का उसने ताड़-वृक्ष के पत्ते से उन्हें हवा की। थोड़ा जल उनके मुँह में डाला।

शीतल जल और पवन ने ब्रह्मचारी कच को मूर्च्छा से सचेत कर दिया। उन्होंने आँखें खोलीं और शर्मिष्ठा तथा देवयानी को देखा तो उनके आश्चर्य का पारावार न रहा। उन्हें देखकर वह स्तब्ध-से रह गये। उनके हृदय में कृतज्ञता का भाव जाग्रत हो उठा, परन्तु निश्चय न कर सके कि वह भाव किस रूप में व्यक्त करें।

ब्रह्मचारी कच की यह दशा देखकर देवयानी, मधुर वाणी में बोली, "बहुत थक गये हो यात्री! सम्भवतः मरु-प्रदेश की यात्रा करके आरहे हो। तुम भूख-प्यास से विकल प्रतीत होते हो। इस प्रदेश को पार करके आने वालों की यही दशा होती है। बड़ी भयंकर यात्रा है।"

देवयानी के सहानुभूतिपूर्ण शब्दों को सुनकर ब्रह्मचारी कच बोले, "मेरी दशा देखकर आपने सही अनुमान लगाया देवि! इस मूर्च्छा में मुझे पर्याप्त विश्राम मिल गया। मेरे बदन की सब थकान जाती रही। मैं प्यास से व्याकुल होकर जलाशय की ओर जा रहा था।"

देवयानी ने जल-पात्र उनकी ओर बढ़ा दिया। ब्रह्मचारी कच ने थोड़ा जल पिया। जल पीकर उनके बदन में कुछ स्फूर्ति आई। वह

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सरल भाव से बोले, "इस जल ने मेरे बदन की जलन बुझा दी। मेरे अन्दर फिर आगे बढ़ने की शक्ति आगई। अब मैं सुगमतापूर्वक अपने लक्ष्य की ओर बढ़ सकता हूँ।"

ब्रह्मचारी कच का सौन्दर्य देवयानी के नेत्र-द्वारों से उसके हृदय-कक्ष में प्रवेश कर रहा था। वह उनके मुख-मंडल की छवि को एकटक निहार रही थी। उसका हृदय अनायास ही ब्रह्मचारी कच की ओर खिंचता जा रहा था। उसके नेत्र अपलक हो गये। देवयानी को मूर्च्छा-सी आने लगी।

'विधाता की सुन्दर कलाकृति,' देवयानी ने मन में कहा। 'यह कोई देवलोक का प्राणी है।' वह मधुर कंठ से बोली, "क्या मैं जान सकती हूँ कि तुम यह तपस्यापूर्ण यात्रा किस लक्ष्य की प्राप्ति के लिये कर रहे हो?"

ब्रह्मचारी कच बोले, "आपने अपना परिचय दिये बिना मुझसे यह प्रश्न करके मुझे असमंजस में डाल दिया। अपरिचित व्यक्ति के सामने अपना लक्ष्य प्रकट करना नीति-विरुद्ध बात है, परन्तु आपका सद्व्यवहार मुझे आज्ञा देता है कि मैं अपना लक्ष्य आप पर प्रकट करदूँ।

मैं एक ब्रह्मचारी हूँ। मेरा नाम कच है। मैं ज्ञान का जिज्ञासु हूँ। मैंने बहुत से आचार्यों से भेंट की। कोई धर्मनीति का आचार्य मिला कोई समाजनीति का और कोई कोरा राजनीति का। मुझे तीनों नीतियों का सामंजस्य किसी आचार्य में प्राप्त न हो सका। अन्त में एक आचार्य ने अपनी अनभिज्ञता स्वीकार करके मुझसे कहा, 'पुत्र! तुम यदि तीनों नीतियों में निपुण होकर तीनों के सामंजस्य से संजीवनी-शक्ति के अधिकारी होना चाहते हो तो तुम आचार्य शुक्राचार्य के पास जाओ। तीनों नीतियों का ज्ञान तुम्हें उनके अतिरिक्त अन्य कोई आचार्य नहीं करा सकता।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ब्रह्मचारी कच के मुख से अपने पिता की प्रशंसा सुनकर देवयानी गद्-गद् हो गई। उसके मुख पर अद्भुत कांति बिखर गई।

ब्रह्मचारी कच बोले, "मेरा लक्ष्य आचार्य शुक्राचार्य के आश्रम में जाकर उनके गुरु-पद् छूना और विद्यार्थी बनकर अध्ययन-कार्य आरम्भ करना है। गुरु-सेवा से जो ज्ञान प्राप्त होगा उसे मैं ग्रहण करूँगा।"

ब्रह्मचारी के उद्देश्य से परिचित होकर देवयानी के हृदय में अमृत की धारा प्रवाहित होचली। उसे लगा विधाता ने जो गंगा उसकी दिशा में प्रवाहित की है, उसमें स्नान करके वह तृप्त होगी। उसके हृदय में मधुर प्रेम का संचार हुआ। उसके रूप की कांति में निखार आगया। वह मुग्ध होकर बोली, "ब्रह्मचारी कच! तुम अपनी तपस्या-पूर्ण यात्रा तय करके लक्षित स्थान पर पहुँच चुके हैं। इस समय तुम आचार्य शुक्राचार्य के आश्रम की पुण्य-भूमि में खड़े हैं। यह उद्यान उसी आश्रम का एक भाग है। उनका आश्रम मीलों तक फैला हुआ है।" इतना कहकर देवयानी एक क्षण मौन रहकर बोली, "मैं आचार्य शुक्राचार्य की कन्या देवयानी हूँ और यह मेरी सखी, यहाँ के महाराजा वृषपर्वा की सुपुत्री, शर्मिष्ठा हैं।"

देवयानी की बात सुनकर ब्रह्मचारी कच के बदन की शेष थकान भी जाती रही। उसमें नवीन स्फूर्ति का संचार हुआ। उनका हृदय आशा से भर गया। उनका उन्नत मस्तक और विशाल नेत्र आकाश की ओर उठ गये। उनकी भूख-प्यास अनजाने ही जाने कहाँ चली गई। वह देवयानी के सुन्दर मुखमण्डल पर दृष्टि पसार कर सरल वाणी में बोले, "ब्रह्मचारी कच आचार्य शुक्राचार्य की पुत्री को सादर प्रणाम करता है और साथ ही महाराजा वृषपर्वा की रूपवती सुपुत्री शर्मिष्ठा को आदर प्रदान करता है।"

ब्रह्मचारी कच के इस वाक्य को सुनकर देवयानी आत्मविभोर हो गई। उसका हृदय अबाध गति से ब्रह्मचारी की ओर खिंचने

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

लगा। उसके मन में मिठास-सा भर गया।

सन्ध्या का धूमिल प्रकाश लुप्त हो चुका था। रात्रि का अन्धकार चारों दिशाओं में फैला, परन्तु तभी चाँद निकल आया। चाँदनी रात में देवयानी ने ब्रह्मचारी कच को और कच ने देवयानी को देखा तो दोनों के बदन रोमांचित हो उठे।

शर्मिष्ठा को इन दोनों का यह आकर्षण अच्छा नहीं लगा। वह ब्रह्मचारी कच के देवयानी की ओर आकर्षित होने से कुछ खिन्न सी हो गई। वह स्वयं को देवयानी से अधिक सुन्दर समझती थी। आश्रम में जो अतिथि आते थे, वे सब देवयानी के ही रूप की प्रशंसा करते थे। शर्मिष्ठा के रूप की ओर उनका ध्यान नहीं जाता था। इससे शर्मिष्ठा के चित्त में बहुत अशान्ति पैदा होती थी। वह ऊपरी प्रेम-भाव रखने पर भी देवयानी से मन में द्वेष रखती थी।

शर्मिष्ठा देवयानी से बोली, "देवयानी! बड़ी विचित्र हो तुम। भ्रमर को पुष्प पर मँडराना चाहिये, न कि पुष्प ही भ्रमर की परिक्रमा देने लगे।"

शर्मिष्ठा की बात सुनकर देवयानी तनिक लजा गई। ब्रह्मचारी कच बोले, "मेरी उपमा राजकन्या ने भौंरे से दी, परन्तु इस नगरी में प्रवेश करने से पूर्व मैं स्पष्ट करदूँ कि यह रूप पर मँडराने वाला भौंरा नहीं है। यह भौंरा तो विधाता के अलौकिक रूप को देख रहा है। यह प्रकृति के असीम सौंदर्य को देखरहा है और देख रहा है आचार्य-कन्या के रूप में दोनों के सामंजस्य को। विधाता की इस प्रतिमा का रूप वन्दनीय है। यह रूप विधाता की अनुपम कला का दिग्दर्शन कराता है।

राजकन्ये! सच कहो, क्या यह उद्यान में बिखरी चंद्रिका तुम्हारी सखी के मुख की आभा नहीं है? मैं स्वप्न नहीं देख रहा। मैंने जीवन

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

में कभी स्वप्न नहीं देखा। मैंने जो देखा है वह प्रत्यक्ष देखा है और विधाता का वही रूप इस समय मेरे सामने है।"

ब्रह्मचारी कच द्वारा देवयानी के रूप की प्रशंसा सुनकर शर्मिष्ठा अन्दर से जल-भुन गई। देवयानी के रूप को वह रूप नहीं गिनती थी। उसे देवयानी का रूप अपने रूप के सामने हेय प्रतीत होता था। उसे उन अंधे दर्शकों की दृष्टि पर दया आती थी जो उसकी ओर आकर्षित न होकर देवयानी की ओर आकर्षित होते थे। वह सोचती थी कि शायद उसके रूप को पहिचानने की उनमें क्षमता नहीं थी। उनकी साधारण दृष्टि को साधारण रूप ही भाता था। उसके असाधारण रूप पर दृष्टि डालने की उनमें सामर्थ्य नहीं थी।

दिल की जलन को दिल में छिपाकर शर्मिष्ठा मुस्कराकर बोली, "बहिन देवयानी का रूप सचमुच ऐसा ही है ब्रह्मचारी! ज़रा बचकर रहना इससे। इससे यह प्रत्येक भौंरे को अपना लोभी बना लेता है। इस पुष्प पर मँडराकर भौंरा फिर उड़ नहीं सकता। अब तो तुम मँडराते हुए आ ही गये हो इस पुष्प पर। देखती हूँ कैसे मुक्ति पाते हो।"

शर्मिष्ठा की बात सुनकर देवयानी के हृदय में रस की धाराप्रवाहित हो चली। वह गद्-गद् होकर बोली, "सखी शर्मिष्ठा! देख रही हूँ, तुम मर्यादा का उल्लंघन करती जारही हो।"

शर्मिष्ठा हँसकर बोली, "प्रेम कोई मर्यादा नहीं मानता देवयानी! यह मर्यादाविहीन है।"

ब्रह्मचारी कच बोले, "जिसकी कोई मर्यादा नहीं होती शर्मिष्ठा! उसकी सबसे बड़ी मर्यादा होती है। प्रेम का उत्थान जितना सरल है, उसका निर्वाह उतना ही कठिन है।"

ब्रह्मचारी कच की सैद्धान्तिक उक्ति ने शर्मिष्ठा का मुँह बन्द कर दिया। वह चुप होगई।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

देवयानी बोली, "ब्रह्मचारी कच ! हमसे भूल हुई। हम बातों में ऐसे संलग्न होगये कि तुम्हारी भूख-प्यास का ध्यान ही न रहा। चलिये, आश्रम चलें। पिताजी भी प्रतीक्षा में होंगे। हमें यहाँ पर्याप्त विलम्ब हो गया।

तीनों ने उद्यान से आश्रम की दिशा में प्रस्थान किया। राज-पथ आने पर शर्मिष्ठा ठहर गई। विदा होते समय शर्मिष्ठा हाथ जोड़कर बोली, 'ब्रह्मचारी कच ! अनजाने में मुझसे कोई त्रुटि बन पड़ी हो तो क्षमा करना।"

ब्रह्मचारी कच मुस्कराकर बोले, "राजकन्या से कभी कोई त्रुटि नहीं हो सकती। उसकी त्रुटि में भी किसी शुभ कार्य का ही संदेश रहता है।"

ब्रह्मचारी कच की बात सुनकर शर्मिष्ठा का मुख प्रसन्नता से खिल उठा। वह अपने महल की ओर चली गई और ब्रह्मचारी कच तथा देवयानी आश्रम की ओर।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

देवयानी ब्रह्मचारी कच को आश्रम की अतिथिशाला में लेगई। उन्हें एक कुटिया में उनके विश्राम की व्यवस्था करके बोली, "यहाँ थोड़ा विश्राम करो ब्रह्मचारी ! मैं तुम्हारे भोजन की व्यवस्था करती हूँ।"

ब्रह्मचारी कच बोले, "आचार्य-कन्ये ! यहाँ आकर तो भूख न जाने कहाँ चली गई। कुछ देर पूर्व मैं वास्तव में भूख से व्याकुल था, परन्तु अब लगता है भूख है ही नहीं।"

देवयानी मुस्कराकर भोजनशाला की ओर चलीगई। ब्रह्मचारी कच कुटिया से बाहर निकल कर आश्रम की शोभा देखने लगे। प्रकृति का असीम सौंदर्य सिमटकर आश्रम में आगया था। भाँति-भाँति के वृक्ष थे। उनसे लिपटी बेलें उल्लास से झूम रही थीं। वृक्षों और बेलों की पत्तियों के बीच बने झरोखों से निकलकर चाँदनी भूतल पर बिछी थी। कल-कल करके बहने वाले प्रपातों का पानी चाँदनी के प्रकाश में ऐसा प्रतीत होता था, मानो श्वेत कपूर पिघलकर बह चला हो।

बेल-वितानों पर पक्षी विश्राम कर रहे थे। चिड़े-चिड़िये अपने बच्चों को सुलाकर, परस्पर चुहल कर रहे थे। कच की दृष्टि एक ऐसे ही चिड़े-चिड़िया के जोड़े पर पड़ी जो प्रेम-बंधन में आबद्ध होकर एक-दूसरे की चोंच को पकड़कर मधुर चुम्बन लेरहे थे। कच आत्मविभोर हो गये। प्रकृति की क्रोड़ में पक्षियों के इस मधुर मिलन को देखकर उन्हें अपनी सुध-बुध न रही।

कच ने चारों ओर दृष्टि फैलाई तो उन्हें लगा, मानो उस आश्रम में सरस रस की धारा प्रवाहित थी। वहाँ प्रत्येक वस्तु रस-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पूर्ण थी। आनन्द की अलौकिक कल्पना उनके मस्तिष्क में बिखर गई, परन्तु तुरन्त ही वह सतर्क हो गये। उनके कानों में अपने पिता वृहस्पति के शब्द गूँज उठे।

कच ने दो पग आगे बढ़कर देखा, एक गाय खड़ी थी। उसका बच्चा बड़े स्नेह से दुग्ध-पान कर रहा था। माता और पुत्र के सरल स्नेह के प्रतीक थे दोनों। माता को दूध पिलाने और पुत्र को पीने में कितना सुख मिल रहा था।

कच ने वहाँ प्रेमी का प्रेम, माता की ममता और पुत्र का स्नेह देखा। उनके बदन की सब थकान जाती रही।

देवयानी भोजन लेकर आगई। वह उनसे बोली, "भोजन करो ब्रह्मचारी!"

ब्रह्मचारी की दृष्टि देवयानी पर गई तो वह ठगे से रह गये। वह समझ नहीं पाये कि विधाता उस रूप का निर्माण कैसे कर सका। यौवन फूटा पड़ रहा था। देवयानी धीरे-धीरे मुस्करा रही थी।

देवयानी का जो रूप कच ने देखा वह जीवन में प्रथम बार उनके नेत्रों के सामने आया था। उन्होंने विधाता की इस कला-कृति की हार्दिक सराहना की। वह कुछ देर मौन खड़े रहकर उसके रूप को निहारते रहे। फिर सरल वाणी में बोले, "देवयानी! क्या तुम सचमुच इतनी सुन्दर हो?"

देवयानी का यौवन झंकृत हो उठा। उसके बदन का अंग-अंग इठलाकर बल खा गया। उसके नेत्रों की पुतलियों में जाने कैसी मादकता भर गई। वह उसे सँभाल न सकी। उसने ब्रह्मचारी के बदन पर दृष्टि डाली तो वह फिसलती चली गई और फिर टिकी तो कच के नेत्रों पर जाकर।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ब्रह्मचारी कच ने देवयानी के बदन में उठने वाले झंझावात को देखकर गम्भीरतापूर्वक कहा, "देवयानी ! रूप और यौवन प्रदर्शन की वस्तु नहीं हैं।"

"जानती हूँ ब्रह्मचारी !" देवयानी बोली, "परन्तु जिसने यह रूप और यौवन का उभार दिया है उसके सामने भी क्या तुम इसे प्रदर्शन कहोगे ? क्या यह सरिता का सरल प्रवाह नहीं है ? क्या इसमें प्रेम का स्वच्छ रूप प्रस्फुटित नहीं हो रहा है ? क्या ये तरंगें स्वाभाविक नहीं हैं ?"

ब्रह्मचारी कच मौन हो गये। वह देवयानी के आत्मसमर्पण की हृदय से सराहना करके बोले, "देवयानी ! इतना शीघ्र क्या तुम सच-मुच इतनी आगे बढ़गईं ? तुम्हें सोच-समझकर चलना चाहिये। परदेशी से क्या प्रीति ?"

देवयानी बोली, "परदेशी जब अपने देश में आ गया तो परदेशी कैसे रहा ब्रह्मचारी ?"

कच बोले, "अच्छा लाओ, भोजन कराओ, भूख लगी है।"

देवयानी सचमुच भूल ही गई थी कि वह उनके लिये खाना लिये खड़ी थी। उसने कुटिया में आसन के निकट पत्तल रखकर कहा, "पहिले तुम भोजन करो ब्रह्मचारी !"

ब्रह्मचारी कच ने भोजन करना आरम्भ किया। वह थोड़ा खाकर बोले, "भूल हुई देवयानी ! मैंने तुमसे तो पूछा ही नहीं।"

देवयानी ब्रह्मचारी कच को भोजन करते देखकर मुग्ध हो रही थी। वह बोली, "तुम पेट भर खालो ब्रह्मचारी ! तुम्हारी भूख कई दिन की है। कुछ बचेगा, तो मैं भी खालूंगी।"

ब्रह्मचारी का हाथ रुक गया। उन्होंने पूछा, "कुछ बचेगा तो तुम

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भी खालोगी ! यह क्यों कहा देवयानी ?"

देवयानी मुस्कराकर बोली, "कुछ नहीं। आज हमें उद्यान से लौटने में देर होगई थी ना ! रसोइये ने एक पत्तल पर मेरा भोजन लगाकर चौका उठा दिया। तुम आनन्दपूर्वक भोजन करो, मुझे भूख नहीं है। मैंने दोपहर को बहुत खा लिया था।"

ब्रह्मचारी मुस्करा दिये, देवयानी की बात सुनकर वह पत्तल पर रखे फल देवयानी की ओर बढ़ाकर बोले, "लो, ये तुम खालो देवयानी ! वरना तुम कहोगी कि आज न जाने कहाँ का एक भूखा तुम्हारे आश्रम में आकर तुम्हारा सब भोजन खा गया।"

देवयानी बोली, "तुम खाओ ब्रह्मचारी, मैं सच कह रही हूँ, मुझे तनिक भी भूख नहीं है।"

ब्रह्मचारी कच मुस्कराकर बोले, "मैं पर्याप्त भोजन कर चुका देवयानी ! ये फल तुम खालो।"

देवयानी फल लेकर बोली, "लाओ मैं भी खा लेती हूँ। तुम भी खाओ, ये हम दोनों के लिये पर्याप्त होंगे।"

देवयानी फिर बोली, "अच्छा कच, एक बात बताओ।"

"क्या ?" ब्रह्मचारी कच ने पूछा।

"तुम यहाँ कब आये ?" देवयानी बोली।

ब्रह्मचारी कच ने कहा, "आज, अभी कुछ देर पूर्व।"

"फिर मुझे ऐसा क्यों लग रहा है कि तुम तभी से यहाँ रह रहे हो जब से मैं यहाँ रहती हूँ।" देवयानी ने पूछा।

ब्रह्मचारी कच बोले, "ज्ञात नहीं तुम्हें ऐसा क्यों लग रहा है देवयानी ! सत्य तो वही है जो मैंने कहा। तुम्हारे यह कहने से कुछ भ्रम सा मुझे भी होने लगा है। इतने कम सम्पर्क में हम लोग इतने निकट आगये, यह विचित्र बात है।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भोजन के पश्चात् देवयानी खड़ी होती हुई बोली, "सोने का समय होगया। काफी रात व्यतीत होगई। हम लोगों ने बातों में बहुत समय निकाल दिया। तुम अब विश्राम करो। मैं अपनी कुटिया में जाती हूँ।"

देवयानी ने ब्रह्मचारी कच को प्रणाम करके विदा ली।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दूसरे दिन प्रातःकाल नित्य-कर्म से निवृत्त होकर देवयानी ब्रह्मचारी कच के पास आई। तब तक कच स्नान-संध्या इत्यादि से निवृत्त हो चुके थे। देवयानी ने पूछा, "पिताजी के पास चलें ब्रह्मचारी ?"

"मैं तैयार हूँ देवयानी !" खड़े होकर ब्रह्मचारी कच बोले।

देवयानी बोली, "तुम जानते हो कहाँ जा रहे हो ?"

"आचार्य शुक्राचार्य के पास।" ब्रह्मचारी कच ने कहा।

"नहीं, तुम एक अग्नि के विशाल पिण्ड से टकराने जा रहे हो। भयभीत न होना। उस अग्नि-पिण्ड के अन्दर कितनी शीतलता है, यह विरले ही जानते हैं। पिताजी के प्रश्नों का उत्तर तुम जो उचित समझो, निर्भीकतापूर्वक देना। उत्तर सही हुआ तो वह तुम्हारी प्रशसा करेंगे और ग़लत हुआ तो वह उसमें सुधार कर देंगे।" देवयानी बोली।

ब्रह्मचारी कच को अपने पिताजी के स्वभाव से परिचित कराकर देवयानी उन्हें अपने पिताजी, आचार्य शुक्राचार्य, के पास ले गई। ब्रह्मचारी कच ने आगे बढ़कर आचार्य के चरण छूकर सादर प्रणाम किया।

आचार्य शुक्राचार्य बोले, "आसन ग्रहण करो ब्रह्मचारी।"

ब्रह्मचारी कच उनके सामने आसन पर बैठ गये।

"तुम यहाँ किस लिये आये हो ?" आचार्य ने पूछा।

"धर्मनीति, समाजनीति और राजनीति की शिक्षा प्राप्त करने। मैंने सम्पूर्ण देश का पर्यटन किया और अनेकों आचार्यों से भेंट की, परन्तु ऐसा कोई आचार्य न मिला, जो तीनों नीतियों में सामंजस्य स्थापित कर संजीवनी शक्ति का ज्ञान करा सके।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मुझे एक आचार्य से ज्ञात हुआ कि यह विद्या आपके अतिरिक्त अन्य किसी के पास नहीं है। मैं इसी अभिप्राय को लेकर आपकी सेवा में उपस्थित हुआ हूँ।"

ब्रह्मचारी कच की बात सुनकर आचार्य शुक्राचार्य का मुख रक्तिम होगया। उनके मन में ब्रह्मचारी कच के प्रति शंका उत्पन्न हुई। उन्होंने क्रोधपूर्ण दृष्टि से उनकी ओर देखा।

ब्रह्मचारी कच पर उनकी इस आकृति का कोई प्रभाव न हुआ। वह उसी प्रकार सरल दृष्टि से उनकी ओर देखते रहे।

देवयानी ने अपने पिता की मुखाकृति देखी तो वह भयभीत हो उठी। उसके मन में शंका उत्पन्न हुई कि कहीं वह ब्रह्मचारी कच को अपने आश्रम में रहने की आज्ञा न दें। उसका बदन यह देख कर थर-थर काँपने लगा।

आचार्य शुक्राचार्य बोले, "ब्रह्मचारी! तुम धर्मनीति और समाजनीति सीखना चाहते हो, यह सब ठीक है, परन्तु राजनीति क्यों सीखना चाहते हो?"

ब्रह्मचारी सरल भाव से बोले, "धर्म की रक्षा के लिये।"

ब्रह्मचारी का यह संक्षिप्त उत्तर सुनकर आचार्य शुक्राचार्य का मुख-मंडल खिल उठा। उनके चेहरे पर छाई शंका का भाव तिरोहित हो गया। वह प्रसन्न मुद्रा में बोले, "मैं तुम्हारे उत्तर से बहुत प्रसन्न हुआ ब्रह्मचारी! राजनीति के बिना धर्म और समाज की रक्षा सम्भव नहीं। राजनीति बहुत प्रखर रूप धारण करती जारही है। भौतिक संसार में एक दिन इसी का बोल बाला होगा। राजनीति अन्य सब नीतियों पर प्रधानता ग्रहण करेगी, क्योंकि शक्ति का संचालन इसके हाथों में होगा।"

ब्रह्मचारी कच बोले, "तब क्या धर्मनीति मुख्य नहीं रहेगी? क्या धर्मनीति से ही समाज और राजनीति ने जन्म नहीं लिया है?"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आचार्य शुक्राचार्य ने ब्रह्मचारी कच के प्रश्न को सुनकर आश्चर्य से उनकी ओर देखा। इस प्रश्न को सुनकर उन्हें ब्रह्मचारी की प्रखर बुद्धि का आभास मिला। वह मधुर वाणी में बोले, "ब्रह्मचारी ! तुमने बहुत महत्त्वपूर्ण प्रश्न किया। तुम्हारा यह प्रश्न बताता है कि तुम किसी दिन तीनों नीतियों के प्रकाण्ड पण्डित होंगे। तुमने कहा धर्मनीति ही अन्य नीतियों का उद्गम है। यह सत्य है, परन्तु उसका महत्त्व धीरे-धीरे समाप्त होता जायेगा। समाजनीति का प्रभाव अवश्य रहेगा, परन्तु वह राजनीति के हाथों में कठपुतली बनकर खेलेगी। राजनीति के सामने अन्य सब नीतियाँ फीकी पड़ जायेंगी।"

"क्या इससे मानव का आध्यात्मिक ह्रास न होगा ? क्या इससे मानव का भावना-पक्ष कुण्ठित न हो जायेगा ? क्या मानव अविश्वास, शंका, स्वार्थ और भय से पीड़ित हो उठेगा ?" ब्रह्मचारी कच ने पूछा।

ब्रह्मचारी कच की बात सुनकर आचार्य शुक्राचार्य गद्-गद् हो गये। उनका मन हुआ कि वह ब्रह्मचारी कच को चूमकर छाती से लगालें। उसने भविष्य की कितनी सुन्दर परिभाषा प्रस्तुत की।

आचार्य शुक्राचार्य ने खड़े होकर ब्रह्मचारी कच को छाती से लगा लिया। वह बोले, यही होगा ब्रह्मचारी ! समय दूर नहीं जब धर्म का पतन होगा और समाज कुसमाज बन जायेगा। धर्म और समाज व्यवस्थित रहें तो राजनीति की आवश्यकता नहीं ? धर्म-व्यवस्था में विकार न हो तो मानव सुख-चैन से रहे। परन्तु अब यह सम्भव नहीं रहा। कलयुग तक पहुँचते-पहुँचते राजनीति के अतिरिक्त और कुछ रह ही नहीं जायेगा। जिस राजनीति का प्रयोग आज हम अमृत-स्वरूप करते हैं, वह विष हो जायेगी। इसका प्रवेश घर-घर में होकर मानव के विनाश का कारण बनेगा। पारस्परिक द्वेष पराकाष्ठा पर होंगे, आचार-विचार का कोई ध्यान नहीं होगा, धर्म-कर्म में किसी की निष्ठा न होगी। रोटी और कपड़े के लिये मानव त्रस्त होगा। यहाँ तक कि पति और

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पत्नी के बीच भी राजनीति का प्रवेश हो जायेगा। वह मानव का घोर पतन-काल होगा।"

आचार्य शुक्राचार्य के मुख से निकला एक-एक शब्द ब्रह्मचारी कच के हृदय-पटल पर अंकित होता जा रहा था। ब्रह्मचारी कच को हार्दिक संतोष हुआ।

देवयानी गुरु और शिष्य की बातें सुनकर मुग्ध हो रही थी। कच की प्रखर बुद्धि से वह बहुत प्रभावित हुई।

देवयानी ने मधुर दृष्टि से ब्रह्मचारी की ओर देखा।

"आचार्य ! वर्त्तमान परिस्थितियों में आपकी भविष्यवाणी का सत्य होना नितान्त निश्चित है, परन्तु धर्म का विनाश करने वाली शक्तियों को एक दिन स्वयं विनष्ट होना होगा।

हमें विनाश की बात नहीं सोचनी चाहिये। हमें निर्माण की ही दिशा में अग्रसर होना है, ब्रह्मचारी ने कहा।

ब्रह्मचारी की बात सुनकर आचार्य आशापूर्ण दृष्टि से उनकी ओर देखकर स्नेहपूर्वक बोले, "क्या तुम यह कर सकोगे ? हमने विध्वंस की आवश्यकता अनुभव की, वही हम कर रहे हैं। जड़ता को जागरूक करने का हमने यही सिद्धान्त अपनाया।

तुम निर्माण की दिशा ग्रहण करना। तुम हमारे विस्मार किये हुए खंडहरों पर सांस्कृतिक भवन का निर्माण करना, जिससे विश्व जान सके कि प्रलय के गर्भ में भी निर्माण का ही अंकुर होता है। मैं तुम्हें दीक्षा देकर संजीवनी विद्या पुरस्कार में दूंगा। तुम इसका निर्माण के लिये प्रयोग करना।"

ब्रह्मचारी कच ने खड़े होकर आचार्य शुक्राचार्य के चरणों में अपना मस्तक टिका दिया और शपथ ली कि आचार्य ने जो आदर्श उनके

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सामने प्रस्तुत किया है, उसकी पूर्ति के लिये वह अपना जीवन अर्पित करेंगे।

आचार्य शुक्राचार्य ने कच को एक बार फिर छाती से लगाया और अपनी हार्दिक शुभकामनाएँ प्रकट करके उन्हें दीक्षित किया।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आचार्य शुक्राचार्य के ब्रह्मचारी कच को शिष्य-रूप में ग्रहण करने पर देवयानी की प्रसन्नता का पारावार न रहा। उसका मन-मयूर नृत्य करने लगा। अभी कुछ क्षण पूर्व अपने पिता, की मुखाकृति क्रोधपूर्ण देखकर वह भयभीत हो गई थी। अब उसके बदन में उल्लास की लहरें दौड़ गईं।

आचार्य की कुटिया से कुछ दूर आकर देवयानी बोली, "ब्रह्मचारी कच! तुम्हारा ऊपरी रूप जितना आकर्षक है, उससे कहीं अधिक विकसित तुम्हारा अन्तर-मानस है। जब तुम पिताजी से बातें कर रहे थे तो मैंने नेत्र बन्द करके तुम्हारे अन्तर से तादात्म्य स्थापित किया।"

ब्रह्मचारी बोले, "दोनों में क्या अन्तर देखा तुमने देवयानी?"

"कोई अन्तर नहीं है ब्रह्मचारी! मैंने तुम्हारे अन्तर और बहिर में एक ही रस की धारा प्रवाहित होती पाई। तुम अन्दर और बाहर से समान सुन्दर हो।" देवयानी ने कहा।

ब्रह्मचारी मुस्कराकर बोले, "इस सुन्दर को क्या तुम सर्वदा सुन्दर मानने का संकल्प कर चुकी हो देवयानी? इसे कभी किसी निर्बलता के कारण असुन्दर तो नहीं कहोगी?"

देवयानी ब्रह्मचारी कच की बात सुनकर मौन रह गई। फिर सरल दृष्टि से ब्रह्मचारी कच के चेहरे पर देखकर बोली, "सुन्दर सर्वदा सुन्दर ही रहेगा ब्रह्मचारी! मैं सुन्दर को असुन्दर कैसे कह सकूँगी?" कहते-कहते देवयानी के नेत्र सजल हो गये।

देवयानी के मन में उठने वाले भाव को समझ कर ब्रह्मचारी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मुस्कराकर बोले, "देवयानी ! तुम कितनी भोली हो। प्रकृति ने अपनी सरल मुस्कान एकत्रित करके जो तुम्हारे हृदय में भर दी है, उसे मुक्त करो, ये सजल नेत्र मुस्कराने लगेंगे।"

देवयानी प्रसन्न होकर हँस पड़ी। वर्त्तमान की मलय पवन ने भावी चिन्ता के उद्वेग को मस्तिष्क से निकालकर बाहर कर दिया। सुन्दर वर्त्तमान को आशंका के गर्त में वह क्यों धकेल दे ? आज के आनन्द को, कल की आशंका पर क्यों न्योछावर किया जाये।

देवयानी का मन पुलकायमान होउठा।

तभी शर्मिष्ठा वहाँ आगई। वह बोली, "तुम दोनों की कुटियाओं से होकर आ रही हूँ। ज्ञात नहीं था कि तुम इतने सवेरे ही उद्यान-विहार को निकल आओगे। आज रात्रि में सम्भवतः ब्रह्मचारी कच सो भी नहीं सके होंगे ?"

शर्मिष्ठा की बात सुनकर ब्रह्मचारी कच बोले, "राजकन्या ठीक कह रही हैं देवयानी ! इतनी सुन्दर राजकुमारी के राज में आकर कौन अतिथि सो सकता है ?"

"रहने दो ब्रह्मचारी ! मेरा नाम व्यर्थ उपहास के लिये तुम्हें मिल गया है। मैं आज्ञा देती हूँ कि तुम दोनों मेरे नाम को बीच में रखकर अपना प्रेमालाप आगे बढ़ा सकते हो।" शर्मिष्ठा ने कटाक्ष के साथ व्यंग किया।

देवयानी बोली, "शर्मिष्ठा ! देवयानी को किसी शुभ कार्य के लिये बहाने की आवश्यकता नहीं।"

शर्मिष्ठा खिलखिलाकर हँस पड़ी। उसने देवयानी के तिलमिलाने में आनन्द लाभ किया।

ब्रह्मचारी कच बोले, "देवयानी ! मैं फिर कहता हूँ, तुम बहुत भोली हो। शर्मिष्ठा की चालों को तुम नहीं पहुँच सकतीं। तुम से

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

शर्मिष्ठा ने कहलवा ही लिया, जो वह कहलवाना चाहती थीं। परन्तु शर्मिष्ठा ! सत्य यही है कि किसी की नींद चुराने की शक्ति तुम्हारे ही अन्दर है। देवयानी में वह सामर्थ्य कहाँ जो किसी की नींद चुरा सके।

जो बाँकापन तुम्हारी आँखों में है, वह देवयानी की आँखों में कहाँ ? वेणी का जो प्रसार तुम्हारे शीर्ष पर है वह देवयानी के शीर्ष पर तुम्हें कहीं दिखाई देता है ? तुम्हारे अधरों से जो रस चूरहा है उसकी एक बूँद भी देवयानी के होठों पर नहीं है। तुम्हारी नुकीली नासिका के सामने क्या देवयानी की नाक उपहास-मात्र प्रतीत नहीं होती ? तुम्हारे वक्षस्थल का उभार क्या मेनका को भी कभी प्राप्त हो सका ? तुम्हारे नितम्ब और चाल, ये सब कहाँ हैं देवयानी के पास ?''

शर्मिष्ठा पर ब्रह्मचारी कच के कहने का जादू जैसा प्रभाव हुआ। वह एक क्षण के लिये ठगी-सी रह गई। उसे अपने रूप पर गर्व हो उठा। परन्तु उसकी समझ में न आया कि ब्रह्मचारी वास्तव में उसके रूप की प्रशंसा कर रहे थे ।

''उपहास !'' शर्मिष्ठा के मुख से निकला।

''प्रशंसा। मैं अपनी सहेली शर्मिष्ठा के रूप को वास्तव में अपने रूप से अग्रणी मानती हूँ। जो शब्द ब्रह्मचारी कच ने कहे हैं, वे मैंने ही कहे थे इनसे।'' देवयानी बोली।

''तुम कहाँ से आरहे हो इस समय,'' शर्मिष्ठा ने पूछा।
तुम्हें छोड़ कर उद्यान-विहार के लिए नहीं गए थे हम।''

''तब कहाँ गये थे ?'' शर्मिष्ठा ने पूछा।

''हम पिताजी के पास गये थे। तुम्हें यह जानकर प्रसन्नता होगी कि पिताजी ने ब्रह्मचारी कच को दीक्षित कर लिया है। ब्रह्मचारी कच

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अब आश्रम में रहेंगे और तुम इनकी जितनी रातों की नींद चुराना चाहो, चुरा सकोगी। परन्तु तुमने कल जो चोरी की, वह उचित नहीं थी। कल यह बेचारे थके हुए थे। कल इन्हें नींद की आवश्यकता थी। सोचो, ब्रह्मचारी कच ने क्या यह धारणा नहीं बनाई होगी कि यहाँ की लड़कियाँ इतनी चोर हैं कि पहिले ही दिन किसी यात्री का सब-कुछ चुरा लेती हैं।"

शर्मिष्ठा खिलखिलाकर हँस पड़ी। उसके मधुर हास्य में बेल-वितानों पर बैठे पक्षियों ने भी रस लिया और वे सब मधुर हास्य की धारा मे बह गये। वृक्ष अँगड़ाइयाँ लेकर झूम उठे और लताएँ बल खाकर वृक्षों से लिपट गईं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ब्रह्मचारी कच ने अध्ययन-कार्य पाँच वर्ष में पूर्ण किया। उनकी शिक्षा का कार्य-काल समाप्त हो गया।

ये पाँच वर्ष आमोद-प्रमोद में पलक मारते निकल गये। ब्रह्मचारी कच धर्म, समाज और राजनीति के प्रकांड पण्डित आचार्य शुक्राचार्य द्वारा घोषित किये गये। उन्हें आचार्य-पद से विभूषित किया गया।

ब्रह्मचारी कच ने आचार्य शुक्राचार्य की चरण-रज लेकर अपने मस्तक पर लगाई और प्रतिज्ञा की कि वह आचार्य शुक्राचार्य के ध्वस्त खंडहरों का पुनर्निर्माण-कार्य आरम्भ करेंगे। वह उनके प्रकोप से दहकते हुए दिशा-खंडों को शीतलता प्रदान करेंगे और धर्म-व्यवस्था के आँचल में लहराते हुए सांस्कृतिक समाज को पुष्ट कर जन-जीवन को सुखी तथा समृद्ध बनाने का प्रयास करेंगे।

आचार्य शुक्राचार्य ने ब्रह्मचारी कच के सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद देकर उन्हें आश्रम से विदा किया।

ब्रह्मचारी कच के प्रस्थान का समाचार आश्रम तथा नगर में चारों ओर फैल गया। इस आश्रम में पाँच वर्ष रहकर वह वहाँ के जन-जीवन में इतने घुल-मिल गये थे कि सब को कच के विछोह का समाचार पाकर लगा, मानो उनका कुछ छिन रहा था। सभी का मन व्याकुल हो उठा। आश्रम की गउएँ रंभा-रंभाकर ब्रह्मचारी के पास आकर खड़ी होगईं। उन्हें वह नित्य नियम से चारा खिलाया करते थे। चिड़े-चिड़ियाँ वृक्षों की डालियों पर बैठे अश्रु-वर्षा कर रहे थे। उन्हें वह चुग्गा दिया करते थे। अन्य ब्रह्मचारी उन्हें घेरे खड़े थे, उन्हें वह पाठ

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पढ़ाया करते थे तथा उनके प्रत्येक कार्य में सहयोग देते थे।

शर्मिष्ठा सामने आकर बोली, "ब्रह्मचारी कच ! यदि तुम्हें इस आश्रम को एक दिन इस प्रकार शोक-सागर में डुबाकर जाना था तो तुम यहाँ आये ही क्यों थे ? न आते तो आज यह कष्ट तो न होता। तुम अनुभव नहीं कर सकते, तुमसे विछोह की कल्पना-मात्र से हम कितने व्याकुल हैं।"

ब्रह्मचारी कच बोले, "शर्मिष्ठा ! इस एक दिन के कष्ट ने ही तो मुझे पाँच वर्ष इस आश्रम-वासियों की सेवा करने का सुअवसर प्रदान किया। क्या मेरी सेवा से कुछ सुख नहीं मिला तुम्हें ?"

"मिला क्यों नहीं ब्रह्मचारी ! परन्तु उस सुख को तो तुम छीनने पर तुले हो इस समय।" शर्मिष्ठा बोली।

ब्रह्मचारी कच बोले, "तो तुम अपने सुख के लिये व्याकुल हो, ब्रह्मचारी कच के लिये नहीं शर्मिष्ठा ! अब जो सुख तुम खोज रही हो, वह मेरे पास नहीं है ?"

शर्मिष्ठा तिलमिला कर कठोर वाणी में बोली, "वह सुख मेरे लिये सम्भव नहीं है, यह मैं जानती हूँ। मैं यह भी जानती हूँ कि तुम्हारा यह रूप मुझ पर व्यर्थ अपने माया-जाल का प्रसार कर रहा है। मैं जानती हूँ तुम्हारा हृदय स्वच्छ नहीं है, उसमें धोखा और प्रपंच भरा है। अब कहो, चोरी किसने की ?"

ब्रह्मचारी कच मुस्कराकर बोले, "शांत रहो शर्मिष्ठा ! आवेग को सीमा में बाँधकर चलने का प्रयास करो। ऐसा न हो कि वह बहता हुआ मरु-भूमि में पहुँचकर सूख जाये और तुम्हारे जीवन के संचित रस की गगरी उलट जाये।

"तुम्हारे हृदय में प्रेम होता तो तुम्हारे नेत्रों से आँसुओं की झड़ी लगी होती और जो शब्द तुमने अभी उच्चारण किये वे हृदय में जन्म

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

न लेते। प्रम का उपहास न करो। विदा-याचना करते समय मेरी यही तुच्छ प्रार्थना है आपसे।"

शर्मिष्ठा ने इसे अपना अपमान समझा और वह बिना एक शब्द उच्चारण किये वहाँ से चली गई।

ब्रह्मचारी कच विदा होना चाहते थे। उनके नेत्र किसी को खोज रहे थे। जिसे वह खोज रहे थे, वह वहाँ नहीं थी। ब्रह्मचारी कच ने एकत्रित जनों को अंतिम नमस्कार किया। सब लोग दुःखी मन से विदा हो गये।

सब लोग चले गए। ब्रह्मचारी कच अकेले खड़े रह गये।

ब्रह्मचारी कच आज पाँच वर्ष में प्रथम बार देवयानी की कुटिया के द्वार पर गये। नित्य देवयानी ही ब्रह्मचारी कच की कुटिया पर आती थी, ब्रह्मचारी कभी वहाँ नहीं जाते थे।

ब्रह्मचारी कच ने कुटिया के द्वार पर खड़े होकर पुकारा, "देवयानी!"

देवयानी चटाई से उठ बैठी। उसने जल्दी से अपने नेत्र पोंछे, परन्तु ठीक से पुँछ नहीं सके। वे आँसुओं में सने रहे। वह हड़बड़ाकर कुटिया के द्वार पर आई तो देखा ब्रह्मचारी कच खड़े थे।

देवयानी अपने अश्रुपूर्ण नेत्रों को ब्रह्मचारी कच की सरल मुखाकृति पर पसारकर धीरे से बोली, "ब्रह्मचारी कच, क्या तुम सचमुच यहाँ से चले जाओगे? क्या तुम सचमुच मुझे इस प्रकार निराश्रित छोड़कर जा सकोगे? जिस दिन से तुम यहाँ आये हो और मैंने तुम्हारे दर्शन किये हैं, मैंने आराध्य-देव मानकर तुम्हारी पूजा की है। क्या यह सब वृथा किया है मैंने? क्या यह सब झूठ किया है मैंने? क्या मैंने कोई भूल की है?"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ब्रह्मचारी कच प्रस्तर-शिला के समान जड़ हो गये। उनका कण्ठ रुद्ध होगया। उनकी वाणी मौन होगई।

कच कुछ अपने को सम्भालकर बोले, "देवयानी! हम दोनों पाँच वर्ष तक साथ-साथ रहे। विद्या-अध्ययन के साथ मैं तुम्हारा भी अध्ययन करता रहा, परन्तु तुम एक ऐसे प्रेम-पाश में जकड़ गईं कि मेरा अध्ययन नहीं कर पाईं।

आज मैं तुम्हारा अध्ययन करके विदा होरहा हूँ और तुम्हें अवसर देरहा हूँ कि तुम भी मेरा अध्ययन कर सको। मुझे विश्वास है कि जो अध्ययन तुम पाँच वर्ष में मेरे साथ रहकर नहीं कर सकीं, वह मुझसे अलग होकर तुम बहुत कम समय में कर सकोगी। तुम मेरे लक्ष्य की प्राप्ति में आधार-शिला के समान हो देवयानी! सोचो, यदि तुम ही हिल उठोगी तो मेरे लक्ष्य और संकल्प का क्या होगा?"

अवाक् देवयानी ब्रह्मचारी कच के मुख-मंडल पर निहारती रही। उसने देखा उसे ब्रह्मचारी कच का रूप आज से सुन्दर पहिले कभी नहीं लगा था। कितना भव्य था वह रूप! निर्लिप्त, अविचल, एकदम सरल, विकार-विहीन।

ब्रह्मचारी कच बोला, "यहीं खड़ी रहोगी देवयानी! क्या उस स्थान तक भी छोड़ने नहीं चलोगी कच को, जहाँ से उसे तुम उठाकर इस आश्रम में लाई थीं?"

देवयानी के पैर आप-से-आप आगे बढ़ गए। दोनों धीरे-धीरे चलते हुए उद्यान के उसी आम्र-वृक्ष की छाया में जाकर खड़े हो गए, जहाँ एक दिन ब्रह्मचारी अचेत होकर गिर पड़े थे और देवयानी ने उनके मुख पर जल छिड़क कर उनकी अचेतनता दूर की थी।

दोनों घास पर बैठ गए। देवयानी बोली, "ब्रह्मचारी कच! तो मैं अब यही समझूँ कि तुमने जाने का पूर्ण संकल्प कर लिया है। जो

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

डोर तुमने अपने हाथ से बाँधी थी, उसे तुम स्वयं तोड़ कर जा रहे हो। तुम समर्थ हो। तोड़ सकते हो उसे।" कहते-कहते उसके नेत्रों में जल छलछला आया। आँसुओं की बूँदें टपाटप भूमि पर गिरने लगीं।

ब्रह्मचारी कच ने बड़ी कठिनाई से द्रवित होते हुए अपने को रोका। वह पाषण नहीं बन सकते थे देवयानी के समक्ष। देवयानी का सरल स्वाभाविक कण्ठ स्वर उनके हृदय को विदीर्ण किये दे रहा था।

उनके सामने उनके लक्ष्य की एक विशाल दीवार खड़ी थी। वह अपने पिताजी के समक्ष और आर्यजनों की सभा में प्रण करके आये थे कि वह ब्रह्मचारी बनकर जायेंगे, ब्रह्मचारी-रूप में संजीवनी शक्ति को प्राप्त करेंगे और ब्रह्मचारी स्वरूप में ही लौटेंगे। उनके सम्मुख आर्यों के खंडहरों को फिर से आबाद करने का महान् संकल्प था। वह शुक्राचार्यजी के समक्ष प्रतिज्ञा कर चुके थे। यह सब क्या देवयानी के साथ रहकर सम्भव था और फिर देवयानी उनकी गुरु-बहिन थी। उसके साथ विवाह कैसे ? यह धर्म और समाज दोनों के प्रतिकूल बात थी।

देवयानी आशा-भरी दृष्टि से ब्रह्मचारी के चेहरे पर देखकर बोली, "ब्रह्मचारी कच ! क्या यह किसी प्रकार सम्भव नहीं कि मेरा तुम्हारा .....?"

इससे आगे के शब्द ब्रह्मचारी कच ने नहीं सुने। उसने अपने दोनों हाथों की दो अंगुलियाँ कानों में डालकर कहा, "बहिन देवयानी ! महा पाप ! आचार्य की पुत्री मेरी बहिन है। तुम्हारे रूप की प्रशंसा मैंने जब-जब भी की है तो विधाता की कला पर मेरा मन मुग्ध हो उठा है। मैं अपनी बहिन के लिए उपयुक्त वर खोजूँगा और खोजूँगा ही नहीं देवयानी ! वह मेरी दृष्टि में है।"

ब्रह्मचारी कच की बात सुनकर देवयानी अचेत होकर घास पर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

एक ओर को ढुलक जाती यदि कच ने उसे अपने हाथों का सहारा देकर स्नेह से अपनी गोद में न लिटा लिया होता।

थोड़ी देर में देवयानी की आँखें खुलीं तो उसने अपने को ब्रह्मचारी कच की गोद में पड़ी पाया। वह विश्वास नहीं कर सकी। उसने नेत्र बन्द कर लिये और फिर थोड़ी देर पश्चात् आँखें मलकर बैठी हो गई।

देवयानी बोली,"ब्रह्मचारी कच ? देख रहे हो इस आम्र-वृक्ष को। इसी आम्र-वृक्ष के नीचे एक दिन मैंने तुम्हें अचेतन से चेतन किया था और आज उसी के नीचे तुम मुझे चेतन से अचेतन करके जारहे हो।

तुम्हारी इच्छा। मैं तुम पर बल-प्रयोग नहीं कर सकती ब्रह्मचारी कच ! प्रेम के मार्ग में बल-प्रयोग का अर्थ ही क्या है ?"

ब्रह्मचारी कच देवयानी की बात सुनकर मुस्करा उठे। वह सरल वाणी में बोले, "बहिन देयवानी ! तुम्हारे भाई कच ने आचार्य शुक्राचार्य के आश्रम में रहकर जिस समाज और धर्मनीति का अध्ययन करके आचार्य-पद प्राप्त किया है, क्या तुम चाहती हो कि वह उसी की सीमा में उसे खण्ड-खण्ड कर डाले ? क्या तुम चाहती हो कि मैं इस पुण्य-भूमि को कलंकित करके अपने और तुम्हारे चेहरों पर सर्वदा के लिए कालिख पोत दूँ ?

"कच प्राण दे सकता है, यह नहीं कर सकता।

"भावना के कगार से हटकर विचार के धरातल पर आओ देवयानी ! तुम्हारे चरित्र में गिरावट क्यों ? मैं उसमें भारतीय गौरव के प्रतीक की झाँकी देख रहा हूँ। क्या मेरी आँखें धोखा दे रही हैं मुझे ? मैं यह मानने को उद्यत नहीं हूँ देवयानी ! मैं अपने मस्तिष्क पर अविश्वास नहीं कर सकता। मेरे मस्तिष्क ने तुम्हारा गम्भीर अध्ययन किया है। मैं तुम्हें एक विशाल साम्राज्य की साम्राज्ञी के रूप में देखना चाहता हूँ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तुम्हारा भाई कच आज तुम्हारे समक्ष अपनी दो अमूल्य वस्तुएँ प्रस्तुत करता है। उनमें से जो तुम्हें पसन्द हो, वह तुम चुन लो।

देवयानी ने गम्भीर दृष्टि से ब्रह्मचारी कच की ओर देखा और सरल वाणी में पूछा, "वे दोनों वस्तुएँ क्या हैं ब्रह्मचारी कच ?"

"एक तुम्हारे भाई का बलिदान और दूसरा तुम्हारे भाई का विशुद्ध सात्विक स्नेह।" कच ने गम्भीर वाणी में कहा।

देवयानी सिहर उठी। वह भयभीत होकर ब्रह्मचारी कच के चरणों पर गिर पड़ी।

ब्रह्मचारी कच ने देवयानी को सस्नेह उठाकर अपनी भुजाओं में भर-कर कहा, "बहिन देवयानी ! तुम्हारे सरल प्रेम को अपने हृदय-मन्दिर में सर्वदा के लिए सुरक्षित रखने का आज प्रण करता हूँ। मैं आजीवन ब्रह्मचारी रहूँगा। एक बहिन के प्रेम के अतिरिक्त वासनापूर्ण प्रेम कभी इस जीवन में प्रवेश नहीं कर सकेगा।

अपने भाई कच को प्रसन्न-मुद्रा से विदा करो और शुभ कामना करो कि जिस महान् लक्ष्य को लेकर वह जारहा है, उसमें वह सफल हो।"

देवयानी की श्रद्धा-भरी दृष्टि ब्रह्मचारी कच के मुख पर पड़ी। वह देखकर स्तब्ध रह गई। ऐसे अलौकिक तेज के उसने पहिले कभी दर्शन नहीं किये थे। वह ठगी-सी रहगई।

ब्रह्मचारी कच ने आगे बढ़कर, उसके दोनों हाथ पकड़ लिये और बोला, "तो मैं अब समझूं कि देवयानी बहिन ने मुझे कर्त्तव्य-पथ पर अग्रसर होने की आज्ञा प्रदान कर दी ?"

देवयानी धीरे-धीरे बोली, "ब्रह्मचारी कच, जिसे मैं प्रेम कहती थी, उसे तुमने मार डाला। उसकी तुमने हत्या कर दी।

उसके शव पर खड़ी होकर आचार्य कच की बहिन देवयानी अपने

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भाई को कर्त्तव्य-पथ पर आगे बढ़ने की सहर्ष अनुमति देती है।"

ब्रह्मचारी का मस्तिष्क देवयानी की गम्भीर वाणी सुनकर हिल उठा। उसने देवयानी के नेत्रों में झाँक कर देखा तो वह कुछ समझ नहीं सके। उनके हृदय में अथाह पीड़ा उत्पन्न होगई थी।

वह बोले, "देवयानी! तुमने विदा तो दी अपने भाई को परन्तु चिर-पीड़ा भी प्रदान कर दी। मैं इस पीड़ा को लेकर विदा ले रहा हूँ देवयानी!"

देवयानी रो पड़ी। कितनी देर से बलात् रोके हुए आँसू छलक-कर बरस पड़े। उसने अश्रुपूर्ण नेत्रों से ब्रह्मचारी कच को विदा दी।

ब्रह्मचारी कच चल पड़े। उनके पैर भारी हो उठे थे। बड़ी कठिनाई से वह आगे बढ़ रहे थे।

कुछ दूर जाकर उन्होंने घूमकर देखा तो पाया कि देवयानी स्थिर भाव से पाषाण-शिला के समान अविचल उसी स्थान पर खड़ी थी।

कच ने अपना हाथ आकाश की ओर उठाया। उसे देखकर देव-यानी ने भी अपना हाथ ऊपर उठा दिया।

कच फिर अपनी राह पर चल दिये। उनके समक्ष वही पर्वत-माला थी, जिस पर खड़े होकर, उन्होंने प्रथम बार इस नगरी के दर्शन किये थे।

कच ने एक बार उस पर्वत-माला की चोटी पर पहुँचकर फिर पीछे घूमकर देखा तो पाया देवयानी अभी भी वहीं खड़ी थी।

कच का मन अधीर हो उठा। उनका मन असीम पीड़ा से भरा हुआ था। उन्होंने देवयानी के हृदय को जो ठेस पहुँचाई थी उसका उनके हृदय पर गहरा आघात था, परन्तु वह कुछ कर नहीं सकते थे, वह वचन-बद्ध थे।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कच ने एक क्षण के लिए नेत्र बन्द कर लिये और फिर घूमकर धीरे-धीरे पर्वत-माला से नीचे उतर गये।

अब देवयानी को वह नहीं देख सकते थे। उसके रूप की मनोरम झांकी को हृदय में भरकर वह तीव्र गति से अपने मार्ग पर चल पड़े।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ब्रह्मचारी कच ययाति के राज्य में पहुँच कर एक चौकी पर पहुँचे तो वहाँ के सरदार ने तुरन्त एक तीव्र चाल के घोड़े पर अपने दूत को सूचना लेकर महाराज ययाति के पास भेज दिया।

वहीं ब्रह्मचारी कच को ययाति के पिता का स्वर्गवास होने और ययाति के सिंहासनारूढ़ होने की सूचना मिली।

ब्रह्मचारी कच के सम्मान में आर्य-सरदार ने अपनी नगरी में एक भोज का आयोजन किया।

दूसरे दिन ब्रह्मचारी कच ने विदा लेने का समाचार सरदार के पास भेजा तो सरदार हाथ जोड़कर बोला, "महाराज ययाति की मुझे आज्ञा प्राप्त हो चुकी है कि आप जब यहाँ पधारें तो आपको समुचित सम्मान के साथ यहाँ उस समय तक ठहराया जाये जब तक राजधानी में आपके स्वागत का पूर्ण प्रबन्ध न हो जाये और राजधानी की सवारी आपको लेने के लिये न आ जाये।

आप एक-दो दिन यहीं विश्राम करें। मेरे विचार से, सूचना पाते ही स्वयं महाराज ययाति आपको अपने साथ लिवा कर लेजाने के लिये स्वयं यहाँ पधारेंगे।

इस बहाने महाराज भी यहाँ आकर मेरी इस छोटी-सी नगरी को पवित्र कर सकेंगे। मेरा अहोभाग्य हैं कि मुझे आपकी सेवा करने का शुभ अवसर मिला।"

आचार्य कच लम्बा मार्ग तय करके थक चुके थे। उन्होंने सरदार की बात मान ली और वहीं ठहर गये।

महाराज ययाति के पास आचार्य कच के राज्य में प्रवेश करने की सूचना पहुँची तो उन्होंने राज्य का सब काम-काज छोड़ दिया और

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मंत्रियों को आज्ञा दी कि वे नगर को सजाने की व्यवस्था करें।

महाराजा ययाति ने एक रथ आचार्य वृहस्पति के पास भी उन्हें लाने के लिये भेजा।

वहाँ का सब प्रबन्ध ठीक करके महाराज ययाति ने अपना रथ जुड़वाया और स्वयं आचार्य कच के स्वागत के लिये प्रस्थान किया।

कई दिन की यात्रा के पश्चात् महाराज ययाति आचार्य कच के पास पहुँचे और कौली भरकर अपने मित्र से भेंट की। इतने दिन की बिछुड़ी हुई दो आत्माओं का मिलन हुआ।

आचार्य कच से बातें करते हुए महाराज ययाति इधर-उधर कुछ देख रहे थे।

उनकी दृष्टि की व्यग्रता को पहिचानकर आचार्य कच ने पूछा, "तुम इधर-उधर क्या खोज रहे हो मित्र ?"

"मैं देख रहा हूँ कि तुम अकेले ही हो ?"

"अकेला ही तो गया था मैं, दुकेला होकर कैसे लौटता ? पिताजी के सम्मुख की गई प्रतिज्ञा क्या तुम्हें विस्मरण हो गई ?" कच ने कहा।

"परन्तु देवयानी.....।"

"देवयानी.....।" गम्भीर श्वांस लेकर ब्रह्मचारी कच ने कहा, "उसकी भावनाओं को कुचलकर ही मैं अपनी प्रतिज्ञा का पालन कर सका हूँ ययाति ! उसी बोझ से अभी तक मेरा हृदय और मस्तिष्क दबे हुए हैं।"

"समझा !" महाराज ययाति ने गम्भीरतापूर्वक कहा। "आचार्य कच ! आपने आर्य-राष्ट्र के लिए जो त्याग किया है, उसके लिए ययाति सम्पूर्ण राष्ट्र की ओर से आपका और देवयानी का कृतज्ञ है।"

आचार्य कच मुस्कराकर बोले, "मैंने उस पुष्प को अपने हाथों से

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मसल दिया ययाति ! बहुत निष्ठुर हो गया मैं। कर्त्तव्य मनुष्य को निष्ठुर बना देता है। लौकिक समाज और धर्म के बन्धनों पर मैंने अलौकिक रूप को ठुकरा दिया।

"इसीलिए बहुत बड़ा प्रायश्चित्त भी किया है।"

"प्रायश्चित्त !" आश्चर्यचकित होकर महाराज ययाति ने कहा।

"हाँ प्रायश्चित्त। इसके अतिरिक्त और मैं कर ही क्या सकता था ? मैंने देवयानी को गुरु-बहिन के रूप में ग्रहण करके प्रमाण-स्वरूप आजीवन ब्रह्मचारी रहने का प्रण किया है। तभी मेरे उद्विग्न मन को तनिक शांति मिल सकी। यह न करता तो मैं देवयानी से मुक्त नहीं हो सकता था।" आचार्य कच बोले।

महाराज ययाति आचार्य कच के आर्य-जाति के लिए किये गये त्याग को देखकर गद्-गद् हो गये। वह हाथ जोड़कर बोले, "आचार्य कच ! आर्य-जगत् आपके इस त्याग को कभी विस्मरण नहीं कर सकेगा। आपने राष्ट्र-प्रेम की वेदी पर अपना जीवन न्योछावर कर दिया। आपका यह त्याग जब तक यह सृष्टि रहेगी, सर्वदा सम्मान की दृष्टि से देखा जायेगा।"

दूसरे दिन प्रातःकाल महाराज ययाति ने आचार्य कच को सादर अपने रथ पर बिठाया और राजधानी की ओर प्रस्थान किया।

रथ राजधानी से बाहर देव-मंदिर में रोक दिया गया और वहीं पर आचार्य कच को ससम्मान उतारा गया। राज्य के सम्मानित मंत्री और प्रतिष्ठित जन वहीं पर थे।

वहीं उनके पिता वृहस्पति से आचार्य कच की भेंट हुई। पिता-पुत्र बहुत देर तक एक-दूसरे की बाहुओं में आबद्ध खड़े रहे और प्रेमाश्रु ढुलकाते रहे।

अन्त में वृहस्पति मुग्ध होकर बोले, "बेटा कच ! मुझे तुमसे यही आशा थी। मेरे पास तुम्हारे देवयानी के प्रेम में लिप्त हो जाने

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

की सूचनाएँ आईं परन्तु मैंने किसी पर विश्वास नहीं किया। मुझे पूर्ण विश्वास था कि वृहस्पति के पुत्र पर देवयानी तो क्या स्वयं रति भी अपना प्रभाव नहीं डाल सकती। वासना उसके हृदय को नहीं बेंध सकती। कच को कोई शक्ति कर्त्तव्य-पथ से च्युत नहीं कर सकती।"

आचार्य कच ने श्रद्धापूर्वक अपने पिता के चरण छुए और उपस्थित जनों को सादर नमस्कार किया।

महाराज ययाति के सुप्रबन्ध में देव-मंदिर से ही आचार्य कच को रथ में बिठाकर एक जुलूस निकाला गया और वह सीधा राज-भवन में पहुँचा।

सारा नगर पुष्प-मालाओं और पताकाओं से सजा था। रंग-बिरंगी बंदनवारें बंधी थीं और भाँति-भाँति की रोशनी का प्रबन्ध था। सारी नगरी देदीप्यमान हो उठी थी।

आचार्य कच का रथ इस शोभा के बीच से जा रहा था, परन्तु उन्हें यह सब नीरस प्रतीत हो रहा था। उन्हें लग रहा था कि मानो उसमें कोई कमी रह गई थी।

निराश होकर वह लम्बा श्वांस खींच कर मौन रह गए।

महाराज ययाति आचार्य कच की इस दशा का गम्भीरता पूर्वक अध्ययन कर रहे थे।

राजभवन के पास जाकर जुलूस समाप्त हो गया और संध्या को एक विराट् सभा का आयोजन हुआ। सभा के सभापति का आसन आचार्य वृहस्पति ने ग्रहण किया।

आचार्य वृहस्पति बोले, "आर्य जनो! आपको यह सूचना पाकर हर्ष होगा कि ब्रह्मचारी कच, जिसे हमने आज से पाँच वर्ष पूर्व अग्नि-कुण्ड की भेंट किया था, वह उसमें से तपकर कुन्दन के रूप में आपके समक्ष दमदमा रहा है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आचार्य शुक्राचार्य के आश्रम में रहकर इस मेधावी युवक ने पच्चीस वर्ष की शिक्षा पाँच वर्ष में प्राप्त की है। इस समय आचार्य कच धर्म, समाज और राजनीति के प्रकाण्ड पंडित के रूप में आपके समक्ष बैठे हैं। मैं अपना आचार्य-पद सहर्ष अपने पुत्र कच को प्रदान करता हूँ।"

यह कहकर वृहस्पतिजी ने आचार्य कच का तिलक किया और उन्हें राज्याचार्य घोषित किया।

सभा में हर्ष-ध्वनि के साथ करतल-ध्वनि हुई और वाद्यों तथा संगीत-स्वरों से चारों दिशाएं गूंज उठीं। समस्त वातावरण स्वरमय हो गया। नृत्य का सुन्दर आयोजन हुआ।

आचार्य कच एक प्रस्तर शिला के समान उन सब के मध्य बैठे थे। वह कुछ सुन नहीं रहे थे, कुछ देख नहीं रहे थे।

वृहस्पति को गर्व था अपने पुत्र के इस निर्लिप्त तपस्वी जीवन पर। वह मन-ही-मन आचार्य कच की गम्भीर मुखाकृति देखकर प्रसन्न हो रहे थे।

आचार्य-पद का समस्त भार आचार्य कच को संभलवाकर दूसरे दिन वृहस्पति ने विदा ली।

आचार्य कच का मन महाराज ययाति के राजमहल में रहकर दो-तीन दिन में ही छटपटाने लगा। वह वहाँ नहीं रह सके। उन्होंने सोचा कि वहाँ यदि आचार्य शुक्राचार्य का जैसा आश्रम बनवाया जाये और वह उसमें जाकर रहें तो सम्भव है उनकी आत्मा को कुछ शांति मिले। उनका मन देवयानी की ओर से उद्विग्न था। वह सोच नहीं पा रहे थे कि उस कोमल पुष्प के हृदय की उनके निर्दयतापूर्वक ठुकरा देने के पश्चात् क्या दशा हुई होगी।

संध्या को जब महाराज ययाति राजसभा से लौटकर आचार्य के पास पहुँचे तो आचार्य कच ने आश्रम के निर्माण के विषय में उनसे कहा।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

महाराज ययाति सहर्ष बोले, "आचार्य कच ! कल प्रातःकाल से ही आश्रम के निर्माण-कार्य आरम्भ हो जायेगा ।"

आचार्य कच ने आचार्य-पद स्वीकार करते ही अपना आसन संभाल लिया । उन्होंने राज्य की व्यवस्था को एक दम बदल डाला । राज्य-व्यवस्था में क्रांतिकारी परिवर्तन किये । सैन्य-संचालन की सेनापतियों को नवीन नीति के अनुसार शिक्षा दी और उसके सिद्धान्तों का फेर-बदल भी समझाया ।

राज्य के प्रशासन को आचार्य कच ने नया रूप दिया और उसी के अनुरूप समाजनीति तथा धर्मनीति में भी परिवर्तन किये ।

देश के आर्य-राजाओं की एक विशाल सभा का आयोजन किया और उन सबके संगठित स्वरूप का निर्माण करके उसे नये उत्साह और उमंग की प्रेरणा दी ।

इस परिवर्तन के फलस्वरूप महाराज ययाति की शक्ति देश-व्यापी हो गई । आर्यों के छोटे-बड़े राजा सब उन्हें अपना नेता मानने लगे और महाराज ययाति ने दिग्विजय के लिए प्रस्थान करने में विलम्ब नहीं किया ।

महाराज ययाति के सम्मुख जिस अनार्य राजा ने सिर उठाया उसे उन्होंने ने कुचल दिया । फलस्वरूप शत्रुओं की आक्रमणकारी प्रवृत्तियाँ समूल नष्ट हो गईं और आर्य-राज्यों पर आक्रमण करके लूट-मार करने का उनका साहस जाता रहा ।

कच के आचार्यत्व में आर्य-राजाओं ने चैन की सांस ली । इधर कितने ही वर्षों से उनके राज्य बराबर उजड़ते जा रहे थे । अनार्यों के निरन्तर आक्रमणों ने उनके राज्यों की समृद्धि को नष्ट कर दिया था । उनके धन-प्राण की रक्षा का कोई प्रबन्ध नहीं था । हर युद्ध में उनकी पराजय होती थी । जब से आचार्य कच की नवीन

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

राजनीति के अन्तर्गत उन्होंने अपनी शक्ति का संचालन किया, तो उन्हें हर जगह सफलता प्राप्त हुई। जहाँ भी गये, उनकी विजय पताका फहराई।

कुछ दिन में आचार्य कच का आश्रम बनकर तैयार हो गया। आश्रम का निर्माण आचार्य शुक्राचार्य के आश्रम के समान किया गया था। महाराज ययाति ने आचार्य कच की कल्पना के अनुरूप ही उसकी व्यवस्था की थी।

संध्या को आश्रम की सब व्यवस्था ठीक हो जाने पर आचार्य कच आश्रम में पहुँचे। सर्व प्रथम वह उसके उद्यान की अमराइयों के बीच से निकल कर जलाशय के पास पहुँचे और उसमें खिले नील कमलों को देखा।

वहाँ से चल कर वह आश्रम की अतिथिशाला में गये। उसके आस-पास के बेलि-वितानों को देखा। दूर सामने बहते जल-प्रपात पर दृष्टि गई तो वह उधर को ही चल पड़े। बहुत सुन्दर बना था वह।

एक-एक स्थान आचार्य कच ने आश्रम में घूम कर देखा और अंत में वह फिर वैसी ही बनी अतिथिशाला की कुटिया में आकर खड़े हो गये, जैसी में वह आचार्य शुक्राचार्य के आश्रम में रहा करते थे।

उनकी दृष्टि दूर-दूर तक फैले बेलि-वितानों के बीच से होकर उद्यान की अमराइयों तक चली गई, परन्तु उन्हें लग रहा था कि मानों वह कुछ देख ही नहीं रहे थे। उन्हें लगा कि जैसे वह समस्त आश्रम एक नीरस स्थान था। उन्होंने आचार्य शुक्राचार्य का आश्रम देखा था। वहाँ कितनी सरसता थी, कितना मिठास था! वहाँ का वायुमण्डल हर समय स्वरमय रहता था। वहाँ के पशु-पक्षी हर समय संगीत का स्वर अलापते थे।

आचार्य कच को यह सब फीका-फीका लग रहा था। उन्होंने स्पष्ट देखा और अनुभव किया कि जो सरस रस की धारा वहाँ निरन्तर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रवाहित होती रहती थी, उसका यहाँ नितान्त अभाव था।

उन्हें लगा कि यह आश्रम आचार्य शुक्राचार्य के आश्रम का कंकाल मात्र था। इसमें प्राणों का अभाव है। जीवन-संचारिणी-शक्ति यहाँ लेश मात्र भी नहीं थी।

तभी उन्होंने एक विचित्र चमत्कार के साथ देखा। सब वृक्ष फूल उठे, सब दिशाएँ मुस्कराने लगीं, सब पुष्पों से सुगन्धि फूट पड़ी। जल-प्रपात तीव्र गति से बह चले और मन्द समीरण के झोंके प्यार के साथ बह निकले।

आचार्य कच को यह देखकर आश्चर्य हुआ। वह खड़े होकर तुरन्त कुटिया के बाहर आ गये और चारों ओर आँखें पसारकर देखा। उन्होंने देखा सामने प्रपात के पास वाले बेलों के झुरमुट को चीरकर देवयानी मुस्कराती चली आ रही थी।

देवयानी उनके निकट आकर बोली, 'मैं नहीं थी ना यहाँ आचार्य कच ! इसी लिए तुम्हें यह सब सूना-सूना और फीका-फीका लग रहा था। मेरे आते ही देख लो तुम्हारा आश्रम कैसा मुस्करा उठा, बेलों को देखो कैसे प्रेम के साथ अपने साथी वृक्षों के गलों में बांहें डालकर झूम उठी हैं। पक्षी कलरव-नाद कर उठे और पुष्प महकने लगे।

"अब यह सब तुम्हें भला प्रतीत होगा। तुम्हारा मुरझाया हुआ चेहरा भी खिल उठेगा। तुम्हारा बुझा हुआ दिल का दीपक फिर से जल उठेगा और जो यह चारों ओर तुम्हें अंधकार-ही-अंधकार दिखाई दे रहा है, यह सब प्रकाश में बदल जायेगा।"

यह कह कर देवयानी वहीं पर खड़ी हो गई और मुस्कराकर बोलीं, 'आप मौन क्यों हैं आचार्य कच ?"

देवयानी को देखकर आचार्य कच का हृदय सचमुच तरंगित हो

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

गया। उन्हें लगा कि उनके जीवन से जो उल्लास निकल गया था वह उसमें फिर आकर भर गया। उन्हें अपने बदन में नई स्फूर्ति दिखाई दी। वह अनायास ही देवयानी की ओर बढ़ चले और हँसकर बोले, "क्या तुम सचमुच चली आईं देवयानी ? तुमने अच्छा ही किया जो चली आईं। तुम्हारे बिना मेरा यहाँ एक क्षण के लिए भी मन नहीं लग रहा था।"

आचार्य कच देवयानी की ओर बढ़े तो देवयानी पीछे हटने लगी। आचार्य कच ने और पग बढ़ाया तो देवयानी और भी पीछे हट गई।

आचार्य कच रुककर बोले, "मेरे पास आओ देवयानी ! तुम पीछे क्यों हटती जा रही हो ? ऐसा तो तुम कभी नहीं करती थीं।"

देवयानी मुस्कराकर बोली, "आचार्य कच ! जो आपने किया उसकी भी मुझे तुमसे आशा कहाँ थी। मनुष्य की सभी आशाएँ तो कभी पूर्ण नहीं होतीं। आदमी सोचता कुछ है और होता कुछ है। आप सोचें आचार्य कच ! क्या मैंने स्वप्न में भी कभी यह सोचा था कि एक दिन आप मेरे सरल प्रेम को इस प्रकार अपने दर्शन और नीति के थोथे विचारों का प्रमाण देकर ठुकरा दोगे ? आपने मेरे रूप की इतनी प्रशंसा करके आखिर मुझे क्यों इतना धोखे में डालने का प्रयास किया ? क्या केवल अपना काम निकालने के लिए ? आप कहते हैं कि आपने मेरे रूप की प्रशंसा विधाता की सुन्दर कला-कृति समझकर की। तो फिर मेरे सरल प्रेम को विधाता का सरल उपहार समझ कर आपने ग्रहण क्यों नहीं किया ? क्या विधाता का यह उपहार इतना हेय था कि उसे आचार्य कच ग्रहण ही नहीं कर सकते थे ?" यह कहकर देवयानी मुस्कराती हुई कटाक्ष से आचार्य कच की ओर देखती हुई बोलीं, 'मैं आप से दूर-दूर इसलिए भाग रही हूँ कि मुझे पतिव्रता

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बनना है। तुम्हारी धर्म और समाजनीतियाँ क्या कहती हैं इसके विषय में आचार्य कच ? क्या वह एक अविवाहित कन्या को किसी पुरुष के साथ हँस खेलने और आमोद-प्रमोद में लीन होने की आज्ञा देती हैं ?"

आचार्य कच निरुत्तर मौन खड़े रह गये। देवयानी मुस्कराकर बोली, "अपने सरल और निष्कपट प्रेम को मैं विधाता की सुन्दरतम् कला-कृति मानती हूँ। यह मेरे उस बहिर रूप से कहीं अधिक सुन्दर है जिसकी अगणित बार तुमने मुक्त-कंठ से प्रशंसा की है। आचार्य कच ! तुम कौन सी नीति के आचार्य बने हो, यह मैं नहीं जान पाई। तुम कहते हो तुमने मेरा अध्ययन किया है और पूरी तरह समझ लिया है, परन्तु मैं समझ नहीं पाई कि तुमने मेरा क्या समझ लिया है ? तुमने मेरे बहिर रूप का ही अध्ययन किया, मेरे अन्तर में तनिक भी प्रवेश नहीं कर पाये।"

"मैं अपनी दुर्बलता को स्वीकार करता हूँ देवयानी ! मैंने समाज की मर्यादाओं का पालन करने के लिये तुम्हारे सरल और निष्कपट प्रेम की अवहेलना की है। इस पश्चाताप् की ज्वाला में कच जीवन-भर जलता रहेगा। यह मुझे स्वीकार है, परन्तु इस भौतिक जगत के सम्मुख कच यह दृष्टांत छोड़ना नहीं चाहता कि कच ने अपनी गुरु-बहिन के साथ विवाह करके समाज की मर्यादा को भंग किया।

तुम सोचो देवयानी ! यदि मैं और तुम ऐसा करते तो इसका भावी संतति पर क्या प्रभाव पड़ता ? क्या भाई और बहिन का पवित्र नाता सर्वदा के लिये आर्य-संस्कृति से लुप्त नहीं हो जाता ?"

"तुम्हारे पास प्रमाण देने के लिए बहुत मोटे-मोटे नीति-ग्रन्थ हैं आचार्य कच ! मैं उनसे नहीं टकराना चाहती। जो हो चुका वह लौटाया भी नहीं जा सकता। मुझे जो पद् तुमने सस्नेह प्रदान किया है, वह मैंने सहर्ष-स्वीकार कर लिया।" देवयानी बोली।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"तुमने सहर्ष स्वीकार कर लिया देवयानी ! तुमने मेरे हृदय की जलन बुझा दी। मेरे मस्तिष्क की बेचैनी दूर कर दी। तुम मेरे पास आओ बहिन ! बहिन को भी प्यार किया जाता है।" आचार्य कच बोले।

देवयानी मुस्कराकर पीछे हट गई।

आचार्य कच के कंधे पर पीछे से हाथ रखकर महाराज ययाति बोले, " किससे बातें कर रहे थे आचार्य कच ?"

आचार्य कच सकपकाकर बोले, "क्या तुमने नहीं देखा महाराज ययाति ! देवयानी आई थी अभी। वह चली गई।"

महाराज ययाति मुस्कराकर बोले, "देवयानी आईं और चली गईं। आप उन्हें रोक भी न पाये आचार्य कच ! रोक लेते तो मैं भी दर्शन कर लेता।"

"मैं उसे रोक नहीं सकता था आचार्य कच ! मैंने अपराध जो किया है उसका। परन्तु इस बार देवयानी ने मेरा अपराध क्षमा कर दिया।" आचार्य कच बोले।

महाराज ययाति आश्रम की ओर हाथ उठाकर बोले, "आचार्य कच ! आश्रम पसन्द आया। ठीक आपकी कल्पना के ही अनुरूप बनी है न आश्रम की प्रत्येक वस्तु ?"

आचार्य कच बोले, "यह सब तो सुन्दर बन गया महाराज ययाति ! परन्तु इसमें एक भारी कमी है।"

"वह क्या ?" आश्चर्यचकित होकर महाराज ने पूछा।

"वह यह कि आश्रम में प्राणों की प्रतिष्ठा नहीं हो सकी। यह सब जो कुछ यहाँ दिखाई दे रहा है, प्राण-विहिन है। यहाँ तक कि मेरे और तुम्हारे अन्दर भी मुझे प्राण दिखाई नहीं दे रहा।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उस प्राण की प्रतिष्ठा मैं नहीं कर सकता। तुम भी नहीं कर सकते। वह केवल देवयानी ही कर सकती है। अभी कुछ देर पूर्व देखा नहीं तुमने, यह निर्जीव आश्रम सजीव हो उठा था। यहाँ का अणु-अणु मुस्कराने लगा था यहाँ की प्रत्येक वस्तु नृत्य करने लगी थी। यहाँ का हर पुष्प मुस्करा रहा था। यहाँ का हर पक्षी गुनगुना रहा था, हर वृक्ष की पत्तियाँ ताल दे रही थीं। पवन वाद्य बजा रहा था, चारों दिशाएँ संगीत से भर गई थीं। सम्पूर्ण वायु-मण्डल में रूप चाँदनी छिटक गई थी।

यह सब इसी आश्रम में हुआ था महाराज! परन्तु अब वह सब कहाँ है?"

महाराज ययाति बोले, "आचार्य कच! मैं देख रहा हूँ कि देवयानी का अभाव आपके लिये असहनीय हो उठा है। उनको यहाँ लाये बिना आपकी आत्मा को शान्ति नहीं मिल सकती।"

"यह सत्य है महाराज! मैंने देवयानी से चलते समय यही कहा था कि तुम सम्राज्ञी बनने योग्य हो।" आचार्य बोले।

"सम्राज्ञी!" महाराज ययाति बोले।

"हाँ महाराज! मैं आचार्य हूँ, मेरा काम समीक्षा करना है। मुझ में रस नहीं रहा। तुम राजा हो। तुम में रस-ही-रस भरा है। रस में रस मिल सकता है। मुझ में रस आकर स्वयं रस भी शुष्क हो जायेगा। मैं उस रस को शुष्क नहीं करना चाहता।

परन्तु राजन्! वह रस अद्वितीय है। वह नारी नहीं विधाता की अनुपम लीला है। वह रूप अवर्णनीय है। वाणी उसका वर्णन नहीं कर सकती। भाषा में उसके सौंदर्य को प्रकट करने की क्षमता नहीं है। उसके रूप के अणु-अणु के वर्णन में अनेकों रूप-शास्त्रों की रचना हो सकती है। इन्द्र की असंख्य अप्सराओं का रूप उस एक रूप के समक्ष

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ह्येय है। उस रूप के निर्माण में विधाता ने अपनी सर्वोच्च कला-कुशलता का परिचय दिया है।''

महाराज ययाति देवयानी के रूप की प्रशंसा सुन रहे थे। उन्हें लग रहा था कि उनके कानों में अमृत की वर्षा हो रही थी और उसका रस बहकर उनके हृदय-कक्ष में प्रवेश कर रहा था। उन्हें लग रहा था कि मानो उनके जीवन में एक नवीन ज्योति का संचार हो रहा था।

आचार्य कच बोले, ''महाराज ययाति ! विधाता ने अपनी उस कला-कृति का निर्माण करने में उसके अङ्ग-अङ्ग को कितना सुन्दर गढ़ा है कि वाणी उसका वर्णन करने के लिये बार-बार उत्साहित होकर वर्णन करने लगती है, परन्तु हर बार परास्त होकर उसे मौन हो जाना पड़ता है। उसकी वेणी आकाश में लहराती और बल खाती हुई मेघ-माला से कहीं अधिक आकर्षक और सुन्दर है। उसका उन्नत मस्तक हिम-गिरि के उन्नत शिखर पर पड़ने वाले प्रातःकाल के समय की आभा को लजा देती है, उसके नेत्रों की ज्योति में प्रकृति का समस्त आकर्षण मानो आकर सिमट गया है। विश्व में जितनी भी मादकता और सरसता विद्यमान है, वह सब उसके नेत्रों में भरी है। विश्व में जितनी करुणा और उदात्त भावना है, वह उसकी पलकों पर बिछी है। विश्व में जितना रस प्रकृति आज तक संचित कर सकी है, वह उसकी पुतलियों में समाया हुआ है। उसकी नासिका, उसके कपोल, उसकी ग्रीवा सब साँचे में ढले हैं। उसका गौर वर्ण चन्द्रिका को फीका कर देने वाला है। उसका वक्ष आशा और उमंगों का लहराता हुआ उदधि है। उसके नितम्बों का सुडौल गठन चित्ताकर्षक है। उसकी गति में मलयानल की मस्ती है।''

आचार्य कच देवयानी के रूप का वर्णन कर रहे थे और महाराज ययाति उस वर्णन की सरिता में गोते लगा रहे थे। कभी वह उस रस

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

में डूब जाते थे और कभी उभर कर आचार्य कच की वाणी से उलझ जाते थे। उनका हृदय बड़े वेग के साथ देवयानी की ओर खिंचता जा रहा था। वह आत्मविभोर हो गये थे। उनकी भाषा मौन हो गई थी। वह एक टक आचार्य कच के मुख पर निहार रहे थे।

आचार्य कच बोले, "महाराज ययाति ! वह वह पुष्प है जिसकी सुगंधि से विश्व महंक रहा है, वह वह आभा है जिसकी क्रांति से सूर्य, चन्द्र और नक्षत्र आलोकित हैं। उसके एक-एक अङ्ग के वर्णन में अगणित काम-शास्त्रों की रचना हो सकती है। उसके कंठ से निकलने वाला स्वर विश्व की वाणी को सरसता प्रदान करता है। उसके एक-एक विचार का स्पष्टीकरण करूँ तो न जाने कितने दर्शन-शास्त्रों की रचना हो जाये। उसकी एक-एक भावना का बखान करूँ तो भक्ति-भावना का सागर लहरा उठे। उस देवी का सौजन्य, उसकी उदारता, उसकी सद्भावना, उसका मिठास, उसकी सरलता, उसकी गम्भीरता उसकी विचारशीलता उसकी सरसता, उसकी भक्ति, उसकी सेवा-वृत्ति ये, सब उसकी अपनी अलौकिक वस्तुएँ हैं, जिनके संचालन से विश्व की शक्तियाँ संचालित होती हैं।

वह पुष्प तुम्हारे योग्य है मित्र ययाति ! यदि तुम अपने आप को उसका सुपात्र बना सको और विधाता तुम्हारा साथ दें।"

देवयानी के रूप की आचार्य कच के मुख से इतनी प्रशंसा सुनकर महाराज ययाति के हृदय में देवयानी के दर्शन की उत्कंठा पैदा हो गई।

वह अन्यमनस्क भाव से बोले, "आचार्य कच ! आपने अपने हृदय की पीड़ा मेरे हृदय में उडेल दी, अपने मन की बेचैनी मुझे दे दी। परन्तु क्या कभी यह भी सोचा कि यह सम्भव किस प्रकार होगा ? ब्राह्मण-कन्या एक क्षत्रिय का वरण कैसे कर सकेगी और एक अनार्य-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

 Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

राज्य में जाकर इस पुष्प को प्राप्त कर लेना, मेरे लिये सम्भव कैसे हो सकेगा ?"

महाराज ययाति की बात सुनकर आचार्य कच मुस्कराकर बोले, "ये सब मेरे मस्तिष्क की चिंताएं हैं, इन्हें यहीं रहने दो ययाति ! मैं नये समाजशास्त्र और नई राजनीति का निर्माण कर रहा हूँ। उसके अन्तर में प्रवेश करके ये मानवता के बन्द द्वार स्वयं उन्मुक्त हो जायेंगे। सब लोग अपने कपाट स्वयं खोल देंगे। उसमें मानव के हित की कल्पना है। उसमें कोई आर्य या अनार्य नहीं होगा। समस्त भारतीय मानव-समाज एक सूत्र में बंधकर चलेगा।"

महाराज ययाति किंकर्त्तव्यविमूढ़ से आचार्य कच के मुख से निकलने वाले शब्दों को सुन रहे थे। उनकी समझ में कुछ नहीं आया कि आचार्य कच क्या करने जा रहे थे।

वह हाथ जोड़कर बोले, "आप जो आज्ञा करेंगे ययाति उसका पालन करेगा।"

आचार्य कच का हृदय आलोडित हो उठा। वह बोले, "समस्त भारत में घोषणा करा दो कि महाराज ययाति अपना सद्भावना-संदेश लेकर देशाटन के लिये निकल रहे हैं। वह देश के आर्य और अनार्य राजाओं से समान सद्भावना और प्रेम के साथ भेंट करेंगे। वह सबसे मैत्री-सम्बन्ध स्थापित करेंगे।"

आचार्य कच का संदेश पाकर महाराज ययाति तुरन्त वापस लौट गये और अपने दूतों को भारत के कोने-कोने में आचार्य कच का संदेश लेकर भेज दिया।

आचार्य कच अपने आश्रम में रहने लगे और उसमें जो कमियाँ रह गई थीं उन्हें पूरा कराने लगे। उन्हें विश्वास था कि देवयानी एक दिन वहाँ अवश्य आयेगी। उसके आने से पूर्व वह उस आश्रम में कोई कमी नहीं रहने देना चाहते थे।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आचार्य कच ने पर्वतमाला के शिखर पर खड़े होकर जो अपनी अंतिम झांकी दी थी, उसे हृदय-मंदिर में विभूषित कर देवयानी अपने आश्रम को लौट गई। उस रात्रि-भर वह सो नहीं सकी। गत पाँच वर्ष के कच साथ व्यतीत किये जीवन की एक के पश्चात् एक झाँकी आ-आकर उनकी नींद चुरा रही थी। जिस विटप को गत पाँच वर्ष से पानी देकर और अपनी निस्वार्थ सेवा अर्पित करके, उसने इतना बड़ा किया था, उसे आचार्य कच ने एक ही झटके में मुस्कराते हुए उखाड़ कर देवयानी के सामने गिरा दिया।

देवयानी के उस विटप को आचार्य कच ने समाज की मर्यादाओं के हवन-कुण्ड की प्रज्वलित ज्वाला के हवाले कर दिया। वह भस्म हो गया। देवयानी ने उसकी क्षार को उठा कर अपने मस्तक पर लगा लिया, परन्तु फिर आत्मा और बदन में यह जलन क्यों ? यह पीड़ा क्यों ? देवयानी चटाई पर पड़ी-पड़ी सोचती रही।

देवयानी सो नहीं सकी। वह उठकर बैठ गई और कुटिया से बाहर निकल आई। उसका मन विचलित हो उठा था। उसने देखा आकाश में चन्द्रमा मुस्करा रहा था। उसे चन्द्रमा का यह मुस्कराना भला नहीं लगा। उसकी चाँदनी देवयानी के दग्ध हृदय को शीतलता प्रदान नहीं कर सकी। उसकी जलन, पीड़ा और बेचैनी और बढ़ गई।

वह आचार्य कच के विषय में सोच रही थी। दर्शनशास्त्र के आचार्य को समाजशास्त्र की मर्यादाओं में जकड़े खड़े देखकर उसे हँसी आ गई। वह अनायास ही खिलखिलाकर हँस पड़ी। उनके मन ने कहा, 'यह कैसी विडम्बना है ! मेरे भौतिक रूप का प्रशंसक मेरे आत्मिक रूप

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

के प्रति कुण्ठित। आखिर क्यों ?"

देवयानी ने आकाश में मुस्कराते हुए चन्द्रमा की ओर देखा और एक टक देखती ही रही तो उसे लगा कि वह चन्द्रमा नहीं आचार्य कच मुस्करा रहे थे।

देवयानी हँसकर बोली, 'देवयानी को यहाँ छोड़ कर तुम वहाँ जा बैठे कच ! यह ठीक है क्या ?' मन भारी करके देवयानी ने कहा, 'तुम आचार्य हो गये। आचार्य का आसन इतना ही ऊँचा होता है। वह साधारण प्राणियों के बीच में नहीं रहता।'

तभी देवयानी ने विचित्र आश्चर्य के साथ देखा वह चन्द्रमा भूमि पर उतर आया। चन्द्रमा नहीं आचार्य कच उसके समक्ष आकर खड़े हो गये।

आचार्य कच बोले, 'देवयानी ! तुम बहुत भोली और सरल हो। आचार्य कच ने यदि तुम्हारी आत्मा का अध्ययन नहीं किया तो शुक्राचार्य के आश्रम में रह कर और किया ही क्या है उसने ? तुम्हारे अन्तर और बहिर में कोई भेद नहीं है। तुम्हारे जो बाहिर में है, वही अन्तर में है और जो अन्तर में है वही बाहर है।'

'मैंने तुमसे कभी कोई छल नहीं किया।'

आचार्य कच ने अपने मस्तक की ओर संकेत करके कहा, 'यह देख रही हो राख जो मेरे मस्तक पर लगी है। यह तुम्हारे उसी प्रेम-विटप की राख है, जिसे मैंने समाज की मर्यादाओं के हवन-कुण्ड में भस्म कर दिया।

मैं दार्शनिक हूँ, तुम भी दर्शनशास्त्र की प्रकांड पण्डिता हो। हम दोनों जानते हैं कि समाजशास्त्र के सब बंधन और उसकी सब मर्यादाएँ इस भौतिक शरीर के ही साथ सम्बद्ध हैं। मेरे तुम्हारे मिलन में दर्शन कोई प्रतिबन्ध उपस्थित नहीं करता। उसने हम दोनों की आत्माओं

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

को आबद्ध कर दिया है। न तुम्हारे बिना मुझे चैन है और न मेरे बिना तुम्हें शांति है परन्तु जब तक हम दोनों संदेह हैं, हमें समाजशास्त्र के नियमों का पालन करना होगा।

हमारे आचरण का प्रभाव सम्पूर्ण जन-जीवन पर होगा। प्रत्येक व्यक्ति दर्शनशास्त्र का आचार्य नहीं हो सकता। इस आत्मिक प्रेम की परिभाषा को समझना सब के लिये सरल नहीं है। मानव इसका भौतिक रूप में अनुसरण करने लगा तो पापाचार की पराकाष्ठा न रहेगी। माँ, बहिन, भाई पति, पिता सभी की वे मर्यादाएँ जिनके निर्माण में मानव-समाज ने घोर तपस्या की है, नष्ट हो जायेगी।

क्या तुम समाज की इस सांस्कृतिक व्यवस्था को छिन्न-भिन्न कर सकने का साहस कर सकोगी ? मैंने अपने और तुम्हारे प्रेम-विटप को उखाड़ कर मानव-समाज के कल्याण के लिये हवन-कुण्ड के हवाले किया है।

क्या अब भी तुम्हारे मन में कोई शंका है ?''

देवयानी श्रद्धा से आचार्य कच के सम्मुख झुक गई। वह सरलता-पूर्वक बोली, 'मैं इन सब रूपों में अपने मन को समझाने का प्रयास करती हूँ आचार्य कच, परन्तु मुझे शांति नहीं मिल रही। यह दुर्बलता क्यों है ?'

आचार्य कच मुस्कराकर बोले, 'यह दुर्बलता नहीं है तुम्हारी देव-यानी ! यह तुम्हारे दर्शन की सफलता है। तुम्हारा दर्शन वास्तविकता के सिर पर चढ़कर बोल रहा है। उसने तुम्हारी आत्मा को जागरूक कर अपने ज्ञान की असीमित परिधि से टकराने के लिये छोड़ दिया है।

मैं असीमित क्षेत्र में विचरण कर रहा हूँ। मैं असीमित को सीमा में बाँधना चाहता हूँ और तुम सीमित को असीम में ले जाना चाहती हो।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तुम ऐसा करके मेरे चरित्र के अन्दर गिरावट देखती हो और अपनी आत्मा के विषय में सोचती हो और मैं मानव-मात्र की आत्माओं के सही जीवन-संचालन के विषय में चिन्तित हूँ। इसी महान्-कार्य की पूर्ति के दृढ़ संकल्प पर मैंने अपने और तुम्हारे प्रेम-विटप की भेंट चढ़ाई है।

जिस समय तुम्हारा दर्शन मेरी दुर्बलता को सबलता घोषित कर देगा, उस समय तुम देखोगी कि तुम्हारी आत्मा को महान् शांति प्राप्त होगी।'

देवयानी ने हाथ जोड़कर आचार्य कच को प्रमाण किया। उसने देखा आचार्य कच ऊपर उठ कर चन्द्रमा के स्थान पर पहुँच गये और अन्त में मुस्कराकर बोले, 'तुम सम्राज्ञी बनोगी देवयानी! तुम्हारा पाणिग्रहण-संस्कार आचार्य कच करायेगा।'

देवयानी ने देखा उसके मन की पीड़ा थोड़ी ही देर में न जाने कहाँ विलुप्त हो गई। उसका मन झंकृत सा होकर नाच उठा। वह दौड़ी-दौड़ी आश्रम के उन सब स्थलों पर गई जो उसके और आचार्य कच के स्वच्छंद विहारों के साक्षी थे।

देवयानी ने उन सब स्थलों पर पुष्प चढ़ाये और दो-दो घड़ी बैठ कर उन बातों का स्मरण किया जो कभी वहाँ हुई थीं। उन्हें स्मरण करके देवयानी के हृदय में पीड़ा का उद्रेक नहीं हुआ, एक मीठी-मीठी गुदगुदी-सी हुई और हृदय उल्लास से भर गया।

वह लौट कर अपनी कुटिया पर आई तो शर्मिष्ठा उसकी प्रतीक्षा में बैठी थी। वह देवयानी को देखकर बोली, "आज सवेरे-ही-सवेरे किधर निकल गई थीं देवयानी! क्या आज अकेली ही उद्यान-विहार को चली गई थी?"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

शर्मिष्ठा ब्रह्मचारी कच की ओर संकेत करके बोली, "देख लिया तुमने देवयानी, उस रस के लोभी भौंरे को। कितना कपटी निकला! मुझे और तुम्हें, दोनों को मूर्ख बनाकर चला गया।"

देवयानी शर्मिष्ठा की बात सुनकर मुस्करा दी और मुस्कराकर ही बोली, "तुम बाँध नहीं पाईं उस भौंरे के परों को शर्मिष्ठा?"

शर्मिष्ठा तनिक आवेश में बोली, "मैं तुम्हारे भय से कुछ नहीं बोल सकी देवयानी! वरना उसका एक-एक पर नोंच कर डाल देती। फिर देखतीं तुम कि वह पर-विहीन होकर कैसा इस भूमि पर भिन्न-भिन्न करके तड़फड़ाता और तड़फड़ाता-तड़फड़ाता प्राण दे देता।"

"तुम उसके प्राण ले लेतीं शर्मिष्ठा! ऐसा उस बेचारे ने क्या अपराध किया था? एक परदेशी तुम्हारे प्रदेश में आया था। इतने दिन उसने तुम्हारे आश्रम की सेवा की।

इसका पुरस्कार क्या तुम उसे यह देतीं कि उसके पर नोंच कर उसे भूमि पर पटक देतीं और असहाय पड़ा छोड़ कर मृत्यु को प्राप्त होने के लिये छोड़ देतीं?" देवयानी ने कहा।

देवयानी की बात सुनकर शर्मिष्ठा को क्रोध आ गया। वह वक्र दृष्टि करके बोली, "वह साधु के वेष में लुटेरा था देवयानी! उसकी सरलता के आवरण में घोर कुटिलता छिपी थी। मैंने इसी लिये उसे अधिक मुँह नहीं लगाया।

तुम उसके ऊपर दीवानी हो गई थीं। मैं बीच में नहीं आई कि कहीं तुम्हारे मन में मेरे प्रति दुर्भावना पैदा न हो जाये।"

देवयानी मुस्कराकर बोली, "दुर्भावना! पगली कहीं की। देवयानी के मन में दुर्भावना भी पैदा होती तो शर्मिष्ठा के प्रति? जितनी मैं भोली हूँ, उतनी ही तू मूर्ख है शर्मिष्ठा! बेचारे आचार्य कच को

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जाने क्या-क्या दोष लगा दिये।"

तो तुम्हारे मन में अभी पीड़ा शेष है उस निर्मोही के लिये ? तुम उसे पाले रहो अपने हृदय-कक्ष में और दीवानी बनी फिरो रात-दिन, मुझे क्या ?" रूठने की मुद्रा बना कर शर्मिष्ठा बोली।

देवयानी बोली, "शर्मिष्ठा, आचार्य कच को समझना तुम्हारी सामर्थ से बाहर की बात है। पाँच वर्ष उनके साथ रहकर भी मैं उन्हें नहीं समझ पाई।

उन्होंने सच ही कहा था कि जिनके साथ रह कर मैं अध्ययन न कर सकी, उनका अध्ययन उनसे बिछुड़कर कर सकूंगी।"

"तुम अध्ययन करती रहो देवयानी ! मेरे पास इतना समय नहीं है। मेरे मन में उस व्यक्ति के लिये कोई पीड़ा नहीं है।" यह कह कर शर्मिष्ठा इठलाती हुई देवयानी की कुटिया से बाहर हो गई।

देवयानी एकान्त में बैठी रह गई। उसके मन में उस समय असीम शांति थी। उसका मन कच के प्रति श्रद्धा और भक्ति से भरा हुआ था।

वह उठ कर उस सामने वाले प्रपात की ओर चली गई, जिसके किनारे पर बैठकर वह आचार्य कच के साथ न जाने कितनी देर तक मधुर बातें किया करती थी, प्रकृति के सरल सौंदर्य की चर्चा किया करती थी और इस चर्चा को घुमा-फिराकर आचार्य कच देवयानी के रूप-वर्ण पर ले आते थे। देवयानी मुग्ध बनी उसे सुनती थी और मधुर रस की धारा में बहती रहती थी।

वह वहाँ जाकर एक स्फटिक शिला पर बैठ गई। उसने प्रपात के जल पर दृष्टि डाली तो लगा मानो आचार्य कच विशुद्ध जल के बीच बैठे थे और देवयानी की ओर देख रहे थे।

आचार्य कच बोले, 'मन को कुछ शांति मिली देवयानी !'

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

देवयानी के होठों पर मधुर मुस्कान थिरक उठी। वह सरल वाणी में बोली, 'मिली।'

आचार्य कच प्रसन्न हो गये और उल्लास के साथ बोले, "आश्रम के उद्यान में तुम्हें अकेली खड़ी छोड़ कर मैं जिस दिन तुमसे विदा हुआ था, उस दिन से आज तक मेरा हृदय जलता रहा। संसार के सब कार्य विधिवत् करते हुए भी मेरा मन अशान्त रहता था। तुम्हारे कोमल हृदय पर मेरे कठोर सिद्धान्त की जो गहरी चोट पड़ी, उसकी पीड़ा से मेरा मन व्याकुल हो गया था। उस रात्रि को मैं सो नहीं सका।

इस समय तुम्हारे मुख पर मुस्कान देख कर मेरे मस्तिष्क की बहुत-सी चिन्ताएं दूर हुईं। मेरे हृदय को महान् शांति प्रदान की तुमने देवयानी! मैं तुम्हारा हृदय से कृतज्ञ हूँ।'

देवयानी आचार्य कच की बात सुनकर तनिक लजा गई और मुग्ध दृष्टि से उनकी ओर देखकर बोली, 'आचार्य कच! मैं आपके हृदय की इतनी पीड़ा और मस्तिष्क की इतनी चिंता का कारण बनी, इसका मुझे हार्दिक खेद है। आपके महान् त्याग को परखने में मुझे देर लगी, इससे भी मेरा मन दुःखी है।

अचानक अपनी भावनाओं का संसार उजड़ा हुआ देखकर मेरा हृदय विदीर्ण होगया था, बुद्धि ने काम करना बन्द कर दिया था। मैं स्वयं भी रात्रि-भर नहीं सो सकी थी और मन को धीरे-धीरे सहलाकर सांत्वना देती रही।

अब मेरा मन बिलकुल शान्त है। उसमें किसी प्रकार का कोई विकार नहीं है। मैं अपने भाई के विशुद्ध प्रेम के बन्धन में बंधी शांति-पूर्वक अपने नित्य-कर्म में संलग्न रहूँगी। आप निश्चित भाव से अपने लक्ष्य की पूर्ति की ओर अग्रसर हों। मानव-कल्याण के जिस अमूल्य

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उद्देश्य को लेकर आपने जीवन-पथ पर पग बढ़ाया है, आपकी बहिन का उसमें पूर्ण सहयोग रहेगा।"

आचार्य कच की छाया पानी में विलीन हो गई।

देवयानी प्रसन्न-चित्त वहाँ से उठ कर गुनगुनाती हुई मस्ती के साथ अपनी कुटिया की ओर बढ़ गई और फिर वहाँ से अतिथिशाला की ओर चली गई।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

९

आचार्य कच का मन अब बहुत शांत था। महाराज ययाति के साम्राज्य की व्यवस्था आचार्य कच की नवीन राजनीति के द्वारा संचालित होकर बहुत सुदृढ़ हो गई थी। महाराज ययाति के गौरव की पताका देश के कोने-कोने में फहरा रही थी।

आचार्य कच की नवीन घोषणा के आधारस्वरूप महाराज ययाति की यात्रा की तैयारियाँ हो रही थीं। उन्हें विदाई देने के लिए एक विराट आयोजन किया गया था।

उस सभा में भारत के विभिन्न राज्यों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया।

आचार्य कच सर्वोच्च आसन पर विराजमान थे। महाराज ययाति आचार्य कच के आसन से नीचे सिंहासन पर बैठे थे। आचार्य कच खड़े होकर बोले, "उपस्थित महानुभावो !

आज का यह समारोह जिस उपलक्ष्य में किया गया है वह महाराज ययाति की वह महान् यात्रा है जिससे भारतीय राजनीति में एक नया मोड़ आने वाला है।

मैं देख रहा हूँ कि भारत की शक्ति आर्य और अनार्य, दो भागों में विभक्ति हो गई है। यह बड़े दुर्भाग्य की बात है। हम लोगों ने व्यर्थ मानव-मानव के बीच यह भेद-भाव उत्पन्न कर अपने जीवन की समस्याओं और उलझनों को बढ़ा लिया है। हमें परस्पर प्रेम-भाव से रहना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

महाराज ययाति यही सद्भावना का संदेश वहन कर देशाटन के लिये प्रस्थान कर रहे हैं। दिग्विजय महाराज ययाति कर चुके हैं और उससे राज्य सुदृढ़ हुआ है। परन्तु फिर भी उस लक्ष्य की प्राप्ति नहीं हो सकी जिससे ऐसे साम्राज्य की व्यवस्था हो, जिसके प्रति किसी के मन में द्वेष न हो, क्रोध न हो, वैमनस्य न हो और सद्भावना बनी रहे।

महाराज ययाति इसी उद्देश्य से यह यात्रा कर रहे हैं। मेरी शुभ-कामनाएँ इनके साथ हैं और मुझे पूर्ण विश्वास है कि महाराज अपने इस कार्य को सफलता के साथ पूर्ण करेंगे।"

महाराज ययाति के मस्तक पर आचार्य कच ने तिलक किया और उनके गले में पुष्प-हार डाला।

सभा के उपस्थित सज्जन नगर से पर्याप्त दूर तक महाराज ययाति को विदा करने के लिए गये और अंत में महाराज ययाति आचार्य कच के चरण छूकर रथ में बैठ गये।

दूसरे दिन से महाराज ययाति जिस-जिस राज्य में अपना संदेश लेकर गये वहाँ से आचार्य कच के पास सूचनाएँ आने लगीं।

आचार्य कच की यह संगठन-नीति आचार्य शुक्राचार्य की विध्वंस-नीति पर विजय प्राप्त करती जा रही थी। देश में फैली अनार्य-शक्ति के पैर पहिले ही महाराज ययाति की दिग्विजय ने उखाड़ दिये थे। सब अनार्य राजे महाराजे ययाति के पौरुष का लोहा मान चुके थे, परन्तु उनके सम्मुख सिर न झुकाने की ऐंठ अभी उनमें शेष थी।

उनकी इस ऐंठ को भी आचार्य कच ने महाराज ययाति को सद्भा-वना-यात्रा पर भेज कर समाप्त कर दिया। वे सब स्वयं अपनी ओर से महाराज ययाति को अपने-अपने राज्यों की यात्रा करने का निमंत्रण भेजने लगे।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

महाराज ययाति को जिस राज्य से भी निमंत्रण प्राप्त होता था, वह उसी राज्य की ओर प्रस्थान कर जाते थे। इस प्रकार वह सफलता-पूर्वक अपने लक्ष्य की ओर बढ़ रहे थे।

आचार्य कच मन-ही-मन अपनी सफलता पर प्रसन्न थे। वह सोच रहे थे कि इस समय देवयानी होती तो उसे इस महान् चमत्कार की सूचना देता। वह गद्-गद् हो उठती, आन्नद-विभोर हो जाती।

यही विचार करते-करते आचार्य कच अपने आश्रम की ओर निकल गये। थोड़ी देर अपनी कुटिया में बैठे तो मन नहीं लगा। वह वहाँ से उठ कर सामने बहने वाले प्रपात के पास पहुँच गये और वहीं खड़े होकर ध्यानपूर्वक उसके स्वच्छ जल पर दृष्टि डाली तो उन्हें अपनी परछाई उसमें दिखाई दी।

वह बड़े ध्यान से उस परछाईं को देखते रहे। देखते-देखते वह परछाईं रूप बदलने लगी। उन्होंने देखा देवयानी सामने जल में खड़ी मुस्करा रही थी।

वह प्रपात के जल में स्नान कर के ऊपर उठी थी। उसके केशों की भीगी लटों से जल-बिन्दु मुक्ताओं के समान गिर रहे थे।

देवयानी ने आचार्य कच को दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम किया।

आचार्य कच बोले, 'तुम आ गईं देवयानी! मैं अभी-अभी तुम्हें याद कर रहा था।'

देवयानी मुग्ध मन से बोली, 'आपको एक शुभ सन्देश देने आई हूँ इस समय।'

देवयानी की बात सुन कर आचार्य कच अपनी बात भूल गये और उत्कंठा के साथ बोले, 'तुम्हारा शुभ सन्देश सुनने के लिए कच के कान व्याकुल हैं देवयानी! सुनाओ अपना मधुर संदेश।'

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

देवयानी मुस्कराकर बोली, 'पहिले आचार्य कच को उनकी नवीन राजनीति की सफलता पर धन्यवाद दे लूं, तब वह संदेश सुनाऊंगी।

कल संध्या समय पिताजी ने सहर्ष मुझसे कहा, 'बेटी देवयानी, हमारे शिष्य कच ने चमत्कारपूर्ण कार्य किया है। हमने आर्य-राज्यों में फैले दुराचार को देख कर अनार्य-राज्यों को संगठित किया और उनके द्वारा उन्हें त्रस्त कराकर सुमार्ग पर लाने का प्रयास किया। हमारी यह नीति विध्वंस पर आधारित थी।

पुत्र कच ने इससे कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। उसने आर्य और अनार्य के भेद-भाव को सर्वदा के लिये मिटाने की जिस नीति का संचालन किया है उसमें उसे महान् सफलता मिल रही है।

आज मैं देख रहा हूँ कि मेरा आशीर्वाद फल-फूल रहा है।'

देवयानी के मुख से अपने कार्य की प्रशंसा सुन कर और वह भी वह प्रशंसा जो स्वयं आचार्य शुक्राचार्य ने की, आचार्य कच के आनन्द का पारावार न रहा। उनकी आत्मा खिल उठी, उन्हें लगा कि उनको समस्त शिक्षा, तपस्या और परिश्रम का फल प्राप्त होगया।

आचार्य कच चकित होकर बोले, 'सच कह रही हो देवयानी! आचार्य शुक्राचार्य ने अपने शिष्य कच की राजनीति की सराहना की?'

'बिलकुल सच कह रही हूँ आचार्य कच! मैंने उनके शब्द ज्यों-के-त्यों उच्चारण किये हैं।

अब दूसरा संदेश सुनने के लिए आतुर हों आचार्य!' देवयानी मुस्कराकर बोली।

आचार्य कच ने इस बात को भुलाकर अपने कान देवयानी की वाणी से लगा दिये। उन्होंने कहा, 'कहो देवयानी!'

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

देवयानी तनिक लजा कर बोली, 'पिताजी ने राजा वृषपर्वा को आदेश दिया है कि वह सादर महाराज ययाति को अपने राज्य में आमंत्रित करें।

यह संदेश महाराज ययाति के पास भेज दिया गया है।'

'क्या यह सच है देवयानी!'' आचार्य कच प्रसन्नता से आत्म-विभोर होकर बोले।

'बिलकुल सच!' देवयानी ने कहा। यह कहकर देवयानी पानी में विलीन हो गई।

आचार्य कच की कल्पना पूर्ण हुई। उनके मन की सारी दुविधा जाती रही। वह अपनी कुटिया में आ गये।

तभी राज्य के अन्य मंत्रि-गण भी वहाँ आगये। महाराज ययाति की अनुपस्थिति में राज्य-कार्यों के संचालन का उत्तरदायित्व आचार्य कच ही संभाल रहे थे।

मंत्रियों ने दिन भर के समाचार आचार्य कच को दिये। उनमें महाराज वृषपर्वा का समाचार भी था, जिसे आचार्य कच ने सब से पृथक करके अपने हाथ में ले लिया और बड़े ध्यान से पढ़ा।

आचार्य कच ने उस पत्र का पूर्ण अध्ययन करके यह देखा कि कहीं उसमें राजनीति की कोई गम्भीर चाल तो नहीं थी। कहीं आचार्य शुक्राचार्य ने अपनी राजनीति की असफलता पर झुँझलाकर कोई कुचक्र तो नहीं रचा था, परन्तु पत्र बहुत सरल और स्पष्ट था। उसमें स्पष्ट रूप से आचार्य कच की नीति की प्रशंसा की गई थी। वह पत्र आचार्य शुक्राचार्यजी का ही लिखाया हुआ था। उसका एक-एक शब्द आचार्य का अपना था।

आचार्य कच को आज महान् आत्मतुष्टि मिली। उन्होंने मंत्रियों को उनके कार्य के विषय में उचित आदेश देकर विदा किया।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

१०

आचार्य शुक्राचार्य के आश्रम की ख्याति देश-देशांतरों में हो चुकी थी। देश-विदेशों के जो यात्री भारत-भूमि की यात्रा के लिए आते थे, वे आचार्य शुक्राचार्य के आश्रम में अवश्य जाते थे।

इन यात्रियों के सुप्रबन्ध का पूरा उत्तरदायित्व देवयानी के ऊपर था। अतिथिशाला का प्रबन्ध देवयानी संभालती थी।

वे यात्री वहाँ शुक्राचार्य के आश्रम की जहाँ अन्य विशेषताओं से परिचय प्राप्त करते थे, वहाँ देवयानी के रूप और उसके गुणों से भी उनका परिचय अनायास ही हो जाता था।

वे लोग भारत से जहाँ भी जाते थे, वहाँ जाकर शुक्राचार्य के आश्रम की चर्चा करते थे। उस चर्चा में चाहे कोई बात छूट जाती, परन्तु देवयानी के रूप का वर्णन नहीं छूटता था।

इस प्रकार देवयानी के रूप की ख्याति दिग्दिगन्त में व्याप्त होती जा रही थी।

देवयानी की यह ख्याति शर्मिष्ठा को पसन्द नहीं थी। वह ऊपर से यों देवयानी से प्रेम ही प्रदर्शित करती थी, परन्तु उसके हृदय में हर समय द्वेष की ज्वाला सुलगती रहती थी। वह अपने सम्मुख देवयानी को भी रूपवती नहीं मानती थी। वह उन लोगों को भी मूर्ख और अंधा समझती थी, जो उसके रूप को सामने देखकर भी देवयानी की ओर आकर्षित होते थे।

शर्मिष्ठा के हृदय का द्वेष दिन-प्रति-दिन प्रखर रूप धारण करता जा रहा था, परन्तु देवयानी उसे वैसा ही स्नेह करती थी, जैसा पहिले से करती आई थी। शर्मिष्ठा बहुत से मूर्खतापूर्ण कार्य भी कर जाती थी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

परन्तु वह कभी उससे रुष्ठ नहीं होती थी। वह उसे स्नेह करती थी।

इधर शर्मिष्ठा उसके प्राण तक लेने पर उतारू हो चुकी थी। अपने रूप को चुनौती देने वाले रूप को वह सहन नहीं कर सकती थी। उसकी दृष्टि जब देवयानी के रूप पर पड़ती थी तो उसके हृदय में ज्वाला प्रज्वलित हो उठती थी। वह उसके रूप को सहन नहीं कर सकती थी।

एक दिन संध्या-समय शर्मिष्ठा देवयानी से बोली, "देवयानी, चलो उद्यान की ओर चलें। ब्रह्मचारी कच यहाँ से क्या चले गये कि तुमने घूमना-फिरना ही छोड़ दिया।"

देवयानी मुस्कराकर बोली, "चलती हूँ शर्मिष्ठा, तनिक अतिथियों के भोजन का प्रबन्ध कर दूं। आज, बहुत दूर-दूर के यात्री आश्रम में पधारे हुए हैं।"

"भला कहाँ-कहाँ के देवयानी ?" शर्मिष्ठा ने पूछा।

"कुछ पर्वत-प्रदेश के हैं और कुछ मरु-प्रदेश के। एक यात्री बंग-प्रदेश का भी है उनमें। बहुत सुन्दर जादू के चमत्कार दिखाता है वह," देवयानी मुस्कराकर बोली।

"कैसे-कैसे जादू दिखाता है वह ?" शर्मिष्ठा ने पूछा।

"सुना है, वह पुरुष को स्त्री और स्त्री को पुरुष बना देता है।" यह कह कर देवयानी मुस्करा दी।

शर्मिष्ठा देवयानी को उपहास में धक्का देती हुई बोली, "चल देवयानी ! मेरा मन नहीं लग रहा यहाँ। आज बहुत देर से कहीं घूमने का मन हो रहा है। और हाँ ! मुझे तो आज नीले कमल-पुष्प लाने हैं। पिताजी प्रातःकाल शिव की उपासना नीले कमल से ही करते हैं।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

 Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"नीले कमल से !" देवयानी ने कहा। "ऐसा कब से करने लगे चाचाजी ! मैंने तो उन्हें सर्वदा कनेर के पुष्पों और बेल-पत्रों से शिव-पूजा करते देखा है।" देवयानी बोली।

शर्मिष्ठा बोली, "नहीं, अब नीले कमल से ही करते हैं। उद्यान के जलाशय में नीले कमल बहुत खिले हैं। जितने चाहती हूँ तोड़ लाती हूँ।"

देवयानी ने सरलतापूर्वक शर्मिष्ठा की बात पर विश्वास कर लिया। इसमें अविश्वास की उसे कोई बात दिखाई नहीं दी।

देवयानी बोली, "तू तनिक यहाँ बैठ, मैं अभी आती हूँ। फिर साथ-साथ उद्यान की ओर चलेंगे।"

देवयानी ने वापिस आने में विलम्ब नहीं किया और तुरन्त ही दोनों उद्यान की ओर प्रस्थान कर गईं।

दोनों भ्रमण करती हुई जलाशय के निकट पहुँच गईं। फिर दोनों उधर चल दीं, जिधर जलाशय में नीले कमल खिले हुए थे।

शर्मिष्ठा ने अपना हाथ कमल तोड़ने के लिए बढ़ाया, परन्तु कमल हाथ न आ सका।

वह देवयानी से बोली, "बहिन देवयानी ! मैं नित्य एक लकड़ी लाती थी अपने साथ उसकी सहायता से पुष्प तोड़ लेती थी। आज वह लाना भूल गई। तनिक तुम मेरी सहायता करो। मुझे विश्वास है, तुम्हारा हाथ कमल तक पहुँच जायेगा।"

देवयानी शर्मिष्ठा की चाल को न पहिचान सकी। भोली आचार्य-कन्या ने जलाशय की मुंडेर पर झुक कर कमल-पुष्प तोड़ने के लिये अपना हाथ बढ़ा दिया और आधी से अधिक जलाशय में लटक गई। शर्मिष्ठा ने उपयुक्त अवसर देखकर अपने चारों ओर देखा तो दूर-दूर तक कोई दिखाई नहीं दिया।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

शर्मिष्ठा ने जलाशय में झुकी देवयानी को अपने हाथ की ठेल कर पानी में गिरा दिया।

देवयानी पर-कटे पक्षी के समान जलाशय में गिर पड़ी। उसके गिरने का शब्द वायु-मंडल में गूंज कर चारों दिशाओं में फैल गया, परन्तु वहाँ सुनने वाला कौन था।

किसी ने उसे नहीं देखा, यह जान कर शर्मिष्ठा को संतोष हुआ। उसने यह कार्य करके अपने हृदय में असीम शान्ति और आनन्द का अनुभव किया। उसके रूप को चुनौती देने वाला रूप संसार से उठ गया। अब शर्मिष्ठा का ही रूप रूप कहलायेगा। देवयानी का रूप उसके सम्मुख आकर उसके आनन्द को खंडित नहीं करेगा।

यह विचार मन में आने के पश्चात् शर्मिष्ठा को भय हुआ कि कहीं कोई वहाँ आ न जाये और भेद न खुल जाये। इस लिये वह धीरे-धीरे वहाँ से अपने राजमहल की ओर प्रस्थान कर गई।

मार्ग में वह चोरों की भाँति चली कि कहीं कोई उसे पहिचान न ले और फिर राजपथ आ जाने पर वह तीव्र गति से गुनगुनाती हुई आगे बढ़ने लगी। उसके वक्षस्थल में उभार आ गया था। उसके नेत्रों से मादकता छलक रही थी। यौवन का उन्माद उसे मतवाली बनाये दे रहा था। वह मस्ती में इठला रही थी।

जिस समय उसने महल में प्रवेश किया तो उसके कंठ से मधुर रागिनी निकल रही थी। रागिनी के शब्द विजय के स्वरों में मुखरित हो रहे थे।

वह महल में सीधी अपने कमरे में पहुँचकर नाच उठी। वह आज बड़ी तन्मयता से नाची और नाचती ही रही जाने कितनी देर तक।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

देवयानी को शर्मिष्ठा अपनी समझ से मृतक समझ कर, अपने महल को गई थी, परन्तु उसके पानी में गिरने का जो शब्द हुआ, वह संध्या समय की निस्तब्धता में दूर-दूर तक गया था।

महाराज ययाति अपनी यात्रा से लौट रहे थे। उनके सैनिकों का पड़ाव वहाँ से पर्याप्त दूरी पर था। वह किस दिशा में थे, उस समय उन्हें इस बात का ज्ञान नहीं था।

वह एक हिरन का पीछा करते-करते उधर जा निकले थे और सोच रहे थे कि अब किस दिशा में प्रस्थान करें, जिससे उनकी अपने सैनिकों से भेंट हो सके।

उसी समय 'छप्प' का स्वर उनके कानों में पड़ा। उन्होंने सोचा, कोई पानी में गिरा मालूम देता है। उन्होंने अपने घोड़े को उसी दिशा में दौड़ा दिया जिधर से वह स्वर आया था।

महाराज ययाति जलाशय के किनारे पर पहुँच गये। उन्होंने पानी की ओर देखा तो शान्त पानी में गोलाकार लहरें उठती दिखाई दीं। एक स्थान पर उन्हें कुछ पानी में डूबता उभरता सा लगा।

महाराज ययाति तुरन्त जलाशय में कूद पड़े और क्षण-भर में देवयानी को पानी से बाहर निकाल लाये। ययाति ने देखा डूबने वाला पुरुष नहीं एक स्त्री थी। उन्होंने उसे लाकर हरी घास पर लिटा दिया। वह अचेतन अवस्था में थी।

महाराज ययाति उसके पास खड़े होकर उसके सचेत होने की प्रतीक्षा करने लगे। वह बड़े ध्यान से उसकी ओर देख रहे थे।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उन्होंने देखा, जिसे वह पानी से निकाल कर लाये थे वह अत्यन्त रूपवती, अनुपम सुन्दरी थी। उसका गौर-वर्ण चन्द्रिका को लजाने वाला था। उसके एक-एक अंग को विधाता ने नाप-तोलकर बनाया था। उसके प्रत्येक अंग का उभार नयनाभिराम था।

यह सब देखकर महाराजा ययाति के मन में शंका हुई कि कहीं वह देवयानी ही न हो। कहीं वह आचार्य कच के विछोह से पीड़ीत होकर जलाशय में न कूद पड़ी हो।

महाराज ययाति का मन उद्भ्रांत हो गया।

तभी देवयानी ने नेत्र खोल दिये। उसके बदन में एक सिहरन-सी आई, एक कम्पन हुई और वह अपने भीगे वस्त्रों में ही लिपट-सिमटकर बैठ गई।

महाराज ययाति एक टक उसकी ओर देखते रहे। कितना सुन्दर रूप था। इस रूप का परित्याग करके जाने वाले आचार्य कच के आदर्श के समक्ष ययाति का मस्तक झुक गया। वह अपने मन में बोले, 'आचार्य कच ने इस रूप की कुछ भी प्रशंसा नहीं की। सचमुच वह कर ही नहीं सके। उनके पास इस रूप को व्यक्त करने योग्य शब्द नहीं थे। यह अवर्णनीय रूप है।'

देवयानी ने नेत्र खोलकर पहिले चकित दृष्टि से चारों ओर देखा और फिर उसकी दृष्टि महाराज ययाति पर ठहर गई। वह बहुत देर तक एक टक उनके मुख पर देखती रही।

वह समझ गई कि उसी व्यक्ति ने जलाशय से उसे निकालकर उसके प्राणों की रक्षा की थी। उसने महाराज ययाति को अपने रक्षक के रूप में देखा। उसे महाराज ययाति की आकृति बहुत सुन्दर प्रतीत हुई। उनके रूप में महान् आकर्षण था।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

महाराज ययाति ने देवयानी के निकट जाकर धीरे से पूछा, "आपको कहीं चोट तो नहीं आई ?"

देवयानी के मुख से एक शब्द भी नहीं निकला। केवल मात्र नेत्रों के संकेत से उसने कह दिया कि वह अब पूर्ण स्वस्थ है और उसके बदन पर कहीं कोई चोट नहीं है। उसके बदन में अब कहीं किसी प्रकार की पीड़ा नहीं है। उसका बदन नितान्त स्वस्थ है।

पानी से भीगे वस्त्रों से टकरा कर पवन और भी शीतल हो गया था। देवयानी और महाराज ययाति के बदन में वह शीतलता विचित्र मादकता भरती जा रही थी। दोनों मौन थे, परन्तु दोनों ही एक दूसरे से बातें कर रहे थे। उनके नेत्रों की पुतलियाँ चल रही थीं और उनके मुखों पर भाँति-भाँति के भाव आकर खिलते, जलते और बुझते जाते थे। उनके मुखों का वर्ण भी परिवर्तनशील था।

दोनों के भावों और उनके प्रभावों का आदान-प्रदान चल रहा था। अन्त में दोनों के मुख पर मुस्कान की स्निग्ध रेखा खिंच गई। देवयानी ने इठलाकर अंगड़ाई लेते हुए दूसरी ओर को करवट ली।

महाराज ययाति अब देवयानी के नितान्त निकट पहुँच गये थे। उन्होंने धीरे से कहा, "बहुत रात हो रही है। मुझे बहुत दूर जाना है। चलो, तुम्हें तुम्हारे घर तक पहुँचा दूँ। संध्या के धूमिल प्रकाश पर रात्रि का अन्धकार छा गया है।"

देवयानी मुस्कराकर बोली, "इनमें से कोई भी स्थायी नहीं है अपरिचित व्यक्ति ! रात्रि का अन्धकार भी आप देखेंगे कि चन्द्रमा की चाँदनी के सामने सिर पर पैर रख कर भाग जायेगा है।"

महाराज ययाति मुस्कराकर बोले, "क्या मैं यह जानने की धृष्टता कर सकता हूँ कि मैं इस समय कहाँ हूँ। मैं अपने साथियों से बिछुड़

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कर इधर भटक रहा था, कि तभी किसी व्यक्ति के जलाशय में कूदने का शब्द सुनाई दिया।"

महाराज ययाति की बात पर देवयानी मुस्कराकर बोली, "कूदने, गिरने या गिराये जाने का ? क्या इन तीनों शब्दों में कोई भेद नहीं है अपरिचित व्यक्ति ?"

महाराज ययाति मुस्कराकर बोले, "समझा, मुझे कूदने के स्थान पर गिरना अथवा गिराया जाना शब्दों का प्रयोग करना चाहिए था।"

'गिराया जाना' कह कर देवयानी सरलता से मुस्करा दी। फिर मादक नेत्रों से महाराज ययाति की ओर देखकर हँसती-सी बोली, "क्या कभी यह सम्भव हो सकता है अपरिचित व्यक्ति कि जिसे मैं बाल्यकाल से अपनी बहिन के समान प्रेम करती आई हूँ, मेरी वही सखी मुझे जलाशय में गिरा दे ?"

महाराज ययाति मुस्कराकर बोले, "सम्भव क्यों नहीं हो सकता अपरिचित कन्ये ! आपके समझने में और उसके समझने में अन्तर हो सकता है। आपका रूप ही एक ऐसी वस्तु है जो अन्तर डाल सकता है।"

"मेरा रूप !" आश्चर्यचकित होकर देवयानी ने ययाति की ओर देखा।

"हाँ अपरिचित कन्ये !" फिर बात बदलकर बोले, "मैं इस समय कहाँ हूँ, इस पर आपने प्रकाश नहीं डाला। मुझे शीघ्र लौटने की चिन्ता है। मेरे सैनिक मेरी खोज में व्याकुल होंगे।"

"तो आप राजा हैं।" महाराज ययाति की बात का कोई उत्तर न देकर मुग्ध दृष्टि से उनकी ओर देखती हुई देवयानी बोली, "क्षमा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कीजिए, मैं आपको अपरिचित व्यक्ति कह कर ही सम्बोधित करती रही। क्या आपके शुभ नाम का मैं परिचय प्राप्त कर सकती हूँ ?" वह अपना ही प्रश्न करती गई। महाराज ययाति जो पूछ रहे थे, उसका उसे तनिक भी ध्यान नहीं था।

महाराज ययाति मुस्कराकर बोले, "बड़ी विचित्र बात है। मेरी बात का मानो आप उत्तर ही नहीं देना चाहतीं। आपको मेरी जिज्ञासा की कोई चिन्ता नहीं है।"

महाराज ययाति की बात सुन कर देवयानी ने एक अंगड़ाई ली और मौज के साथ हरी घास पर लेट गई। उसके वक्षस्थल में उभार आ गया। वह हँसकर बोली, "अब क्या कहीं जाने का समय रहा है राजन् ? रात्रि में क्या आप अपने सैनिकों को खोज सकेंगे ?

फिर सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि आप इतनी बड़ी भूल कर चुके हैं कि पिताजी आज आपको क्षमा नहीं कर सकते। यदि आपने भागने का प्रयास किया तो हमारी सेना आपको बन्दी बना लेगी।"

"आपकी सेना !" देवयानी के शब्द सुन कर महाराज ययाति ने कहा। उनके मस्तिष्क में विचारों की जो लड़ी बंधी थी, वह छिन्न-भिन्न हो गई। उनके बदन में सिहरन-सी आ गई।

वह अपने मन में बोले, 'तो क्या यह देवयानी नहीं है, कोई राज्य-कन्या है ?'

देवयानी ने मुस्कराकर कहा, "तो क्या आप समझते हैं कि आपके ही पास सेना है ? हमारे पास सेना नहीं है ?"

महाराज ययाति बोले," मुझसे बहुत बड़ी भूल हुई राज कन्ये !"

देवयानी खिलखिलाकर हँस पड़ी और हँसती-हँसती ही बोली, "राजकन्या मत कहो राजन् ! आचार्यकन्या कहो। वह आचार्य जिसके संकेत पर चारों दिशाओं से सैन्य-दल उमड़ पड़ते हैं।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"क्या मैं आपका परिचय प्राप्त कर सकता हूँ, अपरिचित कन्ये ?" महाराज ययाति विनम्रतापूर्वक बोले ।

"अपना परिचय दिये बिना आपको आचार्य-कन्या का परिचय कैसे मिल सकता है राजन् !" देवयानी बोली ।

महाराज ययाति मुस्कराकर बोले, "मेरा नाम ययाति है। एक छोटा-सा राज्य है मेरा ।"

देवयानी ययाति का परिचय प्राप्त करके उद्वेलित हो उठी । वह तुरन्त उठ कर बैठी होती हुई बोली,"आप महाराज ययाति हैं ! आचार्य शुक्राचार्य की कन्या देवयानी आपको सादर प्रणाम करती है ।"

देवयानी के ये शब्द सुनकर महाराज ययाति ठगे से रह गये। उनकी वाणी मौन हो गई। प्रकृति और विधाता की वह अनुपम कलाकृति, जिसके रूप का आचार्य कच ने वर्णन किया था, उनके सामने खड़ी थी ।

महाराज ययाति की स्तब्ध दृष्टि को देखकर देवयानी ने पूछा, "आप इस प्रकार आँखें गड़ा कर क्या देख रहे हैं ?"

"मैं देख रहा हूँ आचार्य-कन्ये कि आचार्य कच ने आपके रूप का जो वर्णन किया था आप उनके वर्णन की साक्षात् प्रतिमा हैं । उन्होंने आपके रूप का बखान करने में कोई तनिक भी अत्तिशयोक्ति नहीं की । आचार्य कच के नपे-तुले शब्दों को मानो विधाता ने आपके निर्माण में ज्यों-का-त्यों कलाकारिता के साथ एकत्रित कर दिया है। विधाता ने सचमुच अपने सहृदय कलाकार होने का परिचय दिया है, आपके रूप-निर्माण में । विधाता सफल हुआ है अपनी कला के प्रदर्शन में आचार्य-कन्ये !"

देवयानी महाराज ययाति के मुख से निकले शब्दों को सुनकर आत्मविभोर हो गई ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उसे अनायास ही आचार्य कच का स्मरण हो आया। उसने मुग्ध-दृष्टि से महाराज ययाति से पूछा, "आचार्य कच कहाँ हैं आजकल महाराज ययाति ?"

"वह हमारी राजधानी में है।

"आचार्य कच मेरे सहपाठी रहे हैं।"

"मुझे आचार्य कच ने यह सब कुछ बता दिया है आचार्य-कन्ये ! वह आप के बहुत कृतज्ञ हैं। वह अपने निर्माण में अपनी बहिन देवयानी का बहुत महत्त्वपूर्ण योगदान मानते हैं। उन्होंने भरी सभा में मुक्त-कंठ से यह घोषणा की थी कि वह जो कुछ भी हैं वह कभी न होते, यदि देवयानी की उन पर सुकृपा न होती। वह कहते हैं कि उनके अन्दर उनकी बहिन देवयानी के स्नेह ने ही संजीवनी-शक्ति का संचार किया है, उसी के बल पर वह मानव-मात्र को संजीवनी-शक्ति प्रदान कर सकेंगे," महाराज ययाति बोले।

"मुझे उनसे यही आशा थी महाराज ययाति ! भय्या ने मेरे कलुषित मन को धोकर निर्मल कर दिया। मेरे मन में जो विकार उत्पन्न होगये थे उन्हें धो दिया। मैं भय्या की आजन्म आभारी रहूँगी। उनके त्याग और तपस्यापूर्ण जीवन ने संसार के सामने जो दृष्टांत प्रस्तुत किया है वह मानव-समाज के लिए स्वयं में एक महान् संजीवनी-शक्ति है। यह संजीवनी, मुझे विश्वास है, प्रलय को भी पराजित करके मानव-संस्कृति को सुरक्षित रख सकेगी।"

महाराज ययाति बोले, "आचार्य कच ने आर्यों और अनार्यों के भेद-भाव को मिटा कर मानव-समाज का महान् कल्याण किया है।"

"इसमें कोई संदेह नहीं महाराज ययाति ? यह आचार्य कच की महान् कल्पना है। पिताजी ने आचार्य कच के इस कृत्य की मुक्त-कंठ से सराहना की है।" देवयानी बोली।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"आचार्य शुक्राचार्य ने !" आश्चर्यचकित होकर महाराज ययाति ने पूछा।

"हाँ राजन् ! आचार्य शुक्राचार्य ने, परन्तु आप इतने उद्विग्न-से क्यों हो गये ?"

"उद्विग्न नहीं, महान् परिवर्त्तन हो गया। आचार्य कच की नीति की सफलता पराकाष्ठा को पहुँच गई। उसने अपने अंतिम लक्ष्य को छू लिया।" महाराज ययाति बोले।

"इसमें भी क्या अब संदेह के लिए कोई स्थान शेष रह गया है महाराज ययाति ? अचार्य को पिताजी ने कल की आयोजित सभा में इस युग का महान् युगद्रष्टा घोषित किया है।" वह फिर मुस्कराकर बोली, "आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि कल ही हमारे राजा वृषपर्वा द्वारा आपके नाम मैत्री-संदेश भेजा गया है।"

"मैत्री-संदेश !" यह सुनकर महाराज ययाति की प्रसन्नता का पारावार न रहा। वह समस्त देश का भ्रमण करके आरहे थे। उनके राज्यों से मैत्री-सम्बन्ध स्थापित हो चुके थे। केवल यही राज्य शेष रह गया था, क्योंकि इस राज्य के साथ किसी प्रकार का भी सम्बन्ध स्थापित करने के लिये मुख्यादेश आचार्य कच ने अपने अधिकार में रखा था।

महाराज ययाति अपने जीवन के लक्ष्य में सफल हुए। आचार्य कच के प्रति श्रद्धा से उनका मस्तक झुक गया। वह नम्र होकर बोले, "आचार्य-कन्ये ! इस सब का श्रेय आचार्य कच की सफल राजनीति को पहुँचता है। मैं श्रद्धापूर्वक आचार्य का अभिवादन करता हूँ। आपके रूप में मुझे आचार्य कच अपने समक्ष खड़े दिखाई दे रहे हैं।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

यह कहकर महाराज ययाति ने भूमि पर अपने दोनों घुटने टिका कर हाथ जोड़ते हुए नेत्र बन्द कर लिये।

देवयानी की आत्मा खिल उठी। उसने स्वयं अपनी आत्मा में आचार्य कच के दर्शन किये और वह एक क्षण के लिए नेत्र बन्द किये खड़ी रही।

चन्द्रमा आकाश में ऊपर आचुका था। पूर्णिमा का चाँद था। उसकी चाँदनी उद्यान में फैल गई थी। देवयानी ने देखा हर्ष से समस्त उद्यान फूल उठा था, मंहक रहा था। तभी मलय पवन के एक झोंके ने दोनों के वदन में सरसराहट-सी पैदाकर दी। उनके वदन रोमांचित हो गये।

वहुत रात बीत चुकी थी। देवयानी को ध्यान आया कि उसके पिता उसकी प्रतीक्षा में व्याकुल होंगे।

वह बोली,"महाराज ययाति ! चलिए, आश्रम को चलें। पिताजी का मन उद्विग्न हो रहा होगा। मुझे अपने पास न पाकर ज्ञात नहीं उनकी क्या दशा हो रही हो।"

"चलो आचार्य-कन्ये ! मुझे भी अपने सैनिकों की चिन्ता हो रही है। उन्होंने मेरी खोज में वन का कोना-कोना छान डाला होगा और मुझे न पाकर उन्हें चिन्ता हो रही होगी।

मुझे भी उनकी खोज में जाना है।"

महाराज ययाति देवयानी को घोड़े पर बिठा कर आश्रम की ओर चल दिये।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

१२

अर्ध-रात्रि तक देवयानी के न लेटने पर आचार्य शुक्राचार्य चिंतित हो रहे थे। समस्त आश्रम का वातावरण व्याकुल हो उठा था। आश्रम के ब्रह्मचारी देवयानी की खोज में इधर-उधर भटक रहे थे। 'देवयानी देवयानी' चिल्ला कर उनके पुकारने से आश्रम से दूर-दूर तक की दिशाएँ गूँज रही थीं।

रात्रि के शांत वातावरण में इस शब्द की गूँज राजा वृषपर्वा के महल से भी जाकर टकराई। शर्मिष्ठा ने यह शब्द सुना तो उसका मन भयभीत हो उठा। उसके बदन से कपकपी छूटने लगी। उसे लगा कि मानो उसका दम घुट रहा था। मानो कोई उसके गले को आकर दबोच रहा था।

वह उठ कर पलंग पर बैठ गई। उसने खिड़की से बाहर झाँक कर देखा तो कुछ दिखाई नहीं दिया। चन्द्रमा आकाश में मुस्करा रहा था। उसने देखा उस चन्द्रमा के अन्दर देवयानी बैठी मुस्करा रही थी।

शर्मिष्ठा उस से नेत्र न मिला सकी। उसने तीव्रतापूर्वक खिड़की बन्द कर ली और फिर अपने पलंग पर जाकर लेट गई। उसका श्वांस तीव्र गति से चलने लगा। उसे लगा कि उसे कहीं ज्वर तो नहीं हो गया था, परन्तु उसका बदन पहिले से भी अधिक ठण्डा पड़ गया था।

शर्मिष्ठा ने बड़े प्रयत्न से साहस बटोरा। देवयानी का सुन्दर रूप उसके सम्मुख आया और हृदय में ज्वाला-सी प्रज्वलित होनी आरम्भ हो गई।

यही वह रूप था, जो उसे बचपन से आज तक अपमानित करता आया था। उसने अपने समक्ष शर्मिष्ठा के रूप को सर्वदा छाया के ही

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

समान देखा था, कभी उसे उभरने नहीं दिया था।

शर्मिष्ठा ने अपने मन को दृढ़ करके कहा, 'मैंने ठीक किया, जो कुछ किया।' वह नेत्र बन्द करके पलंग पर लेट गई। वह सोने की चेष्टा करने लगी, परन्तु नींद नहीं आई।

उसने अपने कमरे की खिड़की को खोल दिया।

चाँद के प्रकाश में उसने देखा राज-पथ पर आश्रम को जाने वाली सड़क पर एक घुड़सवार आ रहा था।

वह काँप उठी। उसने घुड़सवार के सामने एक स्त्री को बैठे देखा। वह समझ गई। उसे रात्रि-भर नींद नहीं आई। वह आचार्य शुक्राचार्य के क्रोधी स्वभाव से भयभीत हुई। उसके मस्तक पर स्वेद-बिन्दु झलक आये।

वह निष्प्राण-सी होकर अपने पलंग पर गिर पड़ी और जाने कब तक अचेत-पड़ी रही।

उसके मन में अपने कुकृत्य पर ग्लानि होनी आरम्भ हो गई। देवयानी की सरलता और अपनी कुटिलता, दोनों आकर उसके सामने खड़ी हो गईं।

शर्मिष्ठा सिहर उठी। उसके मन में आया वह देवयानी के चरणों पर जाकर अपना मस्तक रख दे। वह उसे अवश्य क्षमा कर देगी।

उधर महाराज ययाति देवयानी को लेकर आचार्य शुक्राचार्य के आश्रम में पहुँच गये। घोड़े को उन्होंने ठीक आचार्य शुक्राचार्य की कुटिया के सामने रोका और देवयानी को सावधानी से नीचे उतारा।

तब तक आचार्य शुक्राचार्य भी वहाँ आ गये थे। देवयानी को अपनी आँखों के समक्ष देखकर उनके मन की चिंता दूर हुई।

आचार्य शुक्राचार्य ने आगे बढ़कर देवयानी को अपनी छाती से लगाया। उनके नेत्रों में जल उभर आया। वह कातर वाणी में बोले,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"इतनी रात तक तू कहाँ रही देवयानी ? अपने वृद्ध पिता का भी ध्यान न आया तुझे ! देख मेरी क्या दशा हो गई तेरी प्रतीक्षा में । आश्रम का जन-बच्चा तेरी खोज में व्याकुल होकर वन-उपवनों में भटक रहा है । तू देख रही है देवयानी ! आकाश पर मँडराते हुए पक्षियों को ? इन्हें चैन नहीं पड़ी तेरे बिना । ये सो नहीं सके । ये सब तेरी ही खोज में जाने कितनी देर से आकाश में उड़े-फिर रहे हैं ।

तेरे आने पर अब देख कैसे लौट आये हैं । सब ओर वृक्षों की डालों पर बैठे, कैसी कातर दृष्टि से तेरी ओर निहार रहे हैं ।

वह देख, सामने खड़ी तेरी गय्या । इसने तो सन्ध्या से रम्भा-रम्भा कर प्राण दे दिये । जा तनिक इसकी पीठ पर हाथ फेर कर कह दे 'देवयानी आ गई ।'

देवयानी ने अपनी गय्या के पास जाकर स्नेह से उसकी थूथड़ी को अपने हाथों में लेकर सहलाया और बोली, "मेरी प्यारी गय्या ! देवयानी लौट आई । वह पहुँच तो ऐसे लोक में गई थी कि जहाँ से कोई लौटा नहीं, परन्तु एक अपरिचित व्यक्ति ने उसे जाने नहीं दिया । वह मार्ग रोक कर खड़ा हो गया और उसे वापिस तेरे पास लौटा लाया ।"

"तू कहाँ जा रही थी देवयानी !" उत्सुकतापूर्वक आचार्य शुक्राचार्य ने पूछा ।

पिताजी की बात सुनकर देवयानी के नेत्रों से अश्रु बह चले । उसने अपने हृदय की अथाह पीड़ा में डूबी हुई वह करुण-कथा अपने पिताजी को सुनाई, जिसमें शर्मिष्ठा द्वारा उसे उद्यान के जलाशय के पास ले जाने और जलाशय में गिरा देने की सूचना थी ।

वह कृतज्ञतापूर्वक महाराज ययाति की ओर संकेत करके बोली "यह न पधारते तो आपकी लड़की परलोक में पहुँच गई थी ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

देवयानी की बात सुनकर आचार्य शुक्राचार्य के क्रोध का पारावार न रहा। वह क्रोध में आग-बगूला हो गये। उन्हें अपने तन-बदन की सुधि न रही।

उनके क्रोध को देखकर देवयानी काँप उठी। वह हाथ जोड़ कर बोली, "पिताजी ! शर्मिष्ठा मूर्ख लड़की है। उससे भूल हो गई। आप उस पर क्रोध न करें। वह मेरी बचपन की सहेली है। मैं उसका कोई अनिष्ट सहन नहीं कर सकती।"

देवयानी की बात सुनकर आचार्य शुक्राचार्य का हृदय गद्-गद् हो गया। उनके नेत्रों से अश्रुओं की झड़ी लग गई।

महाराज ययाति ने आगे बढ़कर आज्ञा माँगते हुए कहा, "आचार्य शुक्राचार्य के चरणों में आचार्योचित सम्मान प्रकट करके मैं विदा होने की आज्ञा चाहता हूँ।"

आचार्य शुक्राचार्य अपरिचित व्यक्ति की ओर देख कर कृतज्ञता-पूर्ण स्वर में बोले, "वीर युवक ! इस समय तुम आश्रम में हो। यहाँ आकर तुम्हें आश्रम के नियमों का पालन करना होगा। यहाँ आने के पश्चात् रात्रि में कोई यात्री प्रस्थान नहीं कर सकता।

रात्रि को अतिथिशाला में विश्राम करो। प्रातःकाल हम तुम्हारे सम्मान में एक सभा का आयोजन करेंगे। उसमें तुम्हारे साहसपूर्ण कार्य की प्रशंसा के साथ तुम्हें पुरस्कार दिया जायेगा।"

आचार्य शुक्राचार्य की आज्ञा को टालने की सामर्थ ययाति में नहीं थी। वह नत मस्तक होकर बोले, "जो आज्ञा आचार्य !"

आगंतुक की शिष्टता का आचार्य शुक्राचार्य पर गम्भीर प्रभाव हुआ। उन्होंने स्नेहपूर्ण दृष्टि से महाराज ययाति की ओर देखा।

देवयानी महाराज ययाति को अपने साथ लेकर अतिथिशाला की ओर चली गई और उन्हें उसी कुटिया में ठहराया, जिसमें आचार्य कच रहा करते थे।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वहाँ पहुँच कर देवयानी बोली, "राजन् ! यही वह पुण्य स्थान है, जहाँ रह कर आचार्य कच ने पाँच वर्ष का अपना अध्ययन-कार्य किया था।"

महाराज ययाति ने उस कुटिया को सादर प्रणाम किया और उसकी मिट्टी अपने मस्तक पर लगाई।

महाराज ययाति की आचार्य कच के प्रति इतनी श्रद्धा देख कर देवयानी के नेत्र सजल हो गये।

उनके विश्राम की व्यवस्था कर देवयानी उनके भोजन का प्रबन्ध करने चली गई।

देवयानी ने पाकशाला में जाकर देखा तो वहाँ एक पत्तल पर उसका अपना भोजन रखा था। यह देखकर देवयानी को आचार्य कच की स्मृति हो आई। उसने इसी प्रकार अपना भोजन उन्हें ला कर दिया था।

देवयानी भोजन की पत्तल ले कर महाराज ययाति के पास पहुँची तो महाराज ययाति खड़े हो गये। वह सरल वाणी में बोले, "आचार्य-कन्ये ! आपने इस समय बहुत कष्ट किया। मुझे अधिक भूख नहीं है, परन्तु आप का प्रसाद मुझे कब-कब प्राप्त होगा।" यह कह कर उन्होंने भोजन की पत्तल देवयानी के हाथ से ले ली।

भोजन करते-करते महाराज ययाति की दृष्टि पास आसन पर बैठी देवयानी पर गई तो उनका हाथ रुक गया।

देवयानी मुस्कराकर बोली, "आपने भोजन करना बन्द क्यों कर दिया ?"

महाराज ययाति बोले, "मुझ से एक धृष्टता बन पड़ी आचार्य-कन्ये ! क्षमा करना। मैंने भोजन आरम्भ करने से पूर्व आपको भोजन पर आमंत्रित नहीं किया।"

देवयानी सरलता से बोली, "आप भोजन कीजिये। अभी कुछ और

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सामग्री शेष है। बचेगा तो मैं भी खा लूँगी।"

देवयानी के ये शब्द सुनकर महाराज ययाति का मन खिल उठा। उनके हृदय में एक गुदगुदी-सी पैदा हो गई। वह आत्मविभोर हो गये। उन्होंने देवयानी के मुख-मण्डल पर प्रथम बार मुग्ध दृष्टि से देखा। उनके नेत्र देवयानी की पुतलियों में समा गये। वह कुछ क्षण तक एक-टक देवयानी के चेहरे पर देखते रहे।

देवयानी भी मुग्धा के समान ययाति के समक्ष बैठी रही और अपनी मधुर मुस्कान ययाति के ऊपर बिखराती रही। दोनों मौन थे, परन्तु दोनों के मन आपस में बातें कर रहे थे।

देवयानी ने धीरे से पूछा, "क्या देखा राजन् ?"

"त्याग और तपस्या की प्रतिमा।" महाराज ययाति बोले।

"यह मेरा नहीं, आचार्य कच का रूप है। मैं उनके विचारों की प्रतिमूर्ति हूँ।" देवयानी बोली।

महाराज ययाति भावातिरेक में बोले, "आचार्य-कन्ये ! मुझे आचार्य कच ने अपनी प्रतिमूर्ति को अंक में समेट लाने की अनुमति देकर भेजा है।"

"आचार्य कच ने !" आश्चर्य-चकित होकर देवयानी ने पूछा।

"हाँ आचार्य-कन्ये ! आचार्य कच ने। उनकी हार्दिक इच्छा है कि आप उनकी साम्राज्ञी बनकर वहाँ पधारें, जिससे उनका शुष्क और नीरस जीवन सरस हो और वह आपके मुख-मण्डल की आभा से अनुप्राणित हो सकें।

आचार्य कच ने एक आश्रम ठीक आपके इस आश्रम जैसा ही निर्मित कराया है, परन्तु उनका मत है कि अभी उसमें एक कमी रह गई है।" महाराज ययाति बोले।

"वह क्या कमी है ?" देवयानी ने उत्सुकतापूर्वक पूछा।

"वह कमी आपकी ही है आचार्य कन्ये ? आपके बिना आचार्य कच को वह आश्रम सूना-सूना सा लगता है। उन्हें लगता है कि मानो वहाँ

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कुछ है ही नहीं। उन्हें वह सब उजड़ा हुआ भू-खण्ड सा प्रतीत होता है। वह कहते हैं कि आश्रम को सरसता प्रदान करने की शक्ति एक मात्र आप में है। आप यदि चाहें तो वहाँ के वृक्षों और बेलों को लहलहा सकती हैं, आप यदि चाहे तो इन्हें पुष्पों से आच्छादित करके महँका सकती है। आप यदि चाहे तो आश्रम के अणु-अणु में यौवन प्रस्फुटित कर सकती हैं। आप वहाँ स्नेह की धारा बहा सकती है। आप वहाँ आनन्द का साम्राज्य स्थापित कर सकती हैं।

मैं देख रहा हूँ आचार्य-कन्ये ! आप ही यह कार्य कर सकती हैं। आपके अतिरिक्त अन्य कोई इसे नहीं कर सकता।"

देवयानी महाराज ययाति की बात सुनते-सुनते अचेतन-सी हो गई। उसे आचार्य कच की एक-एक बात याद आने लगी। उन्होंने विदा होते समय कहा था, 'देवयानी ! मैं अपने मस्तिष्क पर अविश्वास नहीं कर सकता और मेरे मस्तिष्क ने तुम्हारा गम्भीर अध्ययन किया है। मैं तुम्हें एक विशाल साम्राज्य की साम्राज्ञी के रूप में देखना चाहता हूँ।'

देवयानी का हृदय-कुसुम खिल उठा. प्रेमांकुर लहलहाने लगे। उसने देखा कि उसके वक्षस्थल में सहसा उभार आ गया। उसका अंग-अंग फड़कने लगा। उसके नेत्रों की पुतलियों में रस भर आया। वह हँस पड़ी, खिलखिलाकर हँस पड़ी और खड़ी होकर इठलाती हुई बोली, "रसोई में जो कुछ भोजन शेष है उसे भी यहीं ले आती हूँ। हम दोनों साथ-साथ बैठकर भोजन करेंगे।"

देवयानी उठकर चली तो महाराज ययाति को लगा मानो वह स्वयं उठे चले जा रहे थे। उनका सर्वस्व देवयानी के चरणों से लिपटा चला जा रहा था, परन्तु वह एक शब्द भी न बोल सके। वह कुटिया में मौन बैठे रहे और सोचते रहे कि क्या सचमुच किसी प्रकार यह सम्भव हो सकता है कि यह विधाता का सुन्दरतम् पुष्प उन्हें प्राप्त हो सके। उन्हें लगा कि यदि वह वहाँ से अब इस विधाता की अनुपम कला-कृति

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

को प्राप्त किये बिना लौट गये तो उनका जीवन वृथा हो जायेगा। देवयानी के बिना वह रह नहीं सकेंगे।

थोड़ी देर में देवयानी एक दूसरी पत्तल पर कुछ भोजन-सामग्री लेकर आ गई और आसन पर बैठ कर खाती हुई बोली, "राजसी भोजन के समक्ष आश्रम का भोजन आपको फीका-फीका सा लग रहा होगा राजन्।"

देवयानी की बात सुनकर महाराज ययाति जैसे स्वप्न से जागृत हो गये। वह देवयानी के चेहरे पर सरल दृष्टि पसार कर बोले, "आचार्य कन्ये! यदि सच पूछो तो मुझे आज तक भोजन में कभी इतना आनन्द नहीं आया, जितना आज आ रहा है।"

देवयानी मुस्कराकर बोली, "झूठ! मैं मान नहीं सकती। आप आश्रम के भोजन की मान-रक्षा के लिये इन शिष्ट शब्दों का प्रयोग कर रहे हैं। जंगल के इन फल-फूलों में वह आनन्द कहाँ होगा जो राजसी व्यजनों में प्राप्त होता है।"

महाराज ययाति उतनी ही सरल वाणी में बोले, "देव-कन्ये! ययाति ने जीवन में कभी झूठ नहीं बोला। इस देह से यह सिर उतरने की भी स्थिति पैदा हो तो तब भी वह झूठ नहीं बोल सकता। शिष्टाचार के नाते भी कभी ययाति ने झूठ नहीं बोला।

महाराज ययाति के ये वाक्य सुनकर देवयानी का हृदय हिलोरें लेने लगा। उसने अनुभव किया कि वे दोनों एक-दूसरे के बहुत निकट आ चुके थे।

भोजन के पश्चात् देवयानी अपनी कुटिया में चली गई और महाराज ययाति चटाई बिछाकर उस पर लेट गये।

महाराज ययाति रात्रि-भर सो नहीं सके। देवयानी का रूप उन्हें रह-रह कर याद आता रहा।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दूसरे दिन प्रातःकाल आचार्य शुक्राचार्य ने राजा वृषपर्वा को बुलाकर रात्रि की समस्त घटना उनके सामने रखी तो राजा वृषपर्वा शर्मिष्ठा के कुकृत्य पर बहुत लज्जित हुए। क्रोध से उनके नेत्र लाल हो गये। वह एक क्षण के लिए भूल ही गये कि शर्मिष्ठा उनकी अपनी इकलौती कन्या है। वह बोले, "आचार्य! शर्मिष्ठा को प्राण-दण्ड मिलना चाहिए।"

वृषपर्वा की बात सुनकर आचार्य शुक्राचार्य बोले, "दण्ड-विधान से तुम्हारा कोई सम्बन्ध नहीं है राजन्! घोषणा करा दो कि संध्या को आश्रम में एक विराट् सभा का आयोजन होगा।

सभा में देवयानी को बचाने वाले व्यक्ति को पुरस्कार और शर्मिष्ठा को दण्ड दिया जायेगा।"

राजा वृषपर्वा ने आचार्य शुक्राचार्य को मस्तक नवा कर, वहाँ से प्रस्थान किया और राजदूत को भेजकर नगर में आयोजित सभा की सूचना देने के लिये डोंडी पिटवा दी।

समस्त नगरी में सन्नाटा छा गया। आचार्य शुक्राचार्य के क्रोध से कोई व्यक्ति अपरिचित नहीं था।

शर्मिष्ठा के कुकृत्य की सभी ने निन्दा की और यात्री के साहस और सद्भावनापूर्ण व्यवहार की प्रसंशा की।

धीरे-धीरे आयोजित सभा का समय हो गया।

नगर-निवासी आ-आकर सभा में एकत्रित होने लगे। थोड़ी ही देर में सभा का विशाल पंडाल भीड़ से खचाखच भर गया।

सर्वोच्च आसन पर आचार्य शुक्राचार्य पधारे। उनके निकट राजा के आसन पर राजा वृषपर्वा सुशोभित थे।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दूसरी ओर महाराज ययाति और देवयानी बैठे थे।

इनसे कुछ दूरी पर एक कटघरे के अन्दर शर्मिष्ठा बन्दिनी के रूप में खड़ी थी।

सभा की कार्यवाही आरम्भ हुई।

आचार्य शुक्राचार्य अपने आसन से गम्भीर वाणी में बोले, "सज्जनो ! कल रात्रि को जैसी घटना इस नगरी में घटी ऐसी पहिले कभी नहीं घटी। राजा वृषपर्वा के राज्य में सभी लोग शिष्ट और विवेकी हैं। कह नहीं सकते कि क्यों पुत्री शर्मिष्ठा के अन्दर ऐसी दुर्मति उत्पन्न हुई कि उसने अपनी बचपन की सहेली, वह सहेली जिसके हृदय में उसके प्रति सर्वदा ही एक बहिन का स्नेह रहा है, देवयानी को उद्यान के जलासय में सोखे से गिरा दिया।"

उन्होंने ययाति की ओर संकेत करके कहा, "यह युवक यदि अकस्मात् देवयानी के पानी में गिरने का नाद सुन कर वहाँ न पहुँच गया होता तो देवयानी आज आप लोगों के बीच न होती।"

सभा में उपस्थित सज्जनों ने श्रद्धापूर्ण दृष्टि से कृतज्ञता के साथ महाराज ययाति की ओर देखा।

आचार्य शुक्राचार्य बोले, "मैं अपने राजा वृषपर्वा और आप सब की ओर से इस युवक के प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

मैं इस युवक को इसके इस साहस और सहृदयतापूर्ण कार्य के लिए पुरस्कृत करना चाहता हूँ, परन्तु इससे पूर्व कि पुरस्कार घोषित करूँ, मैं नवयुवक से चाहूँगा कि यह सभा में अपना पूर्ण परिचय दे।"

आचार्य शुक्राचार्य की गम्भीर वाणी सुनकर महाराज ययाति अपने आसन से उठे और आचार्य शुक्राचार्य के समक्ष जाकर विनम्र वाणी में बोले, "आदरणीय आचार्य राजन् वृषपर्वा और नगरी के सम्मानित महानुभावों को राजा ययाति सादर प्रणाम करता है।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

'राजा ययाति····राजा ययाति·····राजा ययाति·····राजा ययाति,' सभा में उपस्थित व्यक्तियों के मुख से आश्चर्य के साथ निकला।

आचार्य शुक्राचार्य और महाराज वृषपर्वा ने भी होठों-ही-होठों में कहा 'महाराज ययाति !'

महाराज ययाति बोले, "मैंने सहयोग और सद्भावना का संदेश लेकर अपनी नगरी से देशाटन के लिए प्रस्थान किया था। सम्पूर्ण देश के राज्यों का भ्रमण करने के पश्चात् यहाँ आने का मुझे राजधानी से समाचार मिला, परन्तु यह घटना समय से पूर्व ही मुझे आप सबके मध्य ले लाई। मैं अपना सहयोग और सद्भावना-संदेश, वह महान् संदेश जिसे आचार्य शुक्राचार्य के यशस्वी शिष्य आचार्य कच ने प्रदान किया है, आप सबके सम्मुख रखता हूँ। इस संदेश का भारत के विशाल मानव-समाज ने हृदय से स्वागत किया है। मुझे आशा है कि यहाँ भी इसे समुचित सम्मान प्राप्त होगा।"

महाराज ययाति की बात सुनकर आचार्य शुक्राचार्य के मन को असीम शान्ति मिली। उनके मस्तिष्क में ब्राह्मण और क्षत्री की समस्या अभी तक उलझन पैदा कर रही थी, परन्तु अपने शिष्य आचार्य कच के सिद्धान्त ने उसे निर्मूल घोषित कर दिया। जहाँ आर्य और अनार्य का भेद-भाव ही समाप्त हो गया वहाँ, क्षत्री और ब्राह्मण के बन्धन कैसे ठहर सकते थे ?

आचार्य शुक्राचार्य ने अपना विचार दृढ़ कर लिया। वह सारगर्भित वाणी में बोले, "राजन ययाति ! तुमने इस नगरी में पधारने की कृपा कर, हमें शिष्य कच का जो सहयोग और सद्भावना-संदेश दिया, उसका हम हृदय से स्वागत करते हैं।

भारत के अन्य राज्यों में तुमने यह संदेश दिया वहाँ तुम्हें कोई पुरस्कार प्राप्त नहीं हुआ। यहाँ तुम्हें पुरस्कार प्राप्त होगा।" यह कह कर आचार्य शुक्राचार्य के मुख-मण्डल पर मुस्कान

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

छा गई।

यह एक विचित्र घटना थी जो आज सभा में उपस्थित सज्जनों ने देखी। वरना आचार्य शुक्राचार्य का मुस्कान से क्या सम्बन्ध ? उनके मस्तक की सिलवटें चौबीस घंटों में एक क्षण के लिए भी कभी किसी ने खुली हुई नहीं देखी थीं। उनके नेत्रों का रक्त-वर्ण कभी बदलता नहीं था। आज उनमें लाली नहीं थी। आज वहाँ भी शान्ति का साम्राज्य था।

आचार्य शुक्राचार्य देवयानी को अपने पास बुलाकर बोले, "राजन् ययाति ! मेरे पास केवल एक यह पुरस्कार है तुम्हें देने के लिये। वचन दो कि तुम इस पुरस्कार को प्राप्त करने के पश्चात् अपना प्रेम किसी अन्य कुमारी को अर्पित नहीं करोगे। देवयानी तुम्हारे राज्य की साम्राज्ञी होगी।"

ययाति नतमस्तक हो कर बोले, "ययाति वचन देता है आचार्य ! आपकी आज्ञा का प्राण रहते पालन करेगा।"

आचार्य शुक्राचार्य ने सभा के मध्य देवयानी का हाथ महाराज ययाति के हाथ में देकर अपना शुभ आशीर्वाद प्रदान किया। सभा में हर्ष-ध्वनि हुई।

पुरस्कार के कार्य से निवृत्त होकर आचार्य शुक्राचार्य की दृष्टि कटघरे में बंदिनी शर्मिष्ठा की ओर गई।

आचार्य शुक्राचार्य गम्भीर वाणी में बोले, "शर्मिष्ठा ! सभा के बीच आये।"

शर्मिष्ठा कटघरे से निकल कर आचार्य शुक्राचार्य के समक्ष आ गई। उसकी दृष्टि नीचे को थी और बदन से पसीना छूट रहा था।

आचार्य शुक्राचार्य बोले, "राजन् ययाति ! शर्मिष्ठा देवयानी की बचपन की सहेली है। यह देवयानी से पृथक नहीं रह सकती। यह भी तुम्हारे साथ जायेगी। मैं शर्मिष्ठा को भी देवयानी की सखी स्वरूप

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तुम्हें भेंट करता हूँ, परन्तु ध्यान रहे कि इसके साथ राजकुमारी-जैसा ही व्यवहार रहना चाहिए।"

महाराज ययाति बोले, "आचार्य की आज्ञा का पालन किया जायेगा।"

सभा-जनों के हृदयों में जो एक भय छाया हुआ था, वह हर्ष में परिणत हो गया। शर्मिष्ठा को मिलने वाले दण्ड की काली घटा फट गई और सबने आचार्य शुक्राचार्य के निर्णय की सराहना की।

शर्मिष्ठा दौड़कर रोती हुई देवयानी के पैरों पर गिर पड़ी। देवयानी ने शर्मिष्ठा को उठा कर छाती से लगा लिया और उसके नेत्रों के आँसू पोंछ कर बोली, "पगली, कल तुझे हुआ क्या था?"

"मैं सचमुच पागल हो गई थी बहिन! मुझे क्षमा कर दो। जब तक तुम मुझे क्षमा नहीं करोगी, मेरे चित्त को शान्ति नहीं मिलेगी।"

देवयानी ने स्नेहपूर्वक शर्मिष्ठा को क्षमा कर दिया।

महाराज ययाति ने देखा महाराज ययाति के सैनिक उनकी खोज करते हुए वहाँ आ पहुँचे।

राजा वृषपर्वा ने सब का स्वागत किया संध्या को महाराज ययाति के सम्मान में विराट भोज का आयोजन हुआ।

महाराज ययाति ने अपने एक दूत को उसी समय यह शुभ समाचार लेकर आचार्य कच के पास भेज दिया।

दूसरे दिन महाराज ययाति ने देवयानी और शर्मिष्ठा को सम्मान-पूर्वक अपने रथ पर बिठाया और आचार्य शुक्राचार्य तथा राजा वृषपर्वा को सादर प्रणाम करके अपनी राजधानी की ओर प्रस्थान किया।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आचार्य कच का आश्रम अब पूर्ण व्यवस्था के साथ संचालित हो गया था। देश-विदेश के विद्यार्थी वहाँ अध्ययन करने के लिये आये हुए थे।

आचार्य कच के आश्रम की ख्याति दूर-दूर तक फैल चुकी थी। इस आश्रम में आर्य और अनार्य का भेद नहीं था, वर्ण-व्यवस्था का भेद नहीं था, सब जिज्ञासुओं को समान रूप से शिक्षा ग्रहण करने का अधिकार था।

महाराज ययाति का दूत राजधानी में आया तो राजमहल से ज्ञात हुआ कि आचार्य कच आश्रम में हैं।

दूत संदेश लेकर आश्रम में पहुँचा। आचार्य कच आश्रम के उद्यान में भ्रमण कर रहे थे।

दूत ने महाराज ययाति का पत्र आचार्य कच को दिया। वह सम्पूर्ण शुभ समाचार सुना कर बोला, "महाराज ! सम्राट को उनके अनुरूप ही वधू प्राप्त हुई, इसका हमें हार्दिक संतोष है।"

आचार्य कच मुस्कराकर बोले, "अपनी साम्राज्ञी तुम्हें पसंद आई। हमारे नगर वासियों को भी अच्छी लगेंगी ?"

"बहुत अच्छी लगेंगी महाराज ! राज्य में लक्ष्मी आ जायेगी। उनकी आभा से राज्य चमक उठेगा। बहुत ही अनुपम रूप दिया है उन्हें विधाता ने !" दूत बोला।

आचार्य कच ने कहा, "तुम तुरन्त' जाकर महामंत्री को बुला लाओ। तुम्हारी साम्राज्ञी आ रही है। उनके सम्मान में नगर को, जितना भी सजा सको, सजा डालो।"

"जो आज्ञा महाराज !" कह कर दूत महामंत्री के पास चला

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

गया। महामंत्री तुरन्त आचार्य कच के पास आये।

आचार्य कच बोले, "महामंत्री ! आप ने कुछ सुना। महाराज ययाति को पुरस्कार स्वरूप हमारे आचार्य ने अपनी कन्या देवयानी भेंट की हैं। वह तुम्हारी सम्राज्ञी होंगी। उनके स्वागत में सम्पूर्ण नगरी को सजा डालो। राज्य के सब कलाकारों को बुलवाकर राज-पथों को अलंकृत करा दो। बन्दनवारों और पताकाओं से राजमहलों को शोभायमान कर दो। नगरी के सब बाग-तड़ागों को स्वच्छ बनवा दो। देवालयों और जलाशयों की स्वच्छता पर विशेष ध्यान देना। तुम्हारी सम्राज्ञी को ऐसे स्थानों पर भ्रमण करने की विशेष रूचि है। गंगा-तट के घाटों को ठीक कराकर उन्हें नया बनवा दो। इस समय अपनी नगरी को ऐसा अलंकृत कर दो कि नगरी के द्वार पर खड़े होकर महाराज ययाति को भ्रम होने लगे कि वह किसी दूसरी नगरी में तो नहीं आ गये।"

महामन्त्री का मन यह शुभ समाचार पाकर प्रफुल्लित हो गया। वह सहर्ष बोले, "आचार्य की आज्ञा का पूर्ण रूप से पालन किया जायेगा।"

महामंत्री उसी समय वहाँ से जाकर इस शुभ कार्य पर जुट गये। उन्होंने राज्य के सब कलाकारों को बुलवाकर नगरी को अलंकृत करने के कार्य पर लगा दिया। पूर्ण संलग्नता के साथ रात-दिन कार्य हुआ। रात-को-रात और दिन-को-दिन नहीं गिना गया।

आचार्य कच ने नगरी की शोभा का स्वयं निरीक्षण किया और जहाँ-जहाँ जो त्रुटि दृष्टिगोचर हुई, उसे उन्होंने अपने सामने ठीक कराया।

आचार्य कच ने देखा सचमुच नगरी का रूप और रंग बदल गया था। उन्हें स्वयं को उसे पहचिानने में धोखा होने लगा। उन्होंने महा-मन्त्री को उनकी संलग्नता और कला-कुशलता के लिए धन्यवाद दिया

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

और बोले, "सब कुछ ठीक हो गया। अब एक ऐसा रथ सुसज्जित कराओ जिस पर बिठाकर सम्राज्ञी को नगर की शोभा दिखाने के लिए ले जाया जायेगा। इस रथ को केवल पुष्पों से अलंकृत कराना, हीरे जवाहिरातों या माणिक्य और मोतियों से नहीं। वह ऋषि-कन्या हैं, प्रकृति के पुष्पों में पली हैं, हीरे, माणिक्य और मोतियों में नहीं। मणियों की शोभा के मध्य वह अपनी आत्मा को घुटा-घुटा अनुभव करेंगी।"

महामन्त्री ने आचार्य कच की आज्ञा का तत्परता और कुशलता के साथ पालन किया।

नगरी की सब व्यवस्था ठीक करा के उनका ध्यान अपने आश्रम की ओर गया। आश्रम के प्रत्येक पौधे और बेल को आचार्य कच ने स्वयं जाकर देखा। सब जलाशयों को स्वच्छ जल से पूर्ण कराया और प्रपातों को देखा। अन्त में चलते-चलते वह आश्रम की कुटियों की ओर गये। वह उस कुटिया पर जाकर ठहर गये, जो उन्होंने ठीक उसके अनुरूप बनवाई थी जिस कुटिया में आचार्य शुक्राचार्य के आश्रम में देवयानी रहती थीं।

आचार्य कच उसे देखकर बहुत देर तक सोचते रहे। वह सोचते रहे कि वह कुटिया उन्होंने व्यर्थ बनवाई। साम्राज्ञी देवयानी क्या वहाँ रहने के लिये आई हैं?

वह कुछ देर विचारों के गहरे सागर में डूबे रहे। फिर अचानक उनके होंठों पर मुस्कान खिल उठी। उनके मन ने कहा, 'सम्राज्ञी का आश्रम से क्या सम्बन्ध! परन्तु क्या कभी आचार्य कच की बहिन देवयानी उनसे मिलने नहीं आयेगी? वह आयेगी तो उसे मैं कहाँ ठहराऊँगा? देवयानी की यह कुटिया देवयानी के ही लिये सुरक्षित रहेगी।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आचार्य कच महामंत्री से बोले, "महामंत्री ! इस कुटिया को भी फूलों से सुसज्जित कराओ। इसके मार्ग में पुष्प बिछवा दो। इसकी दीवारों पर पुष्प मालाएँ टँगवा दो। इसके आँगन में पुष्पों का बिछावन करा दो। इसके मार्ग में दोनों ओर की बंदनवारें भी पुष्प-मालाओं की ही होनी चाहिएँ।"

महामन्त्री ने आचार्य कच की आज्ञा के अनुसार वह सब कार्य सम्पन्न कराया और फिर सब लोग महाराज ययाति के स्वागत के लिए नगरी से आगे बढ़कर देव-मन्दिर के निकट पहुँच गये।

वे वहाँ जाकर खड़े ही हुए थे कि सुदूर पश्चिम-दिशा में महाराज ययाति के रथ की पताका फहराती दिखाई दी।

आचार्य कच बोले, "महाराज ययाति का रथ आ रहा है। सैनिक गण उनके साथ हैं।"

उपस्थित जनों की भीड़ अपनी सम्राज्ञी को देखने के लिए आतुर हो गई। उनके हृदय उमंग से खिल उठे।

थोड़ी देर में महाराज ययाति का रथ आचार्य कच के समक्ष आकर रुक गया।

एकत्रित भीड़ ने रथ पर पुष्पों की वर्षा की। आचार्य कच ने आगे बढ़कर देवयानी का स्वागत किया और देवयानी के गले में पुष्प-माला डाल कर बोले, "कच सम्राज्ञी का स्वागत करता है।"

देवयानी ने उपस्थित अपार जन-समूह के समक्ष झुक कर आचार्य कच की चरण-रज ली और अपने मस्तक पर लगाकर बोलीं, "सम्राज्ञी देवयानी आचार्य कच की चरण-धूलि अपने मस्तक पर लगाकर अपने भाग्य की सराहना करती है।"

आचार्य कच शर्मिष्ठा की ओर देखकर बोले, " तुम भी आ गईं शर्मिष्ठा ! अपने चोर को बन्दी बनाने के लिये तुम्हें यहाँ तक आना पड़ा ? "

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आचार्य कच की बात सुनकर देवयानी के मुख-मंडल पर मुस्कान बिखर गई।

शर्मिष्ठा बोली, "भौंरा निर्मोही हो सकता है आचार्य कच! पुष्प अपनी सुगन्धि अपने अन्दर समेटकर नहीं रख सकता।"

"देवयानी की बात जाने दो शर्मिष्ठा! अपनी बात कहो। देवयानी पराई हो गई। वह महाराज ययाति की धर्मपत्नी हैं।"

आचार्य कच की बात सुनकर शर्मिष्ठा लजा गई।

देवयानी को पुष्पों से सुसज्जित रथ पर बिठाकर नगर की शोभा दिखाई गई।

देवयानी के साथ शर्मिष्ठा को देखकर कच का मन खिन्न हो गया। उन्होंने किसी से कुछ नहीं कहा, परन्तु उनका मन बहुत व्याकुल हुआ। उन्हें मंगल में अमंगल दिखाई दिया। उनका उत्साह कुछ भंग सा हो गया।

देवयानी ने चारों ओर घूमकर देखा वहाँ कच का कहीं पता नहीं था। वह सीधे अपने आश्रम को चले गये। उनके मस्तिष्क को भविष्य की आशंकाओं ने घेर लिया। उन्हें लगा कि एक दिन निश्चय ही चन्द्रमा को राहू ग्रस लेगा। भावी आशंका से उनका हृदय विदीर्ण हो गया।

आचार्य कच अपने आश्रम की एकांत कुटिया में जाकर बैठ गये। उनका मन भयातुर था।

नगरी का भ्रमण करके देवयानी की सवारी राजभवन में पहुँची तो देवयानी ने महाराज ययाति से पूछा, "आचार्य कच कहीं दिखाई नहीं दे रहे?"

देवयानी के कहने पर महाराज ययाति को ध्यान आया। वह अभी तक नगरी की शोभा देखने में लिप्त थे और मन-ही-मन आचार्य कच के प्रबन्ध की सराहना कर रहे थे।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

महाराज ने चारों ओर दृष्टि फैलाई तो महामन्त्री ने उनके समक्ष हाथ जोड़ कर निवेदन किया, "आचार्य कच ने आप को और सम्राज्ञी को आश्रम में आमंत्रित किया है।"

महाराज ययाति और सम्राज्ञी देवयानी तुरन्त आश्रम की ओर चल दिये।

देवयानी ने आश्रम को जाकर देखा तो वह स्तम्भित-सी रह गईं। उन्हें लगा कि जैसे वह उसी स्थान पर आ गईं जहाँ से चली थी। उन्होंने धीरे-धीरे आश्रम के उद्यान में प्रवेश किया और अमराइयों के बीच से निकलीं तो एक आम्र-वृक्ष के नीचे ठहर गईं।

महाराज ययाति ने आश्रम में जाकर आचार्य कच को सूचना दी तो वह नंगे पैरों अपने पीताम्बर को संभालते हुए महाराज ययाति के साथ आम्र-वृक्ष की ओर तीव्र गति से चल दिये।

उन्होंने देखा, देवयानी आम्र-वृक्ष के नीचे हरी घास में आनन्द पूर्वक लेट रही थीं।

आचार्य कच और महाराज ययाति को देखकर देवयानी बैठी हो गईं और मुस्कराकर बोलीं, "आचार्य कच! मालूम देता है आप पिता जी के आश्रम को यहाँ उठा लाये हैं। वहाँ की सारी आभा, सारा सौंदर्य, सारी कांति मानो आपकी दासी बनकर आपके चरणों से लिपटी चली आई हैं।"

देवयानी के मुख से अपनी प्रशंसा सुनकर आचार्य कच का मन कमल-पुष्प के समान खिल उठता, परन्तु वह हुआ नहीं।

देवयानी सशंकित सी होकर बोलीं, "आचार्य कच! आप मुझे स्वस्थ दिखाई नहीं दे रहे। आपके मन में अवश्य कोई पीड़ा है, जिसे आप व्यक्त नहीं कर रहे।"

"पीड़ा नहीं, महान् पीड़ा है सम्राज्ञी! मैं आचार्य शुक्राचार्य के आश्रम के पुष्प को यहाँ लाया तो आप वहाँ के कांटे को भी अपनी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

साथ ले आईं ।"

देवयानी समझ नहीं सकी कुछ। महाराज ययाति की भी कुछ समझ में नहीं आया। वे दोनों मौन बने रहे।

"आप दोनों ने जो कुछ किया है, उसका फल आप दोनों को भोगना होगा। आपके साथ मुझे भी भोगना होगा।"

महाराज ययाति भय से काँप उठे। देवयानी को अपनी भूल समझने में देर नहीं लगी। भावातिरेक में आकर उसने सचमुच अपना मार्ग कंटक पूर्ण कर लिया।

देवयानी खड़ी होकर आचार्य कच के पैर छूकर बोली, "भूल हो गई आचार्य कच! सचमुच भारी भूल हो गई। परन्तु मैं कर कुछ नहीं सकती थी। मुझे पिताजी की आज्ञा का पालन करना पड़ा।"

"नहीं देवयानी, ने नहीं! आचार्य शुक्राचार्य यह कर नहीं सकते थे। तुमने उन्हें सोचने का अवसर दे दिया होगा। यह सब तुम्हारे भावुकतापूर्ण दुराग्रह का परिणाम है। बोलो, सच नहीं है क्या यह जो मैं कह रहा हूँ?" आचार्य कच बोले।

देवयानी ने आचार्य कच के समक्ष सिर झुका लिया।

महाराज ययाति अभी भी कुछ न समझ पाये। वह मौन खड़े थे। वह भावुकतापूर्ण स्वर में बोलें, "मुझसे क्या भूल बन पड़ी आचार्य? क्या मुझे नहीं बतायेंगे आप?"

"भूल अभी बन नहीं पड़ी आपसे, भूल होने की आशंका उत्पन्न हो गई। आपको विधाता ने स्वर्ग के शिखर और नर्क के गर्त्त के बीच लाकर खड़ा कर दिया है। अब देखना होगा कि आप उस गौरव-पूर्ण शिखर पर चढ़ते हैं या नर्क के गर्त्त में गिरजाते हैं।"

"मैं स्वर्ग के उन्नत शिखर पर ही चढ़ूँगा आचार्य कच! नर्क के गर्त्त की ओर कभी मुँह करके भी नहीं देखूँगा।"

आचार्य कच मुस्करा दिये महाराज ययाति की बात सुनकर। "यह

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सब भविष्य बतायेगा महाराज ! देखना होगा कि आपकी दृढ़ता कहाँ तक आपका साथ देती है। आपकी सद्मति आपको कहाँ ले जाती है।"

आचार्य कच फिर विषय बदलकर बोले, "सम्राज्ञी ! हमारा आश्रम देखा आपने। आईये, आप को वह जलाशय दिखाता हूँ जिस में आपको शर्मिष्ठा ने गिरा दिया था।"

तीनों वहाँ से उस जलाशय के पास आये। आचार्य कच मुस्कराकर बोले, "शर्मिष्ठा के साथ यहाँ घूमने न आना कभी।"

जलाशय से आचार्य कच देवयानी को जल-प्रपात की ओर ले गये और उसके निर्मल जल की ओर संकेत करके बोले, "यह प्रपात का वह निर्मल जल है जिसमें मैं और तुम दोनों स्नान किया करते थे और यही वह प्रपात है जिसके निर्मल जल में मैंने यहाँ आकर अनेकों बार तुम्हारे दर्शन किये और तुमसे बातें कीं।"

वह सब देखकर देवयानी के आनन्द की सीमा न रही।

आचार्य कच बोले, "चलो, अब आपको आपकी कुटिया के दर्शन करा दूँ। वह मैंने इसलिये बनवाई है कि यदि कभी मेरी बहिन का मन राजमहलों से ऊब उठे तो वह उसमें आकर विश्राम कर सकेंगी। वहाँ तुम जीवन को फिर उसी वातावरण के बीच देख सकोगी, जिसकी बचपन से अभ्यस्त रही हो।"

वहाँ से तीनों उस कुटिया की ओर गये तो देवयानी उसे देखती रह गई और वहाँ उसके बीच बैठकर बोली, आज इसी कुटिया में विश्राम होगा आचार्य कच !"

आचार्य कच बोले, "वह तो होगा ही देवयानी ! अभी तो मैंने सम्राज्ञी तुम्हें इसलिये कह दिया है कि महाराज ने तुम्हें सम्राज्ञी मान लिया है।

कल तुम्हारा विधिवत् पाणिग्रहण-संस्कार तुम्हारे भय्या के इसी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आश्रम में होगा और वह संस्कार आप का भाई आचार्य कच करायेगा।

तब आप राज्य के विधि-विधान के अनुसार इस नगरी की सम्राज्ञी होंगी।''

आचार्य कच के कथन का महाराज ययाति ने आदर किया और वह सम्राज्ञी देवयानी को आचार्य कच के आश्रम पर छोड़ कर राजभवन की ओर प्रस्थान कर गये।

आचार्य कच ने शर्मिष्ठा के वहाँ आने को गम्भीर दृष्टि से देखा। उनके मुख पर मुस्कान खेल उठी।

देवयानी बोलीं, ''भय्या कच ! आपके होठों पर थिरकने वाली मुस्कान का मंतव्य मैं समझ नहीं सकी।''

''तुम सब कुछ समझ लेना चाहती हो देवयानी तो समझ लो। जब मेरा कुछ भी तुमसे छिपा नहीं है, तो यह क्यों छिपाऊँ ? तुम्हें मैं अपने प्राणों की संजीवनी शक्ति मानता हूँ। तुम कहीं भी रहो, मेरे इतनी निकट रहती हो कि मैं तुमसे हर समय बातें कर सकता हूँ। मेरे हृदय की पीड़ा को उस दिन शांति मिली जब तुमने मुस्कराकर स्वयं सांत्वना प्रदान की।

तुम जलाशय से निकल कर महाराज ययाति के साथ आचार्य शुक्राचार्य के पास पहुँचीं तो वह क्रोध में पागल हो गये थे। तुमने अपनी शीतल वाणी में शर्मिष्ठा के प्रेम को भर कर उनके जलते हुए हृदय पर उँड़ेल दिया। तुम्हें क्या पता कि ऐसा करके तुमने अपनी अनभिज्ञता में कितना बड़ा अनर्थ कर डाला ?

आचार्य शुक्राचार्य को सोचने -विचारने के लिए पूर्ण रात्रि का समय मिल गया।

तुम्हें ज्ञात होना चाहिए कि तुम्हारे भाई कच की राजनीति ने आचार्य शुक्राचार्य की राजनीति को जड़-मूल से उखाड़ कर फेंक दिया है। उनके लिए यह असहनीय कष्ट की बात है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आचार्य शुक्राचार्य ने मुझे आशीर्वाद भी दिया और महाराज ययाति को पुरस्कार भी, परन्तु शर्मिष्ठा को तुम्हारे साथ भेज कर आचार्य ने क्या किया उसे भविष्य ही बतायेगा। आचार्य शुक्राचार्य अपनी नीति की असफलता के क्रोध को सहन नहीं कर सके।

शर्मिष्ठा आचार्य शुक्राचार्य का श्राप है जो उन्होंने देवयानी, कच और महाराज ययाति की परीक्षा के लिए भेजा है।"

"तुम्हारी रहस्यमय बात मैं समझ नहीं सकी भय्या!" देवयानी सरल भाव से बोलीं।

आचार्य कच मुस्कराकर बोले, "शर्मिष्ठा से सचेत रहना। उसके हर कार्य पर दृष्टि रखना। महाराज ययाति को शर्मिष्ठा से एकांत में मिलने का अवसर न देना। शर्मिष्ठा को हर समय अपनी सेवा में रखना। बस, इस समय इतना ही ध्यान रखना। समय आने पर जैसी आवश्यकता होगी, बताऊँगा।"

बातें करते-करते न जाने कितना समय पलक मारते व्यतीत हो गया। इतने दिन की जुड़ी हुई बातें चल-चित्र के समान दोनों के मानस पटल पर खुलती चली गईं।

चाँदनी रात में प्रपात पर बिछी स्फटिक शिला पर बैठे दोनों बातें करते रहे। वे प्राचीन स्मृतियों की मधुर कल्पनाओं में डूबते और उबरते रहे।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दूसरे दिन महाराज ययाति और देवयानी का शास्त्रीय ढंग से विवाह-संस्कार सम्पन्न हुआ। विवाह-संस्कार आचार्य कच ने अपने आश्रम में कराया।

नगर में एक महान् उत्सव मनाया गया। राज्य की प्रजा अपनी सम्राज्ञी को प्राप्त कर हर्षोल्लास पूर्ण हो उठी। घर-घर में प्रकाश किया गया। नगरी की शोभा ने देवलोक का तिरस्कार किया।

महाराज ययाति का जीवन आनन्द और उल्लास की धारा में बह चला। राजमहल में राज-लक्ष्मी के आ जाने से वहाँ की शोभा बहु-गुणित हो गई।

चारों दिशाओं में रस का संचार होने लगा। राज्य सुख तथा शांति से पूर्ण हो गया। सुख-समृद्धि चतुर्दिश दृष्टिगोचर होने लगी।

नगरी में नित्य नये उत्सव मनाये जाने लगे। आमोद-प्रमोद से प्रजा-जनों के जीवन में नवीन स्फूर्ति का संचार हुआ।

महाराज ययाति का यश गंगा की धारा के समान तप्त हृदयों के असंतोष को नष्ट करता हुआ भूमंडल पर छा गया।

राज्य के इसी वैभव-काल में सम्राज्ञी देवयानी के गर्भ से एक सलौने बालक ने जन्म लिया, जिसका नाम यदु रखा गया। बहुत सुन्दर पुष्प था।

सम्राज्ञी देवयानी को प्राप्त करके महाराज ययाति के जीवन में स्वर्ग उतर आया।

आचार्य कच के आश्रम की ख्याति भी दिन-प्रति-दिन देश और विदेशों तक पहुँचने लगी। महाराज ययाति के साथ-साथ आचार्य कच

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

का जीवन भी रसमय हो गया । सम्राज्ञी देवयानी का पुत्र अधिकांश समय आश्रम में ही व्यतीत करता और आचार्य कच उसके साथ खेलते और प्रसन्न रहते थे ।

देवयानी के इस वैभव के प्रति धीरे-धीरे शर्मिष्ठा के मन में कुण्ठा उत्पन्न होती गई । उसका हृदय हर समय अंगारे के समान दहकने लगा । उसके अन्दर द्वेष की ज्वाला धू-धू करके जलने लगी । 'आचार्य शुक्राचार्य ने उसे देवयानी के साथ उसकी दासी बनाकर भेजा था । इससे कहीं उत्तम होता कि वह उसे प्राण दण्ड दे डालते । उसे जीवन भर जलने के लिए अग्नि में झोंक दिया', यही वह सोचती थी ।

वह देवयानी के पुत्र यदु को राजमहलों में खेलता देखती थी तो उसकी कोख में पीड़ा होने लगती थी । उसे राजपुत्री होने पर भी वह स्थान न मिल सका जो देवयानी को प्राप्त हुआ । वह राजकन्या थी, उसे सम्राज्ञी बनना चाहिए था । यह इच्छा उसके मन में धीरे-धीरे बलवती हो उठी ।

एक दिन जब महाराज ययाति अपने बाग में भ्रमण को गये तो शर्मिष्ठा भी चुपके से उनकी आँख बचाकर वहाँ पहुँच गई । महाराज ज्यों ही जलाशय की ओर गये, तो वह जलाशय में कूद पड़ी ।

महाराज के कानों में किसी के जलाशय में गिरने का नाद आया तो वह तीव्र गति से उधर जा पहुँचे और पानी में कूदकर उन्होंने डूबने वाले व्यक्ति को निकाल कर देखा, तो वह शर्मिष्ठा थी ।

शर्मिष्ठा पानी में महाराज ययाति से भयातंकित-सी होकर लिपट गई और अपने नेत्र बन्द कर लिये ।

महाराज ययाति उसे जल से बाहर ले आये । बाहर लाकर उसे घास पर लिटा दिया ।

शर्मिष्ठा अचेत बनी पड़ी रही ।

महाराज ययाति ने शर्मिष्ठा के उन्मुक्त यौवन को इस प्रकार हरी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

घास पर बिखरा देखा तो उनका मन कुछ और-से-और होने लगा। वह शर्मिष्ठा के पास गये और धीरे-से उसकी चिबुक का स्पर्श करके बोले, "शर्मिष्ठा !" शर्मिष्ठा ने नेत्र खोल दिये।

शर्मिष्ठा के नेत्रों में महाराज ययाति उलझ कर रह गये। उसके रूप में आज उन्हें वह बाँकापन मिला जो वह आज तक कभी देवयानी के अन्दर भी नहीं देख पाये थे।

शर्मिष्ठा बोली, "महाराज ! मुझे क्षमा करना। मैं भयभीत होकर आपसे लिपट गई, इसके लिए मैं बहुत लज्जित हूँ। मुझे ऐसा नहीं करना चाहिए था, चाहे प्राण ही क्यों न चले जाते।"

शर्मिष्ठा के दीन वचन सुनकर महाराज ययाति को लगा कि इतने सुन्दर रूप का वह आज तक मूल्यांकन ही न कर सके। उन्होंने शर्मिष्ठा के बिखरे केश-जाल में अपनी अँगुलियाँ डाल कर कहा, "शर्मिष्ठा ! तुम गिर कैसे गईं जलाशय में ? वह तो यह भले को हुआ कि मैं यहाँ था, वरना आज जलाशय में तुम्हारा कहीं खोज भी न मिलता।"

शर्मिष्ठा देख रही थी कि महाराज पर उसके रूप का प्रभाव पड़ रहा था। उसने अपने यौवन को तनिक और बिखरा कर वक्र दृष्टि करके कहा, "महाराज, एक दासी चली जाती, तो आपको अनेकों और दासियाँ मिल जातीं। मेरा रूप देवयानी का रूप नहीं है जो कहीं मिल ही न सके।"

महाराज ययाति के बदन में सिहरन-सी आई और वह शर्मिष्ठा के कपोल पर हल्की-सी चपत लगा कर बोले, "पगली कहीं की ! तुझे क्या मैं कभी दासी गिनता हूँ ? तू क्या अन्य दासियों के समान है ? क्या मैं जानता नहीं हूँ कि तू राजकन्या है ?"

महाराज ययाति ने इतना कहा तो शर्मिष्ठा के नेत्रों में पानी भर आया। वह कातर वाणी में उसाँस लेकर बोली, "महाराज, राजकुमारी मैं थी कभी। उस समय मुझे भी अपने रूप पर गर्व था। यही आपके

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आचार्य कच मेरी प्रतीक्षा में रातें धुला देते थे। मैं इनको अपना प्रेम प्रदान नहीं कर सकती थी। मैं राजकन्या थी। मुझे क्या पता था कि एक दिन राजकन्या को यह दिन देखना होगा?

परन्तु कोई बात नहीं महाराज! मैं आपकी सेवा में भी प्रसन्न हूँ। कोई भूल तो नहीं बन पड़ी कभी दासी से?"

महाराज ययाति शर्मिष्ठा की ओर खिचते जा रहे थे। प्रकृति के इस खुले प्रांगण में, पुष्पों से सुगन्धित वाटिका के बीच, कमल-पुष्पों से आच्छादित जलाशय के पास शर्मिष्ठा का बिखरा यौवन देखकर महाराज स्वयं को न रोक सके। महाराज ने नीचे झुक कर शर्मिष्ठा का चुम्बन ले लिया।

शर्मिष्ठा ने उनके मुँह को दूर हटाने का बनावटी उपक्रम किया और फिर उनके नेत्रों पर वक्र दृष्टि पसार कर बोली, "महाराज!" यह आपने उचित नहीं किया। सम्राज्ञी पर भेद खुल गया तो अनिष्ट होने की सम्भावना है।" इतना कह कर शर्मिष्ठा ने अँगड़ाई लेते हुए धीरे से अपनी चोली की तनी खोल दी।

महाराज ययाति की दृष्टि शर्मिष्ठा के अनावृत बदन पर पड़ी तो उनका मन डाँवाडोल हो गया। वह अपने को रोक न सके और उनका हाथ अनायास ही शर्मिष्ठा के उभरे हुए वक्ष पर जा गिरा।

शर्मिष्ठा ने बनावटी उपक्रम करके खड़ी होना चाहा तो महाराज ययाति ने उसे कस कर पकड़ लिया और धीरे-से बोले, "शर्मिष्ठा! भाग नहीं, मुझे इस प्रकार घायल करके तू भाग जाना चाहती है?"

शर्मिष्ठा बनावटी लज्जा से सिकुड़कर बैठी हो गई और बोली, "कोई आ जायेगा यहाँ महाराज! मेरा तो कुछ नहीं, दासी हूँ आपकी, परन्तु आपकी प्रतिष्ठा को बट्टा लगेगा।

इस समय मुझे आज्ञा दीजिये। मेरा जी कुछ भी है वह सब आपके चरणों पर अर्पित है। यह रूप और यौवन सब आपका ही है।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

शर्मिष्ठा चली गई, परन्तु उसके यौवन के उभार की स्मृति महाराज ययाति के मन पर बराबर बनी रही। वह उसे एक क्षण के लिये भी विस्मृत न कर सके।

महाराज ययाति और शर्मिष्ठा का सम्बन्ध धीरे-धीरे बढ़ने लगा। महाराज अवसर-बे-अवसर शर्मिष्ठा के भवन में जाने लगे और राजमहल की दासियों में इस विषय में काना-फूसी चलने लगी परन्तु देवयानी से इस विषय में एक शब्द भी कहने का किसी में साहस नहीं था।

शर्मिष्ठा गर्भवती हो गई।

यह बात भी राजमहल में फैल गई। देवयानी की प्रधान दासी वासंती को इस रहस्य का ज्ञान हुआ तो वह सम्राज्ञी से इस रहस्य को न छिपा सकी।

वासंती एक दिन रात्रि को एकांत में सम्राज्ञी देवयानी से बोली, "सम्राज्ञी ! एक बात थी, जिसे मैं आज तक आप पर प्रकट करने की उत्कृष्ट इच्छा रहने पर भी प्रकट करने का साहस न कर सकी।"

'ऐसी क्या बात थी वासंती ?" सम्राज्ञी देवयानी ने मुस्कराकर उससे पूछा।

वासंती बहुत गम्भीर थी। देवयानी ने वासंती के गाल पर अपनी छोटी अँगुली लगा कर कहा, "कह पगली ! ऐसी क्या रहस्य की बात है जिसे तू बताने में इतनी भयभीत है ?"

वासंती धीरे-से बोली, "सम्राज्ञी ! कोई दुर्भावना न मान बैठना मेरी। आपके प्रति श्रद्धा रखती हूँ, इसलिए आपका अहित देख नहीं पाती।"

सम्राज्ञी देवयानी का मन भयभीत हो गया। उन्होंने गम्भीर दृष्टि से वासंती की ओर देखकर कहा, "तुम निर्भीक होकर कहो वासंती ! तुम्हें किसी प्रकार की आँच नहीं आ सकती।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वासंती बोली, "सम्राज्ञी ! आपके सौभाग्य पर शर्मिष्ठा ने डाका डाला है ।"

"मेरे सौभाग्य पर ! महाराज ययाति पर ! यह तुम क्या कह रही हो वासंती ? महाराज ऐसा कभी नहीं कर सकते । तुम्हें धोखा हुआ होगा । तुम्हें धोखा हुआ होगा ।"

वासंती दृढ़तापूर्वक बोली, "सम्राज्ञी ! जब तक धोखे की सम्भावना शेष थी, तब तक आपसे कहने का साहस न कर सकी । अब तो उसका ज्वलंत प्रमाण समक्ष है ।"

"वह क्या ?" आश्चर्यचकित होकर सम्राज्ञी देवयानी बोलीं ।

"शर्मिष्ठा गर्भवती है ।"

"गर्भवती है शर्मिष्ठा ! यह तुमने क्या कहा वासंती ! क्या सचमुच शर्मिष्ठा गर्भवती है ?" सम्राज्ञी दीन वाणी में बोलीं ।

"इसमें अब संदेह के लिये कोई स्थान नहीं है ।" वासंती ने दृढ़तापूर्वक कहा ।

बातें करते-करते पर्याप्त रात बीत गई । इधर कई दिन से सम्राज्ञी देवयानी प्रतीक्षा करती थीं और महाराज नहीं आते थे । सम्राज्ञी रात-रात-भर जाग कर उनकी प्रतीक्षा करती थीं और प्रातःकाल आकर उन्हें महाराज बहुत सरल शब्दों में समझा देते थे कि वह रात्रि में गुप्त रूप से भ्रमण करने चले गये थे ।

तो यह था महाराज का गुप्त-भ्रमण' लम्बा उसाँस लेकर सम्राज्ञी देवयानी ने कहा ।

देवयानी का सारा बदन कम्पायमान हो उठा । उनके मस्तिष्क का तार-तार हिल उठा । वह विक्षिप्त-सी होकर पलंग पर गिर पड़ीं ।

वासंती ने ताड़-पत्र से पवन की तो तनिक चेतना लौटी । सम्राज्ञी जल से बाहर निकाली मीन के समान तड़फड़ा रही थीं ।

उन्होंने कातर वाणी में कहा, "वासंती ! तुम्हें धोखा तो नहीं हुआ ?

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तुम ! कह दो कि तुमने धोखा खाया है। महाराज ऐसा नहीं कर सकते। सिंह शृंगालिनी की क्रोड़ में कैसे जा सकता है ?"

वासंती आज पूर्ण प्रबन्ध के साथ आई थी। वह अपनी बात में तनिक भी संदेहात्मक स्थिति सम्राज्ञी के सम्मुख प्रस्तुत नहीं होने देना चाहती थी। उसने शर्मिष्ठा के भवन-द्वार में एक ऐसा छिद्र कर दिया था जिससे अन्दर की सब लीला प्रत्यक्ष देखी जा सके।

वह गम्भीर वाणी में बोली, "सम्राज्ञी ! आप यह लीला प्रत्यक्ष अपनी आँखों से चलकर देख लें। फिर भ्रम के लिए स्थान शेष नहीं रहेगा और वासंती का भी मुँह काला न होगा।"

सम्राज्ञी ने वासंती की ओर देख कर कहा, "कहाँ चलना होगा मुझे ?"

"शर्मिष्ठा के भवन तक।"

"चलो।" देवयानी ने साहस करके कहा और वह वासंती के साथ धीरे-धीरे चल दीं।

वासंती शर्मिष्ठा के द्वार में बने छिद्र के निकट सम्राज्ञी देवयानी को खड़ी करके पीछे हट गई।

सम्राज्ञी देवयानी ने उस छिद्र से कान लगा कर सुना तो सचमुच उन्हें महाराज का स्वर सुनाई दिया। शर्मिष्ठा और महाराज ययाति प्रेमालाप कर रहे थे।

देवयानी को अपने कानों पर विश्वास न हो सका। उन्होंने उस छिद्र पर अपनी आँख लगा दी और जो देखा, उसे देखकर वह प्रस्तर-शिला के समान खड़ी रह गईं।

वह कुछ पीछे हट गईं। उन्हें अपनी आँखों पर भी विश्वास नहीं हुआ। उन्होंने फिर ठीक से अपनी आँखों को अपने हाथ की हथेलियों से मला और संभल कर फिर उस छिद्र के अन्दर झाँकने का प्रयास किया।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उन्होंने देखा महाराज पलंग पर लेटे हुए थे और शर्मिष्ठा उनके पास थी। दोनों के मुख मिले हुए थे और चुम्बनों की झड़ी लगी थी।

अब अविश्वास का कोई कारण नहीं रहा। जो सत्य था वह प्रत्यक्ष रूप से सम्राज्ञी के सामने आ गया। उनके हृदय पर विधाता ने पर्वत गिरा दिया।

वह लड़खड़ाकर गिर जातीं यदि वासंती ने उन्हें पीछे से संभाल न लिया होता। देवयानी का बदन पीपल-पत्र के समान डोल उठा। उसका मस्तिष्क घूम गया। उसका हृदय विदीर्ण हो गया।

वासंती देवयानी को सँभालकर राजमहल में ले गई और पलंग पर लिटा दिया। वासंती पंखे से हवा करने लगी।

थोड़ी देर पश्चात् सम्राज्ञी देवयानी तनिक सचेत हुईं तो उनके मुख से निकला, "शर्मिष्ठा गर्भवती है।"

देवयानी ने धीरे-धीरे अपने नेत्र खोले और बोलीं, "वासंती! युग-दृष्टा आचार्य कच की शंका साक्षात रूप में सामने आ गई।

मुझे सचमुच पिताजी ने यहाँ सम्राज्ञी बनाकर नहीं भेजा, उन्होंने मुझे अपने श्राप की वेदी पर चढ़ाने के लिए भेंट-स्वरूप भेजा था।"

वासंती देवयानी को पंखा झलती रही। वह समझ नहीं सकी सम्राज्ञी के मंतव्य को।

देवयानी ने वासंती से पूछा, "यदु कहाँ है?"

वासंती ने कहा, "आश्रम में।"

"आचार्य कच के पास!"

"जी!" वासंती ने उत्तर दिया।

"तो चलो, मुझे वहीं चलना है।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वासंती और देवयानी पैदल ही आचार्य कच के आश्रम की ओर चल पड़ीं।

देवयानी वहाँ पहुँचीं तो देखा उद्यान में जलाशय के पास आचार्य कच यदु के साथ खेल रहे थे। यदु आचार्य कच से लिपट कर मल्ल-युद्ध करना सीख रहा था।

देवयानी के आगे बढ़ते पग जड़ हो गये। उन्होंने उसाँस भर कर कहा, "कितनी अभागी हूँ वासंती! अपना स्वर्ग उजाड़ कर अब भय्या कच का स्वर्ग उजाड़ने चली हूँ। मैंने अपनी मूर्खता से अपना और भय्या का जीवन नष्ट कर दिया।"

देवयानी धीरे-धीरे आगे बढ़ कर आचार्य कच के पास पहुँच गईं। वासंती उनके साथ थी।

सम्राज्ञी देवयानी को इस प्रकार नंगे पैरों अपनी ओर आते देखकर आचार्य कच खड़े हो गये और शंकापूर्ण स्वर में बोले, "उषा-काल की अनुपम बेला में साम्राज्ञी का इस प्रकार नंगे पैरों आश्रम में आना क्या अभिप्राय रखता है देवयानी?"

आचार्य कच ने देखा सम्राज्ञी देवयानी के मुख से घोर निराशा, घोर पीड़ा और संताप बरस रहे थे। देवयानी का इतना दयनीय और करुण वेष आज तक कभी आचार्य कच ने नहीं देखा था, तब भी नहीं जब देवयानी का प्रेम-प्रस्ताव आचार्य कच ने अस्वीकार कर दिया था और वह मूर्च्छित होकर आम्र-वृक्ष के नीचे उनकी अंक में पर-कटे पक्षी की भाँति गिर पड़ी थीं।

देवयानी रुद्ध कंठ से बोलीं, "भय्या कच! आपकी आशंका ने मूर्त्त रूप धारण कर लिया। मैं रोक नहीं सकी उसे।"

देवयानी के ये शब्द सुनकर आचार्य कच के बदन में विद्युत-सी कौंध गई। उनका बदन काँप उठा। स्वेद-बिन्दु उनके मस्तक पर झलक आये। वह गम्भीर वाणी में बोले, "क्या महाराज ययाति का पतन हो गया? क्या आचार्य शुक्राचार्य का श्राप उन्हें ग्रस गया? अपने श्राप की

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वेदी पर अपनी एक-मात्र कन्या की बलि चढ़ा दी आपने गुरुदेव ! यह उचित नहीं किया ।

मैंने आपकी राजनीति को परास्त किया तो आपने उसका क्रोध इन निरीह प्राणियों पर उतारा ।

आप अपने अमोघ अस्त्र को भी अपने तरकश में न रख सके। उसका भी प्रयोग कर गये ।

कोई बात नहीं आचार्य ! मैं आपके इस अस्त्र के साथ संघर्ष करूँगा और अपने प्राण देकर भी मानव-समाज में सहयोग और सद्-भावना का बीजारोपण करूँगा ।"

यह कहकर आचार्य कच ठहाका मार कर हँस दिये । उनके हास्य के स्वर से चारों दिशाएँ गूँज उठीं। उस हास्य में कितना रुदन छिपा था, देवयानी ने उसके प्रत्यक्ष दर्शन किये ।

देवयानी तनिक अपने को सम्भालकर बोलीं, "आचार्य कच ! एक प्रश्न पूछने आई हूँ आप से ।"

"पूछो साम्राज्ञी !" आचार्य कच ने कहा ।

"महाराज के इस प्रकार प्रतिज्ञा-भंग कर देने पर क्या मुझे अब इस राज्य में रहना चाहिए ?"

"एक क्षण के लिये भी नहीं ।" आचार्य कच ने कहा ।

आचार्य कच का उत्तर सुनकर साम्राज्ञी देवयानी आत्मविभोर हो उठीं । उनका मस्तक गर्व से ऊपर उठ गया । वह गद्-गद् होकर बोलीं, "भय्या से मुझे इसी उत्तर की आशा थी ।"

कुछ ठहकर देवयानी ने पूछा, "एक प्रश्न और करना चाहती हूँ आचार्य कच !"

"पूछो साम्राज्ञी !"

"यदि किसी राज्य का राजा प्रतिज्ञा भंग कर दे तो क्या उस राज्य के आचार्य को उस राज्य में रहना चाहिए ?"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आचार्य कच मुस्करा दिये साम्राज्ञी देवयानी का प्रश्न सुनकर वह गम्भीर वाणी में बोले, "साम्राज्ञी ! जिस राज्याचार्य में प्रतिज्ञा-भंग करने वाले राजा को उसके पद से च्युत करने की शक्ति हो उसे राजा को पद-च्युत करके राज्य की उचित व्यवस्था करनी चाहिये और जिस राज्याचार्य में इतनी शक्ति न हो उसे राज्य का परित्याग कर देना चाहिये।"

कच की बात सुनकर देवयानी को आत्मसंतोष हुआ। वह मुस्कराकर बोलीं,"आपसे मुझे इसी उत्तर की आशा थी। अंतिम विदा लेने आई हूँ आपसे। एक दिन आप मुझसे विदा लेने के लिये अंतिम बार मेरी कुटी पर आये थे। आप मुझे निराश करके चले आये थे, परन्तु मैं ऐसा कुछ करके यहाँ से नहीं जा रही हूँ। तब आपने मुझे निराश्रित किया था और आज आपके राजा ने।"

देवयानी अपने पुत्र यदु को साथ लेकर आगे बढ़ गईं। उनके शब्द आचार्य कच के कानों में गड़गड़ाहट के साथ जाने कितनी देर तक बजते रहे।

उनका हृदय भयभीत हो उठा। वह तीव्र गति से देवयानी के पीछे-पीछे दौड़ पड़े और हाँफते हुए स्वर में बोले, "देवयानी ! तुम जा कहाँ रही हो ? तुम्हें यहीं रहना चाहिये। ययाति को कुमार्ग से हटाकर सुमार्ग पर लाना चाहिए।"

देवयानी तनिक ठहरकर मुस्कराती हुई बोलीं, "यह कार्य अब आप करते रहिये। मेरे पास यहाँ ठहरने का न तो अवकाश है और न धैर्य ही।

जीवन का यह दूसरा आघात मुझे निश्चय ही पागल बना देता, यदि इस समय मुझे यदु का सहारा न होता। माता के लिये पुत्र ही सच्चा त्याग कर सकता है। अन्य सब नाते बनावटी हैं ?"

आचार्य कच के हृदय पर गहरी चोट लगी। वह बोले, "क्या

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कहा देवयानी ? अन्य सब नाते बनावटी कैसे हैं ? क्या भाई-बहिन का नाता बनावटी है ?

तुम्हें ठहरना होगा। मैं आज जन-सभा बुलाकर महाराज ययाति के कृत्य को उसके सामने रखूंगा और फिर अपने निर्णय की घोषणा करके ययाति को दण्डित करूँगा।" यह कहते-कहते आचार्य कच के नेत्रों का वर्ण लाल हो गया। उनका बदन क्रोध से थर-थर काँप रहा था।

देवयानी आचार्य कच के निकट आकर बोलीं, "मेरी भूल को क्षमा कर दो भय्या कच ! मुझे इस समय जाने दो। एक दिन वह अवश्य आयेगा, जब महाराज के मानस-पटल पर मेरी आकृति फिर निखर कर आयेगी, परन्तु तब देवयानी नहीं मिलेगी।"

आचार्य कच के नेत्रों से अश्रुओं की की धारा बह चली। देवयानी के नेत्रों में भी अश्रु उभर आये।

यदु मौन खड़ा यह सब देखता रहा।

अन्त में आचार्य कच ने आशीर्वाद देकर देवयानी और उसके पुत्र को विदा किया। वासंती देवयानी के साथ गई। तीनों पैदल-पैदल आगे बढ़ गये। राज्य की कोई सवारी उन्होंने अपनी यात्रा के लिए स्वीकार नहीं की।

आचार्य कच ने चलते समय यदु को एक बार गोद में उठा कर चूमा और नेत्रों से आँसू ढुलका कर बोले, "यदु ! आशीर्वाद देता हूँ कि तुम एक ऐसे वंश की नीव डालोगे जो भारतीय जनता को अंधकार और अत्याचार से मुक्त करेगा।" फिर देवयानी की ओर देखकर कहा, "देवयानी ! यह अंतिम भेंट नहीं है कच की। तुम जहाँ रहोगी, कच की दृष्टि वहीं रहेगी।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

१६

देवयानी वहाँ से सीधी चलकर अपने पिता शुक्राचार्य के आश्रम में पहुँची और उन्हें सब वृतांत सुनाया। अपनी पुत्री की यह दशा देखकर उनकी आंखों के सामने अंधकार छा गया।

ययाति और शर्मिष्ठा पर उन्हें बहुत क्रोध आया, परन्तु देवयानी ने अपनी मधुर वाणी से उन्हें शांत कर दिया।

देवयानी के चले जाने पर महाराज ययाति ने देखा उनकी नगरी श्री विहीन हो गई। उन्होंने जिधर दृष्टि फैलाई, उन्हें सब नीरस दिखाई दिया। वह विक्षिप्त-सी दशा में आचार्य कच के आश्रम पर पहुँचे तो आश्रम भाँय-भाँय कर रहा था। न पक्षियों का मधुर संगीत था और न वायु का सरस कंपन। आचार्य कच चिन्तानिमग्न अपने आसन पर बैठे थे। उनके मुख पर वह कांति नहीं थी, जिसके उन्हें नित्य दर्शन होते थे।

महाराज ययाति आचार्य कच के निकट पहुँचे तो उन्होंने नेत्र खोल दिये और सरल वाणी में बोले, "राजन्! आज प्रकृति फिर नीरस हो गई। प्रकृति की अधिष्ठात्री हमारे अधर्म से रूठ कर चली गई।"

महाराज ययाति का सिर लज्जा से झुक गया। उन्हें हार्दिक खेद था। वह सकरुण वाणी में बोले, "आचार्य कच! आपने जो कुछ बनाया, मैंने वह सब नष्ट कर दिया। राजलक्ष्मी अब लौट कर नहीं आ सकती। यहाँ अब फिर से रस का संचार नहीं हो सकता। मैंने स्वयं अपने जीवन के स्नेह में ज्वाला की लौ जलादी। इस लौ पर मुझे ही जलना होगा।"

आचार्य कच ने महाराज ययाति को सांत्वना दी और वह स्वयं उनके साथ शुक्राचार्य के आश्रम पर गये परन्तु देवयानी के समक्ष

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

एक शब्द भी कहने का महाराज ययाति में साहस न हुआ।

महाराज ययाति ने श्री शुक्राचार्य से क्षमा याचना की। शुक्राचार्य मौन बने रहे। उनके नेत्रों में आँसू उभर आये। यही उनकी मौन भाषा थी।

देवयानी साम्राज्ञी के रूप में वापिस लौटने को उद्यत न हुईं। उनका पुत्र यदु अपने नये राज्य की स्थापना करेगा। उसके संरक्षण के लिए उनका वहाँ रहना आवश्यक था।

महाराज ययाति आचार्य कच के साथ अपने उस पुष्प को प्राप्त करने में असमर्थ रहे जो स्वयं उनके चरणों पर समर्पित होने के लिए उतावला हो गया था। उसके पिता ने उसे उनके गले में माला बनाकर पहिना दिया था।

देवयानी विनम्र वाणी में बोलीं, "राजन् ! इस समय मेरा आपके साथ लौटना शर्मिष्ठा के ऊपर घोर अन्याय होगा। वहाँ जाकर राज्य में कलह का बीज बोना मुझे शोभा नहीं देता। आप मेरे पति हैं, आपकी भूल मेरी भूल है। आपका वचन-भंग करना मेरा वचन-भंग करना है। आपका अपराध मेरा अपराध है।

आपने अपना वचन भंग किया, इससे मेरा और मेरे बच्चों का अनिष्ट हुआ। आपने शर्मिष्ठा को जो वचन दिये हैं, उन्हें तुड़वाने के लिये यदि मैं आपके साथ जाती हूँ तो महाभारत हो जायेगा।"

देवयानी की बात सुनकर महाराज ययाति फूट-फूट कर रो पड़े। वह मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े।

देवयानी ने उन्हें अपनी अंक में संभाला और बेल-वितान की शीतल छाया में लिटा दिया। ताड़-पत्र से उन्हें हवा की तो धीरे-धीरे उनके अन्दर चेतना लौट आई।

आचार्य कच देवयानी के सामने हाथ जोड़कर बोले, "देवयानी ! मैं तुम्हें साम्राज्ञी के रूप में नहीं, राजमाता के रूप में प्रणाम करता हूँ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

राज्य में विध्वंसात्मक प्रवृतियों की भावी आशंका को जड़-मूल से नष्ट करने के लिए तुमने और तुम्हारी संतान ने जो त्याग किया है वह आर्यवर्त्त के इतिहास में स्वर्णाक्षरों से लिखा जायेगा।"

दूसरे दिन जब महाराज ययाति और आचार्य कच विदा होने लगे तो देवयानी उनसे बोलीं, "आपने जिस साम्राज्ञी-पद से मुझे विभूषित किया था, वह आपका था, आपने छीन लिया, परन्तु आपकी दासी का जो पद मुझे अनायास ही मिल गया था, वह मेरे पास सुरक्षित है। जीवन में जब आपको उसकी आवश्यकता होगी तो देवयानी आपको अपने निकट मिलेगी।" देवयानी के नेत्र सजल हो उठे।

महाराज ययाति और आचार्य कच विदा होकर दो पग ही आगे बढ़े थे कि आचार्य कच रुक गये।

उन्होंने पीछे मुड़कर देखा, शोकातुर देवयानी स्थिर भाव से खड़ी थीं। वह दो पग और आगे बढ़कर देवयानी के पास आये और सरल वाणी में बोले, "बहिन देवयानी! तुमने पत्नी-पद् के महत्त्व को अमरत्व प्रदान किया, इसका मेरे हृदय में अपूर्व सम्मान है, परन्तु क्या मैं जान सकूंगा कि आपके भगिनि-पद् की क्या स्थिति है? वह विस्मरण तो नहीं हो गया?"

देवयानी गम्भीरतापूर्वक बोलीं, "वह पद् प्राप्त करने का है, देने का नहीं भय्या कच्च!"

आचार्य कच के हृदय को इतने लम्बे काल से जो पीड़ा घुन के समान खाती चली आ रही थी, आज उन्हें उससे मुक्ति मिली।

वह गम्भीरतापूर्वक बोले, "कच अपनी बहिन के साथ छाया के समान रहेगा देवयानी! और छाया के समान ही आज तक रहा है।"

महाराज ययाति और आचार्य कच आगे बढ़कर रथ पर चढ़ गये। रथ चल दिया। देवयानी प्रस्तर-पुतलिका के समान शान्त खड़ी रहीं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

महाराज ययाति और आचार्य कच राजधानी में लौट कर आये तो दोनों का मन बहुत अशांत था।

आचार्य कच मार्ग में सोचते आ रहे थे कि अब उन्हें क्या करना होगा। वचन-च्युत होकर महाराज ययाति राजसिंहासन पर बैठने के अधिकारी नहीं रहे।

आचार्य कच ने राजधानी में पहुँच कर विराट सभा का आयोजन किया और उनके समक्ष महाराज ययाति के अपराध की घोषणा कर उन्हें शासक-पद् से पृथक कर दिया।

महाराज ययाति ने अपना दोष-स्वीकार किया।

इस महान् आपत्ति को सामने देखकर समस्त नगर-निवासियों के नेत्र छलछला आये। महाराज ययाति ने सभा के मध्य खड़े होकर जोगी वेश धारण कर लिया और फिर कभी नगर में न लौटने का व्रत लिया।

आचार्य कच गम्भीर वाणी में बोले, "आप सब को यह समाचार पाकर हर्ष होगा कि हमारी साम्राज्ञी देवयानी ने अपना साम्राज्ञी-पद् अपनी बचपन की सहेली शर्मिष्ठा को देकर स्वयं राजमाता का पद्-ग्रहण कर लिया है।

महाराज ययाति का सम्पूर्ण राज्य और उसका वैभव उन्होंने शर्मिष्ठा और शर्मिष्ठा के पुत्र पर न्योछावर कर दिया। इस प्रकार महाराज ययाति के वचन-भंग-विष को राजमाता ने स्वयं पी लिया।

राजमाता के आदेशानुसार मैं साम्राज्ञी शर्मिष्ठा के पुत्र युवराज पुरु को सम्राट-पद् से विभूषित करता हूँ।"

पुरु को राज-पाट सौंप कर महाराज ययाति तपोवन की ओर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रस्थान कर गये। वहाँ से चलकर वह बीहड़ जंगलों को पार करते हुए एक ऐसे स्थान पर पहुँचे जहाँ मनुष्य का पहुँचना सम्भव नहीं था। तीन ओर पर्वत से घिरा यह भू-खंड था और चौथी दिशा में कल-कल नाद करती हुई सरिता प्रवाहित हो रही थी। भयंकर वन था। महाराज ययाति ने सरिता के तीर पर एक शिला-खण्ड के ऊपर अपना आसन लगाया और तपस्या में रत हो गये। यह तपस्या उनके पाप का प्रायश्चित थी।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

१८

आचार्य कच को देवयानी के पास से लौटे पच्चीस वर्ष व्यतीत हो गये थे। यदु ने अपने बल-पराक्रम से एक बहुत बड़ा साम्राज्य स्थापित कर लिया था। उनका यश चारों दिशाओं में फैल गया था।

महाराज यदु ने दिग्विजय यात्रा की ओर देश की बिखरी हुई शक्ति का संगठन किया। भारत के मध्य देश से समुद्र-तट और द्वारिका-पुरी तक अपना राज्य फैलाया।

देवयानी के चिर संतप्त हृदय को यदु ने अपने यश की वर्षा कर शीतलता प्रदान की।

देवयानी अब यौवना नहीं थी, राजमाता थीं। वासना का उद्रेक समाप्त हो चुका था। कर्त्तव्य-मात्र ही समक्ष था।

मातृ-स्नेह की शीतल छाया में यदु का गौरवपूर्ण यश दिग्दिगन्त तक फैला।

एक दिन संध्या-समय यदु आखेट से लौटे तो उनका मुख-मण्डल स्वेदपूर्ण था। उनके चेहरे पर चिंता की रेखाएँ थीं।

माता देवयानी ने यदु से पूछा, "तुम इतने क्लान्त क्यों हो यदु ? क्या कोई विशेष समस्या सम्मुख ?"

यदुबोले, "बड़ी भयंकर सूचना मिली है माँ ! दक्षिण-पथ की ओर जो सुरम्य वन है पिताजी उसी में तपस्या कर रहे हैं। सुना है वहाँ की जंगली जातियों के लोग उन वनों को जलाकर भस्म कर रहे हैं। मैं पिता जी की सुरक्षा के लिए इसी समय उस दिशा में प्रस्थान करना चाहता हूँ।"

यह समाचार पाकर माता देवयानी का मन विचलित हो उठा वह भयभीत वाणी में बोली "तुम तुरन्त जाओ बेटा ! अपने

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पिता जी की सुरक्षा के लिये तुम तुरन्त जाओ। ऐसा न हो कि उन्हें कहीं आँच आ जाए, तुम उन्हें अपने साथ लेकर आओ।"

यदु उसी समय घोड़े पर सवार होकर दक्षिण-पथ की ओर बढ़ गए।

माता देवयानी ने यदु के चले जाने के पश्चात् नगर में रण-भेरी का नाद घोषित कराया। आज दिन में जब यदु आखेट को गये हुए थे तो उन्हें कुछ अनार्य-राजाओं का सम्मिलत संदेश मिला था कि वे यदु-राज्य पर चढ़ाई कर रहे हैं।

आखेट से लौटने पर यदु को वह यह संदेश देतीं परन्तु जो संदेश वह लेकर आये थे, वह इससे कम भयंकर नहीं था। अपने पति की सुरक्षा का भार यदु को सौंप कर वह स्वयं शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित होकर पुरवासियों के बीच आ खड़ी हुईं।

राजमाता देवयानी का यह रूप देखकर सब लोग चौगुने उत्साह के साथ शत्रु का सामना करने लिए उद्यत हो गए। नगर के चारों ओर दूर-दूर तक सेना को बिछा दिया गया और स्वयं राजमाता देवयानी ने दुर्ग का भार सँभाला।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आचार्य कच उन दिनों देशाटन के लिए निकले हुए थे। वह महाराज पुरु की राजव्यवस्था को स्वयं घूम-घूमकर देख रहे थे। देश के लोगों में उसके राज्य के प्रति कैसी भावना है, इसका अध्ययन कर रहे थे। तभी उन्हें यदु-राज्य पर अनार्यों के इस आक्रमण की सूचना मिली। उन्हें ज्ञात हुआ कि आक्रमण बहुत भयंकर होगा।

सूचना पाते ही आचार्य कच ने निकटस्थ राज्य की चौकी से एक दूत महाराज पुरु के पास भेजा और आदेश दिया कि वह अपनी समस्त सेना को लेकर तुरन्त यदु-राज्य की सुरक्षा के लिये उनकी राजधानी में पहुँच जायें।

महाराज पुरु के लिए यह आदेश भेज कर आचार्य कच स्वयं यदु-राजधानी की ओर तीव्र गति से चलने वाले घोड़े पर सवार होकर उधर चल दिये।

उनके मन में उस समय असीम बेचैनी थी। उन्हें महाराज यदु द्वारा दक्षिण-पथ की ओर महाराज ययाति की सुरक्षा के लिये प्रस्थान करने की सूचना मिल चुकी थी।

घोड़े की पीठ पर तीन दिन की यात्रा तय करने के पश्चात् आचार्य कच ने यदु-राज्य में प्रवेश किया और उसी दिन संध्या तक वह दुर्ग-द्वार पर पहुँच गये।

द्वारपाल ने आचार्य कच के आने की सूचना अन्दर जाकर राज-माता देवयानी को दी तो वह स्वयं खड़ी होकर पैदल आचार्य कच के स्वागत के लिये द्वार पर आईं और राजसी सम्मान के साथ उन्हें अन्दर लेजाकर सर्वोच्च आसन पर बिठाया।

आचार्य कच मुस्कराकर बोले, "बहिन देवयानी ! मैंने भ्राता-पद्

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

को कलंकित तो नहीं किया ?"

आचार्य कच की बात सुनकर माता देवयानी के नेत्रों से अश्रु धारा बह चली।

वह विव्हल होकर बोली, "आचार्य कच ! आपने मेरी भावनाओं की कालिमा को धोकर स्वच्छ कर दिया।"

आचार्य कच मुस्कराकर बोले, "देवयानी ! तुम्हारे लिये मैं आचार्य कब से हो गया ? क्या मैं ब्रह्मचारी कच नहीं रहा ?"

"तब से, जब से मैं तुम्हारे लिये राजमाता हो गई कच !" इतना कह कर देवयानी मौन हो गई।

दोनों ने एक दूसरे के नेत्रों में झाँक कर देखा तो दोनों ओर स्नेह का अपार सागर लहरा रहा था।

माता देवयानी बोलीं, "यदु आज यहाँ नहीं है।"

"मैं सब कुछ सुन चुका हूँ। यदु नहीं है तो क्या हुआ ? तुम यहाँ हो, मैं यहाँ हूँ और पुत्र पुरु को मैं अपनी समस्त सेना लेकर तुरन्त इधर कूच करने का आदेश भेज चुका हूँ।"

आचार्य कच से शर्मिष्ठा के पुत्र पुरु के आने का समाचार पाकर माता देवयानी को असीम संतोष हुआ। पुत्र-स्नेह से उनका हृदय गद्-गद् हो गया।

कभी देखा नहीं बेटे पुरु को। यह अवसर आपने प्रदान किया है ?" माता देवयानी ने बोली।

तुम्हारा पुत्र बहुत आज्ञाकारी है देवयानी ! अपनी हर भूल को सहर्ष स्वीकार कर लेने का उसमें महान् गुण है।"

माता देवयानी मुस्कराकर बोलीं, "यह गुण उसे अपनी माता शर्मिष्ठा और अपने पिता से धरोहर के रूप में मिला है। यही उसकी सबसे बड़ी निधि है। यह न होता तो कुछ भी नहीं था।"

"इसमें कोई संदेह नहीं देवयानी ! कई बार मैं उसके कुकृत्यों से खीज उठा हूँ, परन्तु फिर उसकी सरल स्वीकारोक्ति के सामने मुझे

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पिघल जाना पड़ा। अपने अपराध के लिये दण्डित होने में उसे आनन्द-प्राप्ति होती है।"

रात्रिभर आचार्य कच और माता देवयानी एक क्षण के लिये भी सो नहीं सके। उनका ध्यान आक्रमण की ओर था प्रातःकाल पेली के फटने पर आक्रमणकारियों की सेना सामने दिखाई देने लगी।

इतनी बड़ी सेना माता देवयानी ने पहिले कभी नहीं देखी थी, परन्तु उसका उन पर कोई प्रभाव नहीं हुआ। वह सिंहनी के समान गरजती हुई दुर्ग-द्वार पर पहुँच गई उन्होंने नगर की जनता में असीम साहस और वीरता भर दी।

आचार्य कच माता देवयानी के साथ-साथ छाया के समान लगे हुए थे।

आक्रमणकारियों की सेना तीव्र गति के साथ आगे बढ़ रही थी। राजमाता की उत्तर दिशा में बिठाई हुई सेना की टुकड़ी ने उन पर आक्रमण किया। इस टुकड़ी ने शत्रु-सेना के छक्के छुड़ा दिये परन्तु शत्रु-सेना इतनी अधिक थी कि उसे समाप्त कर देना या भगा देना उस टुकड़ी की सामर्थ में नहीं था।

टुकड़ी के सभी युवक युद्ध-भूमि में खेत रहे।

शत्रु-सेना का आक्रमण ज्यों-का-त्यों बना रहा। उसकी प्रगति में कोई बाधा नहीं पड़ी।

फिर दक्षिण दिशा वाली टुकड़ी शत्रु-सेना पर टूटी और उसने एक बार शत्रु-सेना के पैर उखाड़ दिये, परन्तु वह भी अन्त में शत्रु-सेना को समाप्त करने में असमर्थ रही और अन्त में अपने ही प्राणों की बलि देकर उसके योद्धा वीरगति को प्राप्त हुए।

इन दोनों टुकड़ियों को समाप्त करके शत्रु-सेना दुर्ग की ओर बढ़ चली और थोड़ी ही देर में उसने दुर्ग को घेर लिया।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सारा दिन घमासन युद्ध होता रहा। माता देवयानी और आचार्य कच आक्रमण का सामना करते रहे और अपने वीरों में उत्साह भरते रहे।

रात्रि भर भी घमासान युद्ध होता रहा और शत्रु-सेना दुर्ग-द्वार-पर आगई।

आचार्य कच पुरु के आने की प्रतीक्षा में थे। एक-एक क्षण का विलम्ब उस समय युग की लम्बाई लिये प्रतीत हो रहा था। आक्रमणकारियों द्वारा दुर्ग-विध्वंस की शंका उत्पन्न होगई।

तभी उनकी दृष्टि सुदूर पूर्व दिशा में फहराती हुई महाराज पुरु की पताका पर पड़ी और उसका सेना के शंख की ध्वनि भी उनके कानों में आई।

उनके आनन्द का पारावार न रहा। वह इस शुभ समाचार को देने के लिये राजमाता देवयानी की ओर बढ़ चले। देवयानी दुर्ग की बुर्जी पर खड़ी ऊपर से आक्रमणकारियों पर शस्त्रास्त्रों की वर्षा करके उन्हें दुर्ग-द्वार तक आने से रोक रही थीं।

शत्रुओं के वीर सैनिक बार-बार साहस करके दुर्ग-द्वार की ओर बढ़ने का प्रयास करते थे, परन्तु राजमाता देवयानी के भीषण प्रहार उनके बढ़ते हुए कदमों को रोक देते थे।

शत्रु-सेना निराश होकर दुर्ग से तनिक दूर एकत्रित हो गई और उसने अपने धनुष-वाण संभाल लिये। दुर्ग की बुर्जी पर उन्होंने वाणों की भीषण वर्षा की। शत्रु-सेना के एक धनुर्धारी की दृष्टि राजमाता पर पड़ी, तो उसने राजमाता को ही अपना लक्ष्य बनाया।

एक सनसनाता हुआ तीर कौंधती विद्युत के समान राजमाता देवयानी की ओर आया और आचार्य कच एक पग आगे बढ़कर राजमाता देवयानी की ढाल बन गये। वह प्राण-घातक तीर आचार्य कच के कलेजे में विध गया।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आचार्य कच भूमि पर गिर पड़े ।

ठीक उसी समय महाराज पुरू की सेना आ पहुँची और वह शंख-नाद करती हुई शत्रु-सेना पर टूट पड़ी। उसने शत्रु-सेना को पीछे धकेल दिया।

युद्ध में राजमाता देवयानी को विजय प्राप्त हुई। पुरु ने शत्रु-सेना का विध्वंस कर दुर्ग में प्रवेश किया।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आहत आचार्य कच को राजमाता देवयानी उठवाकर अपने राज-महल में ले गईं।

तीर कलेजे में बुरी तरह बिंध गया था। उसका विष बदन में फैलने लगा था परन्तु देवयानी ने देखा कि आचार्य कच के चेहरे पर पूर्ण आत्मसंतोष था। कोई चिन्ता नहीं थी, कोई पीड़ा नहीं थी, कोई व्यग्रता नहीं थी। मुखाकृति वैसी ही सरल थी जैसी उस दिन आम्र-वृक्ष के नीचे पड़े मूर्छित कच की देवयानी ने देखी थी।

देवयानी आचार्य कच के मस्तक पर अपना मस्तक टिकाकर फूट-फूट कर रो पड़ीं। उनके नेत्रों पर उसके नेत्र बरस पड़े।

आचार्य कच के चेहरे पर वही सरल मुस्कान खेल रही थी। वह सरल वाणी में बोले "देवयानी! कच पीछे तो नहीं रहा अपने हृदय-पुष्प की रक्षा में?"

"यह तुमने क्या किया ब्रह्मचारी कच?" विह्वल होकर माता देवयानी बोलीं। उनके नेत्रों से टपाटप आँसुओं की झड़ी लग गई।

आचार्य कच उतनी ही सरल वाणी में बोले, "देवयानी, रो रही हो तुम! यही तो वह समय आया है जब मेरी आत्मा मुक्त होकर अपनी दार्शनिक देवयानी की आत्मा में समाविष्ट हो सकेगी। अब समाजशास्त्र उसके मार्ग में प्रतिबन्ध उपस्थित नहीं कर सकेगा। मेरी यह देह, जो समाज की धरोहर थी, इसे समाज को सौंपकर ही तो मैं तुम्हारे निकट आ सकता था।"

देवयानी विकल होकर बोलीं, "ब्रह्मचारी कच! तुमने मेरी मृत्यु को अपने गले का हार बना लिया। मेरे प्राणों पर अपने प्राणों की भेंट चढ़ा दी।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इस जीवन में मेरे मन के अन्दर तुम्हारे विशुद्ध प्रेम के प्रति अनेक बार शंकाएँ उत्पन्न हुईं। इस समय सोच रही हूँ कि मैंने कितना महान् अपराध किया।"

"तुम कोई अपराध नहीं कर सकतीं देवयानी! मेरा कोई अपराध तुमने नहीं किया।" फिर तनिक बेचैनी-सी अनुभव करके बोले, "देवयानी! तुम मेरे पास आकर बैठ जाओ और उठना नहीं उस समय तक जब तक इस देह में एक भी श्वाँस शेष रहे।"

माता देवयानी आचार्य कच के पास आकर बैठ गईं। आचार्य कच बोले, "देवयानी! आज तुम्हारे निकट जीवन-लीला समाप्त कर रहा हूँ। मृत्यु-समय तुमसे एक प्रार्थना है कि यदि तुम्हारे मन में मेरे मित्र ययाति के प्रति लेश मात्र भी क्रोध हो तो उसे मन से निकाल फेंकना। उनसे जो कुछ भी अपराध बन पड़ा है, वह उनकी दुर्बलता के कारण हुआ है किसी दुर्भावना के फलस्वरूप नहीं। उन्होंने अपने अपराध का प्रायश्चित कठोर तपस्या द्वारा किया है। वह भी एक असाधारण वस्तु है। मुझे विश्वास है कि तुम इसका समुचित सम्मान करोगी।"

माता देवयानी के नेत्रों से नीर बरस पड़ा। वह विह्वल होकर बोलीं, "केवल सम्मान ही नहीं, ब्रह्मचारी कच! मैं अपना शेष जीवन उनकी ही सेवा में व्यतीत करूँगी। मेरे मन में उनके प्रति लेश मात्र भी क्रोध नहीं है। उनके प्रति ही नहीं, मेरे मन में शर्मिष्ठा के प्रति भी सद्भावना है।"

आचार्य कच ने प्रसन्नतापूर्वक कहा, "अब मैं शांति से प्राण-त्याग कर सकूँगा, देवयानी! तुमने मेरे हृदय को वास्तविक शांति प्रदान की है। मैं हृदय से तुम्हारा आभारी हूँ। तुमने मेरे मित्र ययाति को क्षमा कर दिया, इससे अधिक शांति की बात मेरे लिए अन्य कुछ नहीं हो सकती।"

यह कहकर आचार्य कच ने नेत्र बन्द कर लिए और फिर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

 Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उनके नेत्र न खुल सके। धीरे-धीरे उनका श्वाँस-प्रवाह रुक गया और उनका निर्जीव देह तख्त पर पड़ा रह गया।

आचार्य कच का प्राणान्त हो गया। सम्पूर्ण दुर्ग में शोक छा गया। माता देवयानी के शोक से महल का वातावरण हृदय-विदारक हो उठा।

माता देवयानी जी भरकर रोईं। उन्होंने आचार्य कच के चरणों की धूली को लेकर अपने मस्तक पर लगाया और गम्भीर वाणी में कहा, 'आचार्य कच! आपकी आज्ञा का उल्लंघन देवयानी नहीं कर सकती। मुझे अपना दासी-व्रत भूला नहीं है।'

महाराज पुरु शत्रु-सेना को परास्त करके लौटे तो उन्होंने सम्पूर्ण नगर को शोक-सागर में डूबा हुआ पाया। कारण समझ में नहीं आया कुछ।

वह सीधे राजमाता देवयानी के महल में पहुँचे तो राजमाता उन्हें एक तपस्विनी के वेश में मिलीं। वह शोक की साकार प्रतिमा के समान थीं।

महाराज पुरु ने माता के चरण छूकर प्रणाम किया और माता ने उन्हें अपनी छाती से लगाया।

महाराज पुरु ने पूछा, "राजमाता! आचार्य कच क्या अभी तक नहीं पधारे? आपके इस शोक का कारण क्या है?"

माता देवयानी महाराज पुरु को साथ लेकर बराबर के महल में गईं और तीर से बिंधे आचार्य कच के ऊपर ढकी चादर उतार कर बोलीं, "यह है बेटा मेरे शोक का कारण। आज भारत-भूमि से धर्म, समाज और राजनीति शास्त्र का प्रकांड पंडित उठ गया। आज देवयानी बहिन का भाई कच विधाता ने उससे छीन लिया। मेरी छाती में चुभने वाला तीर भैया ने अपनी छाती पर ले लिया।"

कहते-कहते राजमाता अपने को न सँभाल सकीं। वह वहीं अचेत

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

होकर भूमि पर गिर जातीं यदि उन्हें सँभालने के लिए वहाँ पुरु न होते।

पुरु ने उन्हें सावधानी से अपनी दोनों भुजाओं में भरकर ऊपर उठा लिया और दूसरे भवन में लेजाकर तख्त पर लिटाया।

थोड़ी देर में माता देवयानी की मूर्च्छा टूटी तो वह तुरन्त उठकर खड़ी हो गईं। पुरु ने ऐसा आकस्मिक परिवर्तन कभी किसी व्यक्ति के चेहरे पर होता नहीं देखा था, जैसा आज राजमाता देवयानी के चेहरे पर देखा।

आचार्य कच का अन्तिम संस्कार राजकीय सम्मान के साथ में गंगा नदी के तीर पर किया गया।

दूसरे दिन महाराजा पुरु को अनेकों भेंट देकर राजमाता ने विदा किया और चलते समय गम्भीर वाणी में कहा, "बेटा पुरु! आचार्य कच का संरक्षण-कर तुम्हारे सिर से विधाता ने उठा लिया। देखती हूँ, अब राज्य-संचालन में तुम कितनी सावधानी बरतते हो?"

पुरु ने माता देवयानी के चरण छूकर विदा ली और सेना के साथ अपनी राजधानी को कूच किया।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

२१

महाराज यदु कई दिन की कठिन यात्रा तय करके उस जंगल के निकट पहुँचे जो धाँय-धाँय करके जल रहा था। तीव्र वेग से बहने वाला पवन ज्वाला की लपटों को जंगल के एक कोने से दूसरे कोने तक फैलाता जा रहा था।

यदु अपना तीर-कमान लेकर अंगार उगलते हुए जंगल के बीच घुस गये। वह ज्वाला की लपटों को चीरते हुए उस स्थान पर पहुँचे जहाँ महाराज ययाति तपस्या कर रहे थे। उनका बदन अग्नि की लपटों से झुलस रहा था।

चारों ओर से उमड़ कर आती हुई भीषण दावाग्नि को वह देख रहे थे। वह पितृ-भक्ति में लीन होकर आगे बढ़ रहे थे।

यदु ने अपना धनुष-बाण सँभाला और तीरों की वर्षा करके लपटों को रोकने के लिए एक बाढ़ लगा दी।

यदु ने देखा जिस शिला पर बैठे उनके पिता ययाति तपस्या कर रहे थे, उससे जल की धाराएँ फूट रही थीं। यदु ने चट्टान पर तीरों की वर्षा की तो उससे जल के फव्वारे फूट पड़े और उन्होंने महाराज ययाति को अपनी शीतल बौछारों के बीच ले लिया।

लपटों की गर्मी से त्राण पाकर महाराज ययाति ने नेत्र खोले और सामने देखा तो एक धनुर्धारी युवक खड़ा था।

महाराज ययाति का बदन बहुत कृश हो गया था। नेत्रों की शक्ति दुर्बल पड़ गई थी। वह यदु को न पहिचान सके।

यदु ने आगे बढ़कर उनके पैरों पर मस्तक टिकाया और पितृ-भक्तिपूर्ण वाणी में कहा, "मैं आपका पुत्र यदु हूँ पिताजी! माता देवयानी का आदेश पाकर यहाँ आया हूँ।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

महाराज ययाति के हृदय में पुत्र-स्नेह उमड़ आया। उन्होंने यदु को छाती से लगा कर पूछा, "देवयानी कहाँ हैं बेटा ?"

"चलिये, मैं आपको माताजी के पास ले चलूँ।" यदु बोले।

"नहीं बेटा ! एक वचन भंग किया था तो इस दशा को प्राप्त हुआ। यदि दूसरा वचन भंग हो गया तो न जाने क्या गति होगी।" महाराज ययाति ने करुण स्वर में कहा।

यदु बोले, "आपका प्रण नगर में प्रवेश न करने मात्र का है पिताजी ! उसे भंग करने की आवश्यकता नहीं है। हमारे नगर से थोड़ी दूर एक सुन्दर वनस्थली है, गंगा नदी के तीर पर। आप वहीं रह कर तपस्या करें। यह प्रदेश अनार्यों द्वारा पदाक्रांत हो चुका है। आपका यहाँ रहना उचित नहीं।"

यदु की बात महाराज ययाति ने मान ली और वह यदु के साथ चलने को उद्यत हो गए।

यदु अपने पिताजी को सावधानी से घोड़े पर बिठाकर दावाग्नि की लपटों को चीरते हुए अपनी राजधानी की ओर बढ़ चले। पिता घोड़े पर और यदु पैदल-पैदल चलते आठ-दस दिन पश्चात् गंगा किनारे वनस्थली में पहुँचे।

वहाँ एक स्वच्छ कुटिया बनी हुई थी। उसमें ले जाकर यदु ने अपने पिता को ठहराया।

वनस्थली के शीतल वातावरण में पहुँच कर महाराज ययाति के झुलसे हुए बदन को शीतलता प्राप्त हुई। वह कुटिया के सामने खड़े विशाल बरगद की छाया में कुछ पत्ते बिछा कर उन पर लेट गये।

पिता को वहाँ छोड़ कर यदु नगर में आये तो समस्त नगर उन्हें विचित्र दशा में मिला। नगर-द्वार की दो बुर्जियाँ खंड़-खंड़ हुई पड़ी थीं और फाटक कई स्थानों से दरार खा गया था।

स्पष्ट ज्ञात होता था कि नगर पर शत्रु का आक्रमण हुआ है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

नगर की यह दशा देखकर यदु क्रोध से आग-बगूला हो गये। अपने दुर्ग पर आक्रमण करने वाले शत्रु को जड़-मूल से उखाड़ फेंकने के लिये उनके भुजदण्ड फड़क उठे।

वह क्रोध में भरे माता देवयानी के पास पहुँचे। वह उन्हें देख कर चकित रह गये। उनकी राजसी वेश-भूषा का कहीं पता नहीं था।

तपस्विनी देवयानी मूँज के आसन पर नेत्र बन्द किये बैठी हाथ में माला लेकर उसके एक-एक दाने को धीरे-धीरे बदल रही थीं।

यदु ने सामने जाकर माता के चरणों में मस्तक टिका दिया। माता देवयानी ने नेत्र खोले और उतावलेपन से पूछा, "महाराज कहाँ हैं ?"

यदु बोले, "मैं पिताजी को अपने साथ लिवा लाया हूं माँ ! परन्तु नगर में प्रवेश करने से उन्होंने मना कर दिया। मैं उन्हें गंगा-किनारे वनस्थली में छोड़ आया हूँ। दावाग्नि में उनका समस्त बदन झुलस गया है।"

माता देवयानी नंगे ही पैरों यदु के साथ वनस्थली की ओर चल पड़ीं। वहाँ जाकर बरगद की छाया में लेटे महाराज ययाति के दर्शन किये। उनके चरणों की रज अपने मस्तक पर लगाकर बोलीं, "राजन् ! दासी सेवा के लिये आ पहुँची है।"

महाराज ययाति कातर वाणी में बोले, "देवयानी ! यह सब कुछ न कहो इस समय। केवल इतना कहो कि तुमने अपने इस अपराधी को क्षमा कर दिया।"

"आपने मेरा कोई अपराध नहीं किया महाराज ! मैं सेवा के लिये आपके पास आई हूँ। मुझे ऐसे शब्द कह कर लज्जित न कीजिये। मैंने निश्चय किया है कि मैं अपना शेष जीवन आपकी सेवा में ही व्यतीत करूँगी।"

देवयानी की बात सुन कर महाराज ययाति के हृदय में रस की धारा प्रवाहित हो चली। उन्हें लगा कि उनके जीवन की सम्पूर्ण

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अशांति और जलन समाप्त हो गई। वह कातर-दृष्टि से माता देवयानी की ओर देख कर बोले, "क्या सचमुच तुम अब मुझे छोड़ कर कहीं नहीं जाओगी, देवयानी ? देवयानी ! अब बहुत निर्बल हो गया हूँ मैं। पहिले जब तुम चली गईं थीं तो मुझ में शक्ति थी। उस आघात कोमैं किसी प्रकार सहन कर सका। अब सहन करने की शक्ति शेष नहीं रही, देवयानी ! एक बार कह दो कि अब तुम मुझे छोड़ कर कहीं नहीं जाओगी।"

"वचन देती हूँ महाराज ! अब दासी से यह भूल कभी नहीं होगी।" माता देवयानी बोलीं।

महाराज ययाति के कानों में देवयानी के ये शब्द पड़े तो उन्हें लगा कि उनके जीवन में शीतलता भर गई। उनके नेत्रों का प्रकाश बढ़ गया। उन्होंने देवयानी के उसी रूप के दर्शन किये जिसे देखकर वह एक दिन अपने आपको भूल गये थे।

माता देवयानी ने देखा महाराज ययाति एक-टक उनकी ओर देख रहे थे। उनके अपलक नेत्र उनके चेहरे पर टिके हुए थे। वह बोलीं, "आप इस प्रकार क्या देख रहे हैं महाराज ?"

"देवयानी ! मैं एक मरु-प्रदेश में भटक रहा था। सुनसान बियाबान में भटक रहा था। मुझे बहुत प्यास लगी थी देवयानी ! और जल की एक बूंद कहीं दिखाई नहीं दे रही थी। भयंकर आँधी चल रही थी और मैं उसमें उड़ा जा रहा था। मुझे लग रहा था कि मानो मेरे चारों ओर अंगार बरस रहे हैं। मैं असहाय था देवयानी, नितान्त निरुपाय प्यास से मेरा हलक सूख रहा था। बदन में दो पग भी आगे बढ़ने की शक्ति शेष नहीं थी। बस नाम मात्र के लिये जीवि तथा मैं।" कहते-कहते महाराज ययाति मौन हो गये। उन्होंने अपने नेत्र बन्द कर लिये। देवयानी ने देखा उनके नेत्रों में दो आँसू की बूंदें उभर आई थीं।

माता देवयानी उनकी यह दशा देखकर व्याकुल हो गईं। उनकी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दृष्टि महाराज ययाति के झुलसे हुए पिंजर पर गई तो उन्हें लगा कि जैसे वह स्वयं ही उनकी अपराधिनी थीं। उनकी इस वर्त्तमान दशा का कारण वह स्वयँ थीं। उन्हें अपने पति को इस प्रकार जीवन के अंध कूप में धकेलते तनिक भी दया न आई। पुत्र के वैभव को प्राप्त कर पति के उत्तरदायित्व की दिशा से उन्होंने अपना मुँह मोड़ लिया। वह अपने पति को भी क्षमा न कर सकीं। इतना अहंकार! वह तिलमिला उठीं। उनके हृदय में पश्चाताप की ज्वाला सुलगने लगी। वह बोलीं, "महाराज! मैं आपके अपार कष्ट का कारण बनी। मैं.....।"

"यह क्या कह रही हो देवयानी!" नेत्र खोल कर देवयानी की ओर देखते हुए महाराज ययाति बोले, "मुझे तो तनिक भी कष्ट नहीं हुआ। मैंने तो तुम्हें हर समय अपने पास पाया है। उस बीहड़ वन में तुम मेरे साथ न होतीं तो भला मैं पच्चीस वर्ष अकेला कैसे रह पाता। उस दिन जब यदु ने मुझे पुकारा तो मैं अपने हृदय में तुम्हीं को लिये बैठा था। मैं कह रहा था, 'देवयानी! अब विदा दो मुझे। मैं बहुत थक गया हूँ। अब यह शरीर काम नहीं देगा।' तुम हँस पड़ीं मेरी यह बात सुनकर। जानती हो तुमने क्या कहा?"

"मैंने क्या कहा महाराज?" माता देवयानी के मुख से अनायास ही निकल गया।

"तुमने कहा था' 'निर्मोही न बनो महाराज! यह व्यर्थ तपस्या का क्या ढ़ोंग रचाया है आपने? मैं आपके पास नहीं आ सकती क्योंकि मैंने शर्मिष्ठा और पुत्र पुरू के लिए आपके राज्य का परित्याग कर दिया है, परन्तु आप तो आ सकते थे मेरे पास। यह वह राज्य नहीं है जहाँ आपको पद्च्युत कर दिया गया था। यह तो आपके पुत्र यदु का राज्य है। अच्छा समझी! आपको लज्जा आती है आने में। ऐसा क्यों? मैंने कोई अपराध भले ही किया हो, यदु ने तो कोई

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अपराध नहीं किया।' कहते-कहते महाराज ययाति के नेत्रों से आँसू बरस पड़े। वह फिर बोले, "देवयानी! शर्मिष्ठा आचार्य कच से पराजित होकर मुझे पथ-भ्रष्ट करने में सफल हुई। युगदृष्टा आचार्य कच के पूर्वाभास देने और प्रतिज्ञा करने के पश्चात् भी मैं पराजित हुआ। यह दुर्बलता थी मेरी देवयानी! दुर्बलता पाप नहीं होती।"

माता देवयानी बिलख-बिलख कर रो पड़ीं। उन्हें रोते देखकर महाराज ययाति अधीर होकर बोले, "तुम रो रही हो देवयानी! रोने के दिन तो बीत चुके। मैं बहुत रोया हूँ देवयानी! पच्चीस वर्ष का जीवन आँसुओं की माला गूंथते हुए ही व्यतीत किया है। परन्तु देवयानी! उन आँसुओं की बूंदों में मुझे तुम मुस्कराती हुई दिखाई देती थीं। तुम्हें देखकर मेरा जलता हुआ हृदय शान्त हो जाता था।

वह बीहड़ वन मुझे राजकीय उपवनों और वाटिकाओं से भी सुन्दर प्रतीत होता था। प्रकृति के प्रांगण में तुम्हारी आभा आकर बिखर जाती थी और मैं उसमें खो जाता था।"

माता देवयानी मुग्ध होकर महाराज ययाति की बातें सुन रही थीं। उनके हृदय की जलन, जिसे वह पच्चीस वर्ष से अपने हृदय में दबाये बैठी थीं, धीरे-धीरे शान्त होती जा रही थी। उसके स्थान पर सरस रस की धारा प्रवाहित हो चली थी। उनका बदन रोमांचित होता जा रहा था। उनके हृदय के रिक्त स्थान में फिर से वह प्रतिमा साकार हो उठी थी, जिसकी आभा उन्होंने एक दिन उसमें प्रज्ज्वलित की थी। उनके मानस का तिमिर हटता जा रहा था।

महाराज ययाति धीरे-धीरे स्वस्थ होने लगे थे और उनके दग्ध शरीर की त्वचा बदलती जा रही थी। अब वह चलने फिरने योग्य हो गये थे। माता देवयानी की सेवा ने उन्हें नवजीवन प्रदान किया था।

माता देवयानी अपने पति की सेवा में रत थीं। उन्होंने अपना

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

शेष जीवन पति-भक्ति को समर्पित कर दिया था। महाराज ययाति के जीवन में फिर से प्राचीन जीवन की स्मृतियाँ जाग्रत होती जा रही थीं। उनकी सुप्त विचारधारा फिर प्रवाहित हो चली थी। उनका हृदय-कुसुम, जो मुँद गया था, वह अब फिर से अपनी पंखुरियों को खोलकर पवन पर लहराने लगा था। उनके विशुद्ध हृदय की कुण्ठित भावनाएँ फिर से उड़ान लेने के लिये मचलने लगी थीं। उनके जीवन की व्याकुलता धीरे-धीरे समाप्त होती जा रही थीं। उनकी मनस्थिति शांति प्राप्त कर रही थी।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

महाराज ययाति कुटी से बाहर आये तो देखा माता देवयानी अंजलि में कुछ पुष्प लिये कुटिया की ओर आ रही थीं। महाराज बोले, "तुम कहाँ चली गई थीं देवयानी ? सूर्य देवता का उदय हो चुका और आज हमने अभी पूजा भी नहीं की।"

माता देवयानी बोलीं, "मैं उसी के प्रबन्ध में जुटी थी महाराज ! आज हम लोग गंगा-स्नान के लिये चलेंगे। वहाँ एक छोटा सा मंदिर है। आज आप वहीं चलकर पूजा करें।"

"जैसी तुम्हारी इच्छा देवयानी ! गंगा माता के भी दर्शन हो जायेंगे। देवयानी ! तुमने यदु की राजधानी के लिये यह स्थान बहुत सुन्दर चुना है। तुम आज्ञा दोगी तो मैं यदु की नगरी को एक बार देखने अवश्य चलूँगा।" महाराज ययाति बोले।

"यदु आपके स्वागत के प्रबन्ध पर ही इस समय जुटा हुआ है महाराज ! इस शुभ अवसर पर यदु ने पुत्र पुरू और बहिन शर्मिष्ठा को भी लिवा लाने की व्यवस्था की है। उसके महामंत्री रथ लेकर शर्मिष्ठा को लाने के लिये पधार चुके हैं।" माता देवयानी बोलीं।

"शर्मिष्ठा को !" इन शब्दों ने जैसे महाराज ययाति को झँझोड़ डाला। उनका सारा बदन स्वेदपूर्ण होकर काँप उठा। वह बोले, "यह तुमने क्या किया देवयानी ! क्या तुम एक बार फिर मुझे अंधकार में धकेल देना चाहती हो ?"

देवयानी बोलीं, "अब उसकी आशंका समाप्त हो चुकी महाराज ! यदि देवयानी भूल से उस समय आपके साथ लौट आई होती तो निश्चय ही पुरु और यदु के जीवन में पारस्परिक द्वेष का बीजारोपण होगया होता। मेरे न आने से

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उसकी सम्भावना समाप्त होगईं। आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि इस समय यदु और पुरु-राज्यों में पूर्ण सहयोग और मैत्री सम्बन्ध है। इन दोनों ही भाइयों ने अपने पिता के यश और ख्याति को देश व्यापी बना दिया है। सम्पूर्ण मध्य देश और गुजरात तक इनके राज्य का विस्तार हो गया है।

'जिस दिन यदु को उस वन में दावाग्नि के प्रज्ज्वलित होने का समाचार मिला था और मैंने आप को लिवा लाने के लिये यदु को भेज दिया था, उसी दिन रात्रि को यदु की राजरानी पर कुछ अनार्य राजाओं ने भयंकर आक्रमण किया।"

"फिर क्या हुआ देवयानी ? तुमने कैसे राजधानी की रक्षा की ?" महाराज ययाति ने भयभीत स्वर में पूछा।

माता देवयानी बोलीं, "चिंतित तो मैं बहुत थी परन्तु रक्षक जो था मेरा। उसी ने सब व्यवस्था पूर्ण की और अनार्य दल विध्वंस को प्राप्त हुआ।"

"तुम्हारा रक्षक कौन था देवयानी ?" महाराज ययाति ने पूछा, "किसने उस कठिन समय में आकर तुम्हारी सहायता की ?"

"क्या भय्या कच का स्मरण नहीं रहा आपको प्राण नाथ ! वह न होते तो इन दोनों बड़े साम्राज्यों की व्यवस्था कौन सँभालता ? आप तो चार और एक वर्ष के युवराजों को छोड़कर तपोवन चले गये थे। भय्या कच ने ही तो उस कठिन काल में इस उत्तरदायित्व को वहन किया।"

माता देवयानी के यह कहने से आचार्य कच की स्मृति उनके मस्तिष्क में लौट आई। वह अचानक ही व्याकुल से हो उठे। वह एक बालक से समान बोले, "देवयानी ! आचार्य कच ! मेरे मित्र ! उन्हीं का तो उपहार हो तुम ! कहाँ हैं वह ? मुझे उनके पास ले चलो देवयानी ! मैं उनके दर्शन करना चाहता हूँ।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

महाराज के ये शब्द सुनकर माता देवयानी की आँखों से अश्रुओं की वर्षा होने लगी। अपने को न सँभालकर वह वहीं हरी घास पर बैठ गईं।

"तुम रो रही हो देवयानी ! क्या आचार्य कच इस संसार में नहीं रहे ?" भयभीत स्वर में महाराज ययाति ने पूछा।

"उनका पार्थिव शरीर नहीं रहा महाराज ! उनकी आत्मा मेरे प्राणों में समाविष्ट होगई। भाई ने अपनी बहिन के प्राणों की रक्षा के लिये विष से बुझा हुआ बाण अपनी छाती पर ले लिया। वह अचेत होकर भूमि पर गिरे पड़े। तब तक पुत्र पुरु अपनी सेना के साथ यहाँ आ पहुँचा और उसने शत्रु की सेना का विध्वंस कर दिया।

आचार्य कच आज इस संसार में नहीं हैं।" माता देवयानी ने रुद्ध कंठ से कहा।

माता देवयानी और महाराज ययाति गंगा किनारे पहुँचे तो वहाँ एक छोटी सी मढ़ी बनी हुई थी। उसे देखकर महाराज ने पूछा, "देवयानी, ! यह किसकी मढ़ी है ?"

माता देवयानी ने कहा, "महाराज अंजलि भरकर पुष्प चढ़ाइये इस मढ़ी पर।"

महाराज ययाति ने अंजलि भरकर मढ़ी पर पुष्प चढ़ाये।

माता देवयानी नेत्रों से अश्रु बरसाती हुई बोलीं, "महाराज ! यह उसी तपस्वी की मढ़ी है जिसने विश्व को शान्ति और सद्भावना का अमर संदेश प्रदान किया। यह आपके अभिन्न मित्र आचार्य कच की मढ़ी है।" यह कह कर वह विह्वल हो गई।

'आचार्य कच" कहकर महाराज ययाति विक्षिप्तावस्था में भूमि पर गिर पड़े। उन्हें अपने तन-बदन की सुधि न रही।

माता देवयानी ने गंगा से जल लाकर उनके मुख पर छिड़का तो उन्हें चेतना लौटी। महाराज ययाति मढ़ी पर मस्तक टिकाकर फूट-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

फूटकर रो पड़े और शोक भरे शब्दों में बोले, "आचार्य कच ! आपकी तपस्या, आपके निष्काम प्रेम, पांडित्य सभी के सम्मुख आपका यह अधम मित्र नतमस्तक होता है।"

माता देवयानी ने बताया कि किस प्रकार अपने अन्तिम श्वासों के प्रवाह में आचार्य कच ने सद्भावना के साथ महाराज का स्मरण किया।

उन्होंने मुझ से अपनी अंतिम अभिलाषा स्वरूप कहा, 'देवयानी ! आज तुम्हारे निकट जीवन लीला समाप्त कर रहा हूँ। मृत्यु-समय तुमसे एक प्रार्थना है कि यदि तुम्हारे मन में मेरे मित्र ययाति के प्रति लेश मात्र भी क्रोध हो तो उसे मन से निकाल फेंकना। उनसे जो कुछ भी अपराध बन पड़ा है, वह उनकी दुर्बलता के कारण हुआ है, किसी दुर्भावना के फलस्वरूप नहीं। उन्होंने अपने अपराध का प्रायश्चित कठोर तपस्या द्वारा किया है। वह भी एक असाधारण वस्तु है। मुझे विश्वास है कि तुम इसका समुचित सम्मान करोगी।'

उनके ये शब्द सुन कर मेरे नेत्र बरस पड़े। मैं विह्वल हो गई। उनके अंतिम श्वांस चल रहे थे। उनके पास प्रतीक्षा के लिये समय नहीं था। वह मेरा उत्तर सुनने की प्रतीक्षा में थे।"

"तुमने क्या उत्तर दिया देवयानी ?" महाराज ययाति ने पूछा।

मैंने कहा, 'केवल सम्मान ही नहीं ब्रह्मचारी कच ! मैं अपना शेष जीवन उनकी सेवा में उनकी ही सेवा में व्यतीत करूँगी। मेरे मन में उनके प्रति लेश मात्र भी क्रोध नहीं है। उनके प्रति ही नहीं, मेरे मन में शर्मिष्ठा के प्रति भी सद्भावना है।'

मेरा यह उत्तर सुन कर आचार्य कच ने प्रसन्नतापूर्वक कहा, 'अब मैं शांति पूर्वक प्राण त्याग कर सकूँगा देवयानी ! तुमने मेरे हृदय को वास्तविक शाँति प्रदान की है। मैं हृदय से तुम्हारा आभारी हूँ। तुमने

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मेरे मित्र ययाति को क्षमा कर दिया। इससे अधिक शांति की बात मेरे लिये अन्य कुछ नहीं हो सकती।' बस इतना मात्र कहकर कच ने नेत्र बन्द कर लिये और वह ज्योति संसार से लुप्त होगई।"

"वह ज्योति लुप्त नहीं हुई देवयानी ! वह कभी लुप्त नहीं होगी। जब तक भारत और भारतीय संस्कृति रहेगी तब तक वह ज्योति निरंतर प्रज्वलित रहेगी। तुम्हारे अन्दर, मेरे अन्दर और सम्पूर्ण राष्ट्र के अन्दर उनकी ज्योति जगमगा रही है। वह मेरी आंखों के समक्ष खड़े मुस्करा रहे हैं। वह मुझसे पूछ रहें कि मैं भविष्य में तो कभी वैसी भूल नहीं करूँगा, जिसे करके मैंने अपनी प्रियतमा का महान् अपकार किया।' फिर बोले, 'देवयानी ! तुमने मुझे क्षमा कर दिया। मेरे लिये भी इससे प्रसन्नता की अन्य कोई बात नहीं है।" यह कहते हुए उन्होंने अपना मस्तक आचार्य कच की मढ़ी के चबूतरे पर रख दिया और फूट-फूट कर रो पड़े।

देवयानी ने सांत्वना देते हुए कहा, "महाराज ! आचार्य कच का त्यागमय जीवन क्या इस प्रकार रोने और बिलखने का जीवन है। आइये हम एक बार फिर उस युग-द्रष्टा के चरणों में पुष्प अर्पित कर आशीर्वाद ग्रहण करें।"

दोनों ने अंजिल भर-भर कर मढ़ी पर पुष्प चढ़ाये तो आकाश से देवताओं ने उन पर पुष्प-वृष्टि की।

वे आचार्य कच की गढ़ी से लौटकर कुटिया पर आये तो उन्होंने आश्चर्य के साथ देखा यदु के साथ कुरु और शर्मिष्ठा उनकी प्रतीक्षा में खड़े थे।

शर्मिष्ठा आगे बढ़कर देययानी के पैरों पर गिर गई। देवयानी ने शर्मिष्ठा को उठाकर छाती से लगाया और पुरु को प्यार से आशीर्वाद दिया।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

महाराज यह दृश्य देखकर आत्मविभोर हो गये। वह बोले "देवयानी ! तुमने भारतीय संस्कृति को जो महान् चरित्र प्रदान किया है वह नारी जाति ही नहीं वरन् मानव जाति के लिये सर्वदा आदर्श की प्रतिष्ठा करता रहेगा। तुम धन्य हो देवि ! तुमने कलह और संकीर्णता का विनाश कर सद्भाव और व्यापक दृष्टिकोण का भारत भूमि में बीजारोपण किया है।"

सब लोग आनन्दपूर्वक कुटिया के प्रांगण में जाकर हरी घास पर बैठे पारिवारिक सुख का आनन्द लाभ किया।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

रजनीगंधा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

देवयानी के पुत्र यदु के नाम पर यदुवंश की स्थापना हुई और शर्मिष्ठा के पुत्र पुरु के नाम पर पुरुवंश की। पुरुवंश में कुरु नामक एक प्रभावशाली राजा हुआ जिसके नाम से भविष्य में यह वंश कुरु-वंश कहलाया। कुरुवंश में एक-से-एक प्रतापी राजा हुए। इनकी राजधानी हस्तिनापुर रही।

महाराज शान्तुन इसी वंश के एक प्रतापी राजा थे। उनकी रानी गंगा अपने इकलौते पुत्र देवव्रत को छोड़कर स्वर्ग सिधार गई थीं। उनकी मृत्यु के पश्चात् महाराज शान्तनु ने विधुर-जीवन व्यतीत किया।

एक दिन वह अपने मंत्री को साथ लेकर गंगा-किनारे आखेट के लिये गये। उन्होंने गंगा में एक छोटी सी नौका को आते देखा तो उनका मन नौका-विहार के लिये हो आया। वह रथ से उतर कर अपने मंत्री को साथ ले गंगा-किनारे पहुँच गये और नौका की प्रतीक्षा करने लगे।

महाराज को किनारे पर खड़े देख कर रजनीगंधा ने उन्हें पहिचान लिया। वह नौका को तीव्र गति से खेती हुई उनके निकट ले आई। किनारे पर आकर उसने नौका एक ओर लगा दी।

महाराज शान्तनु अपने मंत्री के साथ आगे बढ़ कर नौका के निकट पहुँच गये।

रजनीगन्धा ने उन्हें देखकर पहिचानने में भूल नहीं की। उसने उन्हें पहिले देखा था, परन्तु तब उन्होंने उसकी ओर दृष्टि डालना भी पसंद नहीं किया था। आज जैसे उनके नेत्र उसकी ओर खिंच गये थे, वैसा तब नहीं हुआ था। उस समय यह रूप उसके पास नहीं था। उसके बदन से सुगंधि के स्थान पर दुर्गन्ध आती थी। उसका बदन उस

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

समय रोगग्रस्त था।

कुछ देर तक दोनों एक दूसरे की ओर देखते रहे। फिर महाराज शान्तनु बोले, "देवि ! क्या हम लोगों को भी तुम्हारी इस नौका में बैठ कर जल-विहार करने का सौभाग्य प्राप्त हो सकता है ? हमारी इच्छा नौका-विहार करने की है।"

महाराज शान्तनु की बात सुन कर रजनीगंधा हँस पड़ी। वह बोली, "महाराज ! मैं तो सेविका हूँ आपकी। यह नौका आपकी ही है। आइये, पधारिये। जिधर आज्ञा करें, ले चलती हूँ।"

महाराज शान्तनु अपने मंत्री के साथ नौका पर जा बैठे। उनके नेत्र रजनीगन्धा के रूप को निहार रहे थे। वह चाहकर भी इधर-उधर नहीं देख पाते थे। उनका मन जाने क्यों रजनीगंधा की ओर खिंचता जा रहा था। वह अनुभव कर रहे थे कि उसका रूप तीव्र गति से उनके हृदय को अपनी ओर आकर्षित कर रहा था और वह उसमें प्रवेश करता जा रहा था।

महाराज शान्तनु ने पूछा, "देवि ! तुम कौन हो ? तुम्हारा नाम क्या है ? तुम यहाँ अकेली कैसे घूम रही हो ?"

रजनीगंधा बोली, "महाराज ! मैं आपके मल्लाह की कन्या हूँ। इस घाट पर जो यात्री आते हैं, मैं उन्हें सरिता से पार उतारने का कार्य करती हूँ। मेरा नाम रजनीगंधा है।"

उत्तर सुनकर महाराज शान्तनु बोले, "कितना सुन्दर नाम है तुम्हारा और कार्य भी तुम्हारा कितना सराहनीय है ? तुम सचमुच यात्रियों को पार उतार सकती हो।" उन्होंने अनुभव किया कि वहाँ का वायुमण्डल रजनीगंधा की सुगन्धि से भरा था। उन्होंने चारों ओर दृष्टि फैलाई, परन्तु उन्हें कहीं कोई रजनीगंधा का पौधा दिखाई न दिया। वह चमत्कृत हो गये। उनकी समझ में न आया कि वह भीनी-भीनी सुगन्धि कहाँ से आ रही थी।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

महाराज शान्तनु की बात सुनकर रजनीगंधा के तन-मन झंकृत हो गये। उसके हृदय में सरस रस की धारा प्रवाहित हो चली। उसके बदन की शिराएँ चंचल हो गईं। उसके अधर-पल्लव हिलने लगे और वह मधुर स्वर में बोली, "महाराज ! देखिये यह कितनी विचित्र बात है कि सब यात्रियों को पार करने वाली इस कन्या को पार उतारनेवाला आज तक कोई व्यक्ति इस घाट पर नहीं आया। क्या आप इस अकिंचन को पार उतार सकेंगे ?"

रजनीगंधा की बात सुनकर महाराज शान्तनु के हृदय में मधुर हिलोरें उठने लगीं। वह रजनीगंधा के रूप को निहार कर मुग्ध हो गये। उनका हृदय-कमल धीरे-धीरे खिल रहा था। उसकी पंखुरियाँ एक-एक करके विकसित हो रही थीं। उनका मन आनन्द से भरता जा रहा था। उनके मानस में उसके रूप की ज्योति उतर कर आ रही थी। उनका रोम-रोम पुलकायमान था।

तुरन्त ही उनके मुख पर कुछ उदासी-सी छा गई। अभी-अभी कुछ क्षण पूर्व जो आनन्द की सरिता उनके हृदय में प्रवाहित हुई थी, वह सूखने लगी। उनके बदन के रोम जो पुलक उठे थे, बदन पर लेट गये। उनके नेत्रों की दमदमाहट निराशा में बदल गई। उनके वक्ष का उभार ढीला पड़ गया। उनकी दृष्टि में दयनीयता झलकने लगी और वह सकरुण वाणी में बोले, "देवि ! गंगा-किनारे की स्त्रियों को पार उतारना बहुत कठिन है। यहाँ की स्त्रियों पर से मेरा विश्वास उठ चुका है। बहुत दिन पूर्व तुम जैसी ही रूपवती एक देवी मुझे गंगा-किनार मिली थी। उसने भी मुझे पार उतारने का आश्वासन दिया था, परन्तु वह मुझे मंझधार में छोड़ गई। वह मेरे जीवन में एक स्वप्न के समान आई और चली गई। मैं निराधार खड़ा रह गया। वह बहुत निर्मम निकली।"

रजनीगंधा आश्चर्यचकित होकर बोली, "ऐसी निर्मम वह कौन

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

थीं, जिन्होंने आपको मझधार में ही छोड़ दिया ? यह उन्होंने उचित नहीं किया। नाविक का धर्म है कि वह यात्री को किनारे पर लगाये। यात्रियों के साथ ऐसा उपहास नहीं करना चाहिये। आप तैरना जानते होंगे, इसी से किनारा पकड़ लिया, वरना मंझधार में ही डुबकियाँ लगाते रहते।"

महाराज शान्तनु रजनीगंधा की भोली बात सुन कर गद्-गद् हो गये। वह बोले, "देवि ! तैरना ही तो मैं नहीं जानता था। इसी लिये आज तक किनारे पर नहीं पहुँच सका। मैं तो आज भी मझधार में ही डुबकियाँ लगा रहा हूँ। क्या तुम्हें मैं किनारे पर खड़ा दिखाई दे रहा हूँ ?"

रजनीगंधा हँसकर बोली, "चिन्ता न करें आप, अपनी बहिन के अधूरे कार्य को मैं पूरा करने का प्रयास करूँगी। मैं अभी आपको किनारे पर पहुँचा देती हूँ। मैं आपको मंझधार में नहीं छोड़ूँगी।"

महाराज शान्तनु प्रसन्न होकर बोले, "क्या तुम सचमुच मुझे किनारे पर पहुँचा सकोगी रजनीगंधा ?"

"क्यों नहीं ? मैं नौका बहुत अच्छी खेना जानती हूँ।" उसने दोनों हाथों से पतवार सँभालकर नौका को किनारे की ओर खेना आरम्भ कर दिया। वह आँखें तरेर कर बोली, "मेरी नौका में आज तक जो यात्री बैठा है, मैंने उसे किनारे पर पहुँचाया है महाराज !"

नौका गंगा की लहरों पर अठखेलियाँ करती हुई किनारे की ओर बढ़ रही थी। महाराज शान्तनु अनुभव कर रहे थे कि उनके अन्दर से धीरे-धीरे बुढ़ापे का लोप हो रहा था और नया रक्त उनकी शिराओं में संचरित हो गया था। उन्हें अपने अन्दर एक नवीन स्फूर्ति का भास हो रहा था। उनके बदन का सारा शैथिल्य जाता रहा था। सरिता की लहरों से टकराकर मन्द समीरण उनके बदन को छू रहा था। उनका जीवन आनन्द की उमंगों में बह चला था। उनका हृदय-कमल खिलता

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जा रहा था।

महाराज शान्तनु ने मुग्ध दृष्टि से रजनीगंधा की ओर देखा तो वह समझ न सके कि वह निषादराज की कन्या हो सकती है। ऐसा रूप निषाद-कन्या में कहाँ से आया ? उनके मन ने कहा, 'नहीं, यह निषाद-कन्या नहीं हो सकती। यह अवश्य ही कोई देवकुमारी है। यह मुझे ठगने के लिये आई है। इसका रूप किसी भी प्रकार गंगा से कम प्रखर नहीं है। इसमें वही बाँकापन है, वही सौंदर्य, वही नेत्रों का आकर्षण है, वही है यह सब कुछ।' उन्हें लगा कि जैसे रजनीगंधा के रूप में स्वय उनकी पहिली पत्नी गंगा अपने दोनों हाथों में पतवार लेकर नौका खे रही थी और मुस्कराकर कह रही थी, 'मैं तुम्हारी परीक्षा लेने आई हूँ। देखती हूँ तुम कितने संयमी हो।'

महाराज शान्तनु के बदन में सिहरन आगई। वह एक टक बहुत देर तक रजनीगंधा की ओर देखते रहे।

रजनीगंधा उनकी ओर देखकर मुस्कराती हुई बोली, "अब किनारा दूर नहीं है महाराज ! भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है। मैं आपको मंझधार में नहीं छोड़ूँगी, आप विश्वास रखें। मैं निश्चय ही अपने धर्म का पालन करूँगी।"

रजनीगंधा की बात सुनकर महाराज शान्तनु जैसे स्वप्न से जाग उठे। उन्होंने उसकी ओर देखा तो नौका चलाने के परिश्रम से उसके सौंदर्य में और निखार आ गया था। उसके मस्तक पर उभरे स्वेद-बिन्दु संध्या की लाली से मुक्ताओं के समान दमक उठे थे। उसका रूप उनके हृदय में अनायास ही उतरता जा रहा था।

नौका जाकर किनारे से लगी तो रजनीगंधा ने देखा, उसके माता-पिता किनारे पर खड़े उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। आज उसे लौटने में अन्य दिनों की अपेक्षा विलम्ब हो गया था।

निषादराज की नौका पर बैठे महाराज शान्तनु पर दृष्टि गई तो

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उनके आनन्द का पारावार न रहा। उसने आगे बढ़ कर नौका की रस्सी पकड़ी और उसे सावधानी से किनारे पर लगाया।

निषादराज ने महाराज शान्तनु के चरण छुए। महाराज शान्तनु ने उसे आशीर्वाद दिया।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

महाराज शान्तनु निषादराज के साथ उनकी कुटिया पर गये। निषादराज ने इसे अपना सौभाग्य माना। वह हाथ जोड़कर बोला, "महाराज ! आपने इस दीन की कुटिया में चरण रख कर इसे पवित्र कर दिया। इस शुभ अवसर पर आपको क्या भेंट दूँ, यह मैं समझ नहीं पा रहा। आपको भेंट देने योग्य तो मेरे पास कुछ नहीं है।"

महाराज शान्तनु बोले, "निषादराज ! मुझे भेंट देने के लिये तुम्हें विधाता ने वह अमूल्य रत्न प्रदान किया है, जो मेरे राज्य में अन्य किसी को प्राप्त नहीं है। तुम्हें विधाता ने वह पुष्प दिया है, जो देवों को भी मिलना दुर्लभ है। तुम्हारी कन्या रजनीगंधा के रूप ने मुझे अपना दास बना लिया है। क्या तुम यह पुष्प मुझे भेंट नहीं कर सकते ?"

महाराज शान्तनु के ये शब्द सुनकर निषादराज का हृदय गद्-गद हो गया। उसने अपने मन में अपनी पुत्री के भाग्य की सराहना की। उसके नेत्र कृतज्ञता से भर गये। वह एक क्षण कुछ बोल ही न सका। उसको समझ में न आया कि इतना बड़ा सौभाग्य आखिर कैसे उनकी पुत्री को प्राप्त हो सका। पता नहीं वह उसके कौन से पुण्यों का फल था।

निषादराज बोला, "महाराज ! मेरी पुत्री को आप अपने चरणों म स्थान देना चाहते हैं, इससे अधिक हर्ष की बात मेरे लिये अन्य कोई नहीं हो सकती ?' परन्तु एक ही विनय है कि मेरी पुत्री आपके महल में साम्राज्ञी बनकर रहेगी।"

महाराज शान्तनु निषादराज की बात सुनकर हँस पड़े। वह बोले, "निषादराज ! जिस पुष्प का स्थान मेरे हृदय में होगा, वह साम्राज्ञी नहीं होगी तो और क्या होगी ? क्या इसके अतिरिक्त भी तुम अन्य

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

किसी प्रकार का आश्वासन चाहते हो ?"

यह आश्वासन प्राप्त कर निषादराज ने एकान्त में जाकर अपनी पत्नी से परामर्श किया। उसकी पत्नी बोली, "तुम निरे मूर्ख हो जी ! केवल साम्राज्ञी बनने से क्या होगा ? क्या तुम नहीं जानते कि महाराज की पहली पत्नी के पुत्र देवव्रत हैं। बड़े होने के नाते वही युवराज होंगे। महाराज शांतनु की मृत्यु के पश्चात् वही राजा बनेंगे। तब जानते हो रजनीगंधा की क्या स्थिति होगी ? महाराज के मरते ही देवव्रत अपनी सौतेली माँ को एक ओर बिठा कर उसका साम्राज्ञीपन समाप्त कर देंगे। तब क्या होगा ?

उस समय देवव्रत की पत्नी साम्राज्ञी होंगी और मेरी पुत्री तथा इसके बच्चों की कौन जाने क्या दुर्दशा हो। आप महाराज से कहिये कि हमारी पुत्री न केवल साम्राज्ञी ही होगी, वरन् इसके गर्भ से जो पुत्र जन्म लेगा, वही युवराज कहलायेगा। महाराज शान्तनु के पश्चात् वही राजसिंहासन का अधिकारी होगा। यदि महाराज को यह बात स्वीकार हो तो हमें रजनीगंधा का उनके साथ विवाह करने में कोई आपत्ति नहीं है।"

निषादराज ने अपनी पत्नी की इच्छा महाराज शान्तनु के समक्ष प्रकट की तो वह किंकर्त्तव्यविमूढ़ से रह गये। उनके सामने देवव्रत की सूरत आकर खड़ी हो गई। देवव्रत की आज्ञाकारिता, उसका शील, उसका यश, सब मिलकर कुरुवंश की कीर्ति-पताका के समान थे। विचारते-विचारते महाराज शांतनु के नेत्र रजनीगंधा के रूप से हटकर असीम आकाश पर फैल गये। वह निषादराज को कोई उत्तर न दे सके।

महाराज शांतनु गम्भीर वाणी में अपने मंत्री से बोले, "मंत्री जी ! सारथी को आज्ञा करो कि हमारा रथ इधर ले आये।" उनके बदन में अब रथ तक जाने की शक्ति शेष नहीं रही थी। उनके नेत्र निराशा से पूर्ण थे। उनका हृदय बैठा जा रहा था। उनकी आँखों के सामने अंध-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कार छा गया था। उनका बदन काँप रहा था।

सारथी रथ को हाँककर निषादराज की कुटिया पर ले आया और महाराज रथ पर सवार हो गये। सारथी ने रथ हाँक दिया।

रजनीगंधा निराशापूर्ण दृष्टि से रथ को जाता हुआ देखती रह गई।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

३

महाराज शान्तनु राजधानी में पहुँच कर सीधे अपने महल में चले गये। वह राजदरबार में नहीं गये। उनका चित्त बहुत अशान्त था और मन उद्भ्रान्त।

महाराज को राजधानी में लौटे कई दिन हो गये और वह दरबार में न जा सके। उनकी आँखों में हर समय रजनीगन्धा का ही रूप तैरता रहता था। वह जिधर भी देखते थे उन्हें अपने समक्ष रजनीगंधा खड़ी मुस्कराती दिखाई देती थी। वह उसे एक क्षण के लिये भी भुला नहीं पाते थे।

महाराज शान्तनु की दशा दिन-प्रति-दिन खराब होती जा रही थी। उनका स्वास्थ्य गिरता जा रहा था। उन्हें भूख-प्यास कुछ नहीं लगती थी। उनका चित्त हर समय व्याकुल रहता था। वह अकेले अपने महल में पड़े-पड़े रजनीगंधा का काल्पनिक रूप निहारते रहते थे।

महाराज की यह दशा देखकर देवव्रत चिन्तित हो गये। उन्होंने राजवैद्य से महाराज की अस्वस्थता का कारण पूछा तो वह बोले, "युवराज! महाराज को कोई मानसिक क्लेश है। उसी के कारण उनकी यह अस्वस्थता चल रही है। उन्हें कोई दैहिक रोग नहीं है। उनके हृदय में अथाह पीड़ा है। उनका हृदय विदीर्ण हुआ जा रहा है। वह अपनी पीड़ा को आपके अतिरिक्त अन्य किसी पर व्यक्त नहीं करेंगे।"

देवव्रत ने मंत्री महोदय को बुलाया और उनसे पूछा, "मंत्रीजी, आप मुझसे पिताजी के विषय में कुछ छिपाने की कृपा न करें। मुझे ठीक-ठीक बतायें कि पिताजी की इस दशा का क्या कारण है? मुझे लग रहा है कि जैसे मैं ही पिताजी की अशान्ति का कारण हूँ।"

युवराज देवव्रत की बात सुनकर मंत्री के नेत्र छलछला आये। वह

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

व्याकुल हो उठे। उन्हें लगा कि राज्य में कोई महान् दुर्घटना घटने वाली है। महाराज शान्तनु की गिरती हुई दशा को देख कर वह मौन भी नहीं रह सकते थे। उन्होंने सम्पूर्ण घटना देवव्रत को सुनाकर कहा, "युवराज ! महाराज के प्राणों की रक्षा रजनीगंधा को प्राप्त किये बिना सम्भव प्रतीत नहीं होती।"

देवव्रत को यह सुनकर हार्दिक खेद हुआ कि उन्हीं को लेकर उनके पिता को इतना कष्ट सहन करना पड़ा। वह मंत्री से बोले, "मंत्रीजी ! आप मुझे तुरन्त निषादराज के पास ले चलें। मैं पिताजी का कष्ट सहन नहीं कर सकता। मैं उनसे प्रार्थना करूँगा कि वह रजनीगंधा को राज-माता स्वरूप पिताजी को अर्पण कर दें।"

"देवव्रत मंत्री को साथ लेकर निषादराज के पास पहुँचे और उससे बोले, 'निषादराज ! अभी दो-चार दिन पूर्व पिताजी यहाँ पधारे थे। उन्होंने आपकी कन्या से विवाह करने का प्रस्ताव आपके समक्ष प्रस्तुत किया था। आपने उससे सहमति प्रकट करते हुए यह चाहा था कि आपकी कन्या का पुत्र पिताजी के पश्चात् राजसिंहासन का अधि-कारी हो।

मुझे इसमें कोई आपत्ति नहीं है। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं आजन्म ब्रह्मचारी रहूँगा। इससे आपकी पुत्री को कभी अपने पुत्रों के राज-पद् के लिये भयभीत होने का कोई कारण नहीं होगा। आप सहर्ष यह विवाह सम्पन्न कर सकते हैं।"

देवव्रत की यह कठोर प्रतिज्ञा सुनकर मंत्री का हृदय विदीर्ण हो गया। निषादराज और उनकी पत्नी देवव्रत के चरणों पर गिर पड़े। वे नितान्त भयभीत थे।

देवव्रत की दृष्टि रजनीगंधा के मुख-मण्डल पर गई तो उन्होंने देखा उसके नेत्रों से अश्रुओं की अविरल धारा बह रही थी। वह बहुत व्याकुल थी।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

देवव्रत का मुख असीम तेज से दमक रहा था। उनके नेत्रों से तेज बरस रहा था। उनकी वाणी में दृढ़ता थी। वह रजनीगंधा के निकट जाकर बोले, "माता ! आपका ज्येष्ठ पुत्र आपको सादर प्रणाम करता है और गंगा-माता के तीर पर घुटने टेक कर प्रतिज्ञा करता है कि वह कभी राजसिंहासन पर बैठने का स्वप्न नहीं देखेगा। आपकी संतान कुरु-वंश के राजसिंहासन की अधिकारिणी होगी।"

देवव्रत की इस भीषण प्रतिज्ञा को सुनकर दिशाऐं गूंज उठीं। माता गंगा की धारा में असीम जल भर आया। गंगा की धारा का कल-कल करता हुआ जल किनारों के बाँध तोड़ कर बह निकला। देवव्रत ने गंगा-माता के जल से एक चुल्लू जल पान करके गंगा-माता की ओर हाथ जोड़कर कहा, "माता ! अपने पुत्र को बल दो कि वह अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ रह सके, वह अपनी प्रतिज्ञा का पालन कर सके।"

सबने आश्चर्यचकित होकर देखा गंगा की धारा के बीच से एक स्त्री निकली और वह धीरे-धीरे किनारे की ओर बढ़ने लगी। उस देवि ने देवव्रत के पास आकर उन्हें अपनी अंक में भर लिया और फिर प्यार से उनका मुख चूमकर बोलीं, 'तुम्हारी प्रतिज्ञा पूर्ण होगी पुत्र ! तुम्हारा तेज अटल रहेगा। तुम्हारा यश विश्वव्यापी होगा।'

यह कहकर वह देवि फिर उसी स्थान पर चली गईं जहाँ से आई थी। वह जैसे-जैसे पानी की धारा में बढ़ती गई वैसे-वैसे गंगा की धारा का प्रवाह कम होकर फिर उसी स्थान पर पहुँच गया, जहाँ वह इस घटना से पूर्व था।

प्रकृति के इस आकस्मिक चमत्कार को देखकर सब लोग दंग रह गये। राजनीगंधा ने आगे बढ़कर देवव्रत को अपनी छाती से लगा लिया। वह अपनी आँखें पोंछकर बोलीं, "बेटा देवव्रत ! तुम्हें प्राप्त कर आज मैं सचमुच माता बन गई, परन्तु मैं सुमाता नहीं कुमाता हूँ,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जिसने अपने ही पुत्र का जीवन नष्ट कर दिया। तुमने इतना भीषण व्रत लेकर मेरे हृदय में जो ज्वाला दहका दी है वह मृत्यु पर्यन्त भी सम्भवतः शान्त न हो सकेगी। तुम्हारी इस भीषण प्रतिज्ञा को हर समय अपने हृदय में जागरूक रखने के लिये मैं तुम्हें अब देवव्रत नहीं 'भीष्म' कहा करूँगी।"

भीष्म ने माता रजनीगंधा के चरण छुए और माता रजनीगंधा ने भीष्म को आशीर्वाद दिया। दोनों के नेत्रों से अविरल स्नेह-जल की धारा बह रही थी।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

महाराज शान्तनु ने रजनीगंधा से विवाह कर लिया। उनकी मानसिक वेदना जाती रही। वह शीघ्र ही स्वस्थ हो गये। राजधानी में फैली हुई निराशा का वातावरण दूर होने लगा। नगर में आनन्द की लहर दौड़ गई। सम्पूर्ण साम्राज्य में हर्ष छा गया। भीष्म को अपने पिता के स्वस्थ होने के समाचार ने असीम शान्ति प्रदान की। उन्हें संतोष हुआ कि उनकी प्रतिज्ञा ने उनके पिताजी के प्राण बचा लिये। इससे बड़ी हर्ष की बात उनके लिये और कुछ नहीं हो सकती थी।

महाराज शान्तनु का उदास पड़ा महल एक बार फिर आनन्द से भर गया। सारा महल जगमगा रहा था। महाराज शान्तनु की सूखी बगिया में फिर से बहार आगई। उन्हें लगा कि जैसे उनकी युवावस्था दोबारा जीवन में मुस्करा उठी। उन्हें अपने हर काम में आनन्द आने लगा। वह अब महल के जिस कोने को भी देखते थे, वह उन्हें आनंद-विभोर दिखाई देता था। उन्हें लगता था जैसे आनंद उनके महल में बिखरा पड़ा था।

राजमाता रजनीगंधा की महँक से सारा राजमहल सुगंधित हो उठा था। उनके रूप से वहाँ का वायुमण्डल खिल गया था। रजनीगंधा की मुस्कानों में महाराज शान्तनु का जीवन एक सलौने बालक के समान खेलने लगा। उनका हृदय आनन्द से पूर्ण हो गया। उनके जीवन की निराशा स्वर्णिम आशा में बदल गई।

एक दिन महाराज शान्तनु रजनीगंधा के मुख पर बड़े ध्यान से देख रहे थे। रजनीगन्धा ने उन्हें इस प्रकार अपनी ओर देखते कई बार देखा था। उसने चाहा भी था कि वह उनके इस प्रकार देखने का कारण ज्ञात करे, परन्तु उसका साहस नहीं हुआ कि वह कोई प्रश्न कर सके।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आज वह अपने आपको न रोक सकी। उसने महाराज शान्तनु से पूछा, "महाराज ! मैंने आपको कई बार इस प्रकार आश्चर्यचकित दृष्टि से अपनी ओर देखते हुए देखा है। मुझे ऐसा लगता है कि सम्भवतः आपके मस्तिष्क में मुझसे पूछने के लिये कोई प्रश्न है और आप उसे पूछने में संकोच कर रहे हैं।"

महाराज शान्तनु रजनीगंधा की बात सुनकर मुस्करा दिये। वह उसकी आँखों में झाँक कर बोले, "रजनीगंधा ! तुम मेरे कितनी निकट आचुकी हो ? मेरे मन के प्रश्नों में भी तुम्हारा प्रवेश हो गया है। मैं सचमुच तुमसे एक प्रश्न करना चाहता हूँ।"

"तो कीजिये महाराज ! उत्तर मिलेगा आपको।" रजनीगंधा इठलाकर बोली। उसके नेत्र महाराज शान्तनु के नेत्रों में उलझे हुए थे।

महाराज शान्तनु बोले, "रजनीगंधा ! तुम्हारे जैसा रूप भगवान ने निषादराज के घर कैसे भेज दिया ?"

यह प्रश्न सुनकर रजनीगंधा मुस्करा दी ! वह हंसकर बोली, 'इसका अर्थ यह है कि आप मेरे विवाह से पूर्व के जीवन से परिचित होना चाहते हैं "तो सुनिये, मैं आपको अपनी पूरी कहानी सुनाती हूँ। परन्तु इतना समझ लीजिये कि सत्य कठोर होता है और मैं झूठ नहीं बोल सकती। आप भावुक व्यक्ति हैं। ऐसा न हो कि कहीं यह सत्य आपके और मेरे जीवन को क्षत-विक्षत कर दे।"

महाराज शान्तनु बोले, "तुम उसकी चिन्ता न करो रजनीगंधा ! मुझे अप्रिय-से-अप्रिय सत्य भी मधुर-से-मधुर असत्य से कहीं अधिक मीठा लगेगा।"

यह सुनकर रजनीगंधा बोली, "तो हृदय पर पत्थर रख कर मेरी कथा सुनिये। सत्य यह है कि मैं अपनी पूर्व कथा से नितान्त अनभिज्ञ थी, परन्तु एक दिन मैंने अपने माता-पिता को अपने विषय में कुछ बातें

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

करते सुन लिया। उससे जो थोड़ा-बहुत जान पाई हूँ, वह आपके समक्ष प्रस्तुत करती हूँ।

"वे कह रहे थे कि उन्होंने मुझे मछली के पेट से निकाला था। हो सकता है कोई मुझे जल में फेंक गया हो और मैं मछलियों के साथ पिता जी के जाल में फँसकर पानी से बाहर निकाल आई।

"उसके पश्चात् इन्हीं के पास रहती रही। मुझे अपने वास्तविक माता-पिता का कोई ज्ञान नहीं है। मैं इन्हें ही अपने माता-पिता मानती हूँ, क्योंकि मेरा पालन-पोषण इन्हीं के द्वारा हुआ है।

"धीरे-धीरे मैं बड़ी होने लगी। उस समय मैं इतनी सुन्दर नहीं थी जैसी आप इस समय देख रहे हैं। मैं कुष्ठ-रोग से पीड़ित थी। मेरे बदन से मछली की दुर्गन्ध आती थी। उस समय मेरे ये माता-पिता भी मुझे मत्स्यगंधा कहकर पुकारते थे। इस नाम से मुझे लज्जा आती थी, परन्तु करती क्या? मैं उस समय वास्तव में थी ही मत्स्सगंधा। मेरे बदन से इतनी दुर्गन्ध आती थी कि मेरे पास कोई खड़ा नहीं हो सकता था। इस लिये मेरे इन माता-पिता ने मेरे रहने के लिये पृथक् झोंपड़ी डाल दी थी। मैं उसमें अकेली रहा करती थी।

"एक दिन मैं नौका खेर ही थी। ठीक उसी प्रकार जैसे उस दिन खे रही थी जब आपके दर्शन हुए। मुझे गंगा-किनारे मुनि पराशरजी खड़े दिखाई दिये। मैं नौका लेकर उनके पास गई और वह मेरी नौका में आकर बैठ गये।

"नौका में बैठकर उन्हें मेरे बदन से दुर्गन्ध आई तो उन्होंने मेरी ओर देखा और सारा वृतान्त सुना। उन्होंने मुझे गंगा के बीच बने एक द्वीप की ओर नौका खेकर ले चलने को कहा।

मैं नौका खेकर उस द्वीप पर ले गई। वहाँ पहुँच कर मुनि ने मुझे एक औषधि दी। उसे खाते ही मेरे बदन से रजनीगंधा की सुगन्धि फूट पड़ी और मैं इतनी सुन्दर दिखने लगी, जितनी आप मुझे इस

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

समय देख रहे हैं। मेरे रूप में निखार आगया। इस परिवर्तन को देख-कर मैं चकित रह गई।

मेरा यह रूप देखकर पराशरजी मुझ पर मोहित हो गये। उन्होंने मुझे अपनी बाहुओं में आबद्ध कर लिया। मैं उन्हें मना न कर सकी। उन्होंने मुझ पर बहुत बड़ा उपकार किया था। उन्होंने मुझे मत्स्यगंधा से रजनीगंधा बनाया था।

"फलस्वरूप मेरे गर्भ से एक पुत्र का जन्म हुआ। उसे उन्होंने मेरे साथ नहीं आने दिया, अपने ही पास रख लिया। वह नहीं चाहते थे कि समाज मेरे ऊपर कोई दोषारोपण करे।"

कहती-कहती रजनीगंधा मौन हो गई।

महाराज शान्तनु बोले, "तो इसी लिये तुम्हारा नाम रजनीगंधा है। तुम्हारी यह कथा सुनकर मेरे मन की शंका दूर हो गई। तुम्हारे सत्य-कथन से प्रभावित होकर, मैं तुम्हारा नाम सत्यवती रखता हूँ। आज से मैं तुम्हें सत्यवती कहूँगा।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

५

सत्यवती के गर्भ से चित्रांगद और विचित्रवीर्य, दो पुत्रों ने जन्म लिया। इन दोनों की अस्त्र-शस्त्र की शिक्षा-दीक्षा का भार भीष्म ने अपने ऊपर ग्रहण किया। माता सत्यवती बोलीं, "बेटा भीष्म ! तुम इनके बड़े भाई और गुरु हो। इनका मार्ग-दर्शन करना तुम्हारा ही काम है।"

भीष्म बोले, "माता सत्यवती ! आपने जो दायित्व मुझे सौंपा है, मैं उसे पूरा करने का भरसक प्रयास करूँगा।"

महाराज शान्तनु को माता सत्यवती और भीष्म की बातें सुनकर हार्दिक प्रसन्नता हुई। माता सत्यवती का भीष्म के प्रति स्नेह और भीष्म का अपनी माता के प्रति आदर-भाव उनके जीवन का सबसे बड़ा सन्तोष था।

महाराज शान्तनु के राज्य में मंगल छाया हुआ था। प्रतापी भीष्म का यश चारों ओर फैल गया था। किसी की यह सामर्थ्य नहीं थी कि कोई कुरु-राज्य की ओर कुदृष्टि से देख सके। समस्त भारत के वीर प्रतापी भीष्म का लोहा मानने लगे थे।

राज्य को पूर्ण वैभव और यश से युक्त छोड़कर एक दिन महाराज शान्तनु इस असार संसार से विदा हुए। माता सत्यवती का सौभाग्य छिन गया, परन्तु उनकी सम्पत्ति तीन पराक्रमी पुत्रों के रूप में उनके पास विद्यमान थी। होनहार के प्राबल्य पर उन्होंने सन्तोष किया।

माता सत्यवती की इच्छा से ज्येष्ठ पुत्र चित्रांगद को सिंहासनारूढ़ कया गया। सम्पूर्ण राज्य में नवोल्लास की वंसी बजी। राजा शान्तनु की मृत्यु का शोक धीरे-धीरे कम होता गया और साम्राज्य की नवोन्नति का यश चारों ओर फैलने लगा।

चित्रांगद राज सिंहासन पर बैठे, परन्तु राज्य की बागडोर माता

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सत्यवती ने भीष्म के ही हाथों में सौंपी। उनकी आज्ञा के बिना राज्य में पत्ता भी नहीं हिल सकता था।

बहुत से छोटे-बड़े राजाओं की, जो इस आशा में थे कि महाराज शान्तनु की मृत्यु के पश्चात् गृह-युद्ध आरम्भ हो जायेगा, आशाओं पर तुषारपात हो गया। वे सब वहाँ आकर सिर झुकाने लगे। साम्राज्य की शक्ति पहिले से कहीं अधिक सुदृढ़ होगई।

कुरु-राज्य की यह ख्याति गंधर्वराज से न देखी गई। उनका हृदय द्वेष से भर भर। वह अगणित सेना लेकर हस्तिनापुर पर आक्रमण करने के लिये चल पड़ा। गंधर्वराज के आक्रमण को विफल करने के लिये कुरु-वंश के प्रतापी राजा चित्रांगद स्वयं सेना लेकर गये। फलस्वरूप आक्रमण तो विफल हो गया, परन्तु युद्ध में महाराज चित्रांगद की मृत्यु हो गई।

विजयी सेना ने 'बिना राजा के' राजधानी में आकर जब यह समाचार दिया तो माता सत्यवती मूर्च्छित हो गईं। सम्पूर्ण राज्य में शोक छा गया। आशा और निराशा ने साथ-साथ हस्तिनापुर में प्रवेश किया। भीष्म को यह समाचार मिला तो वह माता सत्यवती के पास गये और उन्हें शोक-सागर से उबारा। उन्हें संसार की असारता बताकर धैर्य बँधाया और कर्म की प्रेरणा दी।

चित्रांगद की मृत्यु के पश्चात् राजकुमार विचित्रवीर्य को सिंहासनारूढ़ किया गया। राज्य-कार्य ज्यों-का-त्यों संचालित होता रहा, परन्तु चित्रांगद की मृत्यु से भीष्म को भारी ठेस लगी। उन्होंने राज्य-संचालन के लिये जो अपनी दो भुजाएँ तैयार की थीं, उनमें से दाहिनी भुजा को गंधर्वराज ने काट कर फेंक दिया। गंधर्वराज ने उन्हें अशक्त कर दिया।

इसी बीच भीष्म को सूचना मिली कि काशी-नरेश के यहाँ उनकी तीन लड़कियों का स्वयम्बर है। यह सूचना प्राप्त कर वह विचित्रवीर्य

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तथा अपने कुछ सामंतों को साथ लेकर काशी पहुँच गये।

काशी नगरी की अद्वितीय शोभा को देखकर भीष्म चकित रह गये। सम्पूर्ण नगरी को स्वयम्वर के लिये सजाया गया था। सड़कों के दोनों किनारों पर सुगंधियुक्त जल के फव्वारे छूट रहे थे। सड़कें तोरण और पताकाओं से सुसज्जित थीं। राज्यकर्मचारी अतिथियों का स्वागत कर रहे थे और उन्हें मण्डप का मार्ग दिखा रहे थे। राजाओं के निवास का विशेष प्रबन्ध था।

भीष्म अपने भाई विचित्रवीर्य के साथ मण्डप में बने एक सिंहासन पर जा बैठे और अपने सामंतों को उन्होंने अपने पास आसनों पर बिठा लिया। वे सब मंडप की शोभा देख रहे थे। उस शोभा को देखकर उनका हृदय आनन्द से भर गया था। उन्होंने इधर-उधर दृष्टि पसार कर सभा में उपस्थित राजाओं की स्थिति देखी और उनकी शक्ति का अनुमान लगाया। भीष्म ने उपस्थित राजाओं के पराक्रम को अपने भुजदण्डों की कसौटी पर कसा और सिर ऊँचा करके हृदय में उभार लेकर सिंहासन की पीठ से कमर लगाकर बैठ गये।

सभा का कार्य-क्रम आरम्भ हुआ। गायिकाओं ने मंगल-गान गाने आरम्भ किये। उनका मधुर-स्वर मण्डप के वातावरण में भर गया। अनेकों प्रकार के वाद्य-यंत्रों की कर्णप्रिय ध्वनि मुखरित हो उठी। मृदंग की ताल पर वाद्यों का संगीत बह चला। उपस्थित राजाओं के मन उमंग और आशा से भर गये। राजकुमारियों के दर्शन करने की तीव्र अभिलाषा सबके मन में प्रबल हो उठी। सभी की दृष्टि उस मार्ग पर जा टिकी जिधर से राजकन्याएँ अपने हाथों में पुष्पमालाएं लिये आने वाली थीं।

कुछ देर पश्चात् तीनों राजकुमारियों ने अपने हाथों में वरमालाएं लिये अपनी सखियों के साथ स्वयंम्वर के मण्डप में प्रवेश किया। तीनों के मुख अकलंक चन्द्रमाओं को लजा रहे थे। नेत्र उनके रूप पर पड़ कर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अपलक रह जाते थे। उनकी शोभा नयनाभिराम थी।

सभा में बैठे सब राजाओं की दृष्टि उनके चन्द्रमुखों पर स्थिर हो-गईं। उनके भुज-दण्ड उन्हें अपने-अपने बाहु-पाश में जकड़ने के लिये व्याकुल हो उठे। उनके मर्मस्थलों पर तीन सुकुमारियों ने एक साथ आघात किया।

तीनों राजकुमारियों ने सभा भवन में प्रवेश किया और वे जिस-जिस सिंहासन पर बैठे राजा के निकट पहुँचीं उन राजाओं के बंदी-जनों ने उनका यश-गान किया। वे सभा में उपस्थित सब राजाओं के सिंहासनों के पास से होती हुई भीष्म के पास आगईं।

अपने सिंहासन की परिधि में राज-कन्याओं के आने पर भीष्म खड़े हो कर बोले, "उपस्थित सज्जनो! ये तीनों राजकुमारियाँ आप सब के सिंहासनों की सीमाओं को लाँघती हुई मेरे सिंहासन की सीमा में प्रवेश कर चुकी हैं। मेरा नाम 'भीष्म' है और मैंने आजीवन ब्रह्मचारी रहने का व्रत लिया है। मुझे अपने छोटे भाई विचित्रवीर्य का विवाह करना है। इन तीनों राजकुमारियों को मैं अपने भाई के उपयुक्त समझता हूँ। मैं इन तीनों राजकुमारियों को आज्ञा देता हूँ कि ये अपनी वर-मालाएँ विचित्रवीर्य के गले में डाल दें।"

भीष्म की गम्भीर वाणी सुनकर सभा में आतंक छा गया। तीनों राजकुमारियाँ किंकर्त्तव्यविमूढ़-सी भयभीत होकर वहीं ठिठक गईं।

भीष्म ने तीनों राजकुमारियों को उठाकर अपने रथ पर बिठा लिया। वह आतंकित सभा की ओर मुँह करके बोले, "आप लोगों में से यदि कोई इसे मेरा अन्याय समझ रहा हो तो वह अपने बाहु-बल की परीक्षा ले सकता है। मैं इसके लिये उद्यत हूँ।"

भीष्म की चुनौती को सुनकर सब उपस्थित राजे भीष्म पर टूट पड़े। घमासान युद्ध हुआ, परन्तु अन्त में विजय भीष्म की ही हुई। सब राजे अपना सा मुँह लेकर अपने राज्यों को लौट गये। भीष्म से

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उन कन्याओं को छीनने की शक्ति किसी राजा में नहीं थी।

भीष्म काशी-नरेश की तीनों कन्याओं को लेकर अपनी राजधानी में पहुँचे और माता सत्यवती को सादर प्रणाम करके स्वयम्बर की कथा सुनाई तो उनके आनन्द का पारावार न रहा।

माता सत्यवती ने काशी-नरेश की तीनों कन्याओं को अपनी छाती से लगा लिया और विचित्रवीर्य के साथ उनका विवाह रचाने के लिये शुभ मुहूर्त्त की प्रतीक्षा करने लगीं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भीष्म ने अपने राज्य के विद्वान् पण्डित को बुलवाकर विचित्रवीर्य के विवाह का शुभ मूहूर्त निकलवाया और विवाह की तैयारियाँ धूम-धाम से होने लगीं। हस्तिनापुर में आनन्द की लहर दौड़ गई।

विवाह से एक दिन पूर्व काशी-नरेश की बड़ी कन्या अम्बा ने भीष्म के समक्ष हाथ जोड़कर प्रार्थना की, "महाबाहो भीष्म ! आप अपनी वीरता के पराक्रम से हम तीनों बहिनों को ले आये, इसकी मैं हृदय से सराहना करती हूँ। आपके बाहु-बल के समक्ष खड़ा रहने की स्वयम्वर में उपस्थित राजाओं के अन्दर किसी में सामर्थ्य नहीं थी। आपके अनुज की वधू बनने में मैं गौरव अनुभव करती, परन्तु मैं स्वयम्वर से पूर्व राजा शाल्व को वचन दे चुकी थी कि मैं स्वयम्बर में उन्हें वरूँगी। आप जानते हैं कि आर्यकन्या केवल एक ही व्यक्ति को वर सकती है।

राजा शाल्व मुझसे विवाह करने की स्वीकृति दे चुके थे। अब इस स्थिति में आप जो उचित समझें करें। नारी-धर्म के अनुसार शाल्व मेरे पति हो चुके।"

अम्बा की बात सुनकर भीष्म दुःखी होकर बोले, "अम्बा ! तुम्हें यहाँ लाने में हमने जो बल-प्रयोग किया, उसका हमें हार्दिक खेद है। यह रहस्य यदि तुमने स्वयम्वर में ही हम पर प्रकट कर दिया होता तो हम तुम्हें अपने साथ नहीं लाते और तुम्हें वहीं राजा शाल्व के संरक्षण में सौंप देते।

तुम पूर्ण रूप से स्वतन्त्र हो। राजा शाल्व के यहाँ जाना चाहो तो तुम्हारी वहाँ जाने की व्यवस्था कर दी जाये।"

अम्बा राजा शाल्व के प्रेम में व्याकुल थी। भीष्म की न्यायसंगत

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बात ने उसके दग्ध हृदय पर शीतल जल की वर्षा करके उसे शान्त कर दिया। उसका हृदय भीष्म के प्रति कृतज्ञता से भर गया।

भीष्म ने अम्बा के जाने की उचित व्यवस्था कर दी और कई दास-दासियों के साथ अम्बा को शाल्व के यहाँ जाने के लिये रथ में बिठा दिया। उसकी दूसरी दो बहिनों का विवाह विचित्रवीर्य से शुभ मुहूर्त्त पर सम्पन्न हो गया।

अम्बा राजा शाल्व के यहाँ गई और अपना प्रेम प्रदर्शित करने का प्रयास किया, परंतु राजा शाल्व ने उसे अस्वीकार कर दिया। उसने स्पष्ट कह दिया, "किसी अन्य व्यक्ति से स्वयम्बर में विजित कन्या के साथ मैं विवाह नहीं कर सकता।"

राजा शाल्व का यह उत्तर सुनकर अम्बा पछाड़ खाकर गिर पड़ी। उसका हृदय विदीर्ण हो गया। उसकी आशा और कल्पना अश्रुओं में परिणत हो गईं। वह अचेत हो गई, परन्तु राजा शाल्व पर उसका कोई प्रभाव न हुआ। शाल्व द्रवित न हुआ।

अम्बा ने अपने आभूषण और सम्पूर्ण शृंगार उतार कर राजा शाल्व के चरणों पर फेंक दिया और स्वयं विक्षिप्तावस्था में जंगल की ओर निकल गई। उसका जीवन अंधकारपूर्ण हो गया।

अम्बा आधारविहीन रह गई। जिस घर से वह विदा होकर आ चुकी थी, वहाँ अब क्या मुँह लेकर जाती। वह आदर्श, जिसका पालन करने के लिये वह विचित्रवीर्य की वधू का पद त्याग कर आई थी, खंड-खंड हो गया। शाल्व ने उसे अपने पैरों के नीचे कुचल दिया। उसका जीवन विशृंखलित हो गया।

अम्बा के जीवन का अबाध गति से बहने वाला प्रवाह अवरुद्ध हो गया था। उसके जीवन की दिशा अन्धकारपूर्ण हो गई। वह पगली-सी हो गई और उसी पागलपन में वह कभी अपने पिता को, कभी शाल्व को और कभी भीष्म को अपने पतन का कारण समझती हुई

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जंगल में इधर-उधर भटकने लगी। वह निश्चय नहीं कर पा रही थी कि उसके विनाश का कारण कौन था।

अम्बा का मन जब कभी कुछ शान्त होता था तो वह सोचती थी कि वास्तव में उसके पतन का कारण कौन है? बहुत विचार करने के पश्चात् उसकी बुद्धि ने कहा, भीष्म उसके विनाश का कारण है। उसी ने उसका जीवन नष्ट किया है। वही उसका अपराधी है। दण्ड उसी को मिलना चाहिये, उसका हृदय भीष्म के प्रति क्रोध और प्रतिशोध की भावना से भर उठा। वह भीष्म से बदला लेने के लिये कटिबद्ध होगई।

जंगल में घूमती-घूमती अम्बा एक दिन एक तपोवन में पहुँची। संयोग से वहाँ अम्बा की अपने नाना होत्रवाहन से भेंट हुई। अम्बा ने अपनी कथा उन्हें सुनाई और भीष्म को अपराधी ठहराकर उनसे बदला लेने की इच्छा प्रकट की। वह भीष्म से प्रतिशोध लेना चाहती थी।

तपस्वी होत्रवाहन को अम्बा की करुण कथा सुनकर हार्दिक कष्ट हुआ। उन्हें भीष्म पर बहुत क्रोध आया, परन्तु भीष्म की शक्ति से वह अपरिचित नहीं थे। वह गम्भीर वाणी में बोले, "बेटी अम्बा! महाबली भीष्म से टक्कर लेना सरल कार्य नहीं है, परन्तु मैं तुम्हें भीष्म के गुरु परशुराम के पास ले चलता हूँ। वह मेरे मित्र हैं। मुझे विश्वास है कि वह तुम्हारी अवश्य सहायता करेंगे। उनके अतिरिक्त अन्य कोई व्यक्ति भीष्म से टक्कर नहीं ले सकता।"

तपस्वी होत्रवाहन अम्बा को अपने साथ लेकर परशुरामजी के आश्रम पर गये। परशुरामजी ने तपस्वी होत्रवाहन का मित्रोचित सत्कार किया और पधारने का कारण पूछा।

अम्बा परशुरामजी के चरणों पर गिर पड़ी और हृदयविदारक वाणी में अपनी करुण-कथा सुनाई। उसे सुनकर उनका हृदय

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भी द्रवित हो गया। अम्बा के नष्टप्राय: जीवन के प्रति वह सकरुण हो उठे।

परशुरामजी ने पूछा, "अब तुम क्या चाहती हो?"

अम्बा के हृदय में भीष्म के प्रति अपार क्रोध था। उसकी दृष्टि में वही उसके विनाश का कारण थे। उन्हीं से वह अपने अपमान का बदला लेना चाहती थी। वह बोली, "महाराज! भीष्म ने मुझे स्वयम्वर से उठा लाकर मेरा जीवन नष्ट किया है। मेरे हृदय में भीष्म से प्रतिशोध लेने की ज्वाला धधक रही है। मैं उसे शान्त करना चाहती हूँ। आप मेरी सहायता करें।"

परशुरामजी बोले, "भीष्म से यह अपराध अनभिज्ञता में हुआ है अम्बा! इसलिये न्याय से वह दोषी नहीं ठहरता। तुम यदि चाहो तो मैं शाल्व से तुम्हारा विवाह करा दूँ। वह मेरी बात नहीं टाल सकता। मेरी बात वह अवश्य मान लेगा।"

अम्बा ने अब शाल्व से विवाह करना अपना अपमान समझा। वह बोली, "जो व्यक्ति अपने वचन को भूल गया, उस दुष्ट के साथ अम्बा विवाह नहीं कर सकती। मैं भीष्म को पराजित करने का दृढ़ संकल्प कर चुकी हूँ। आप इस कार्य में मेरी सहायता करें। मेरा जीवन भीष्म ने नष्ट किया है।"

परशुराम और होत्रवाहन ने अम्बा को बहुत समझाया, परन्तु वह अपनी हठ पर अडिग रही। अन्त में उसकी कातरता पर द्रवित होकर परशुरामजी उदार भाव से अम्बा को साथ लेकर कुरु-दरबार में पहुँचे।

भीष्म ने अपने गुरु परशुरामजी के चरण छूकर उन्हें सादर प्रणाम किया, उन्हें आदरपूर्वक आसन पर बिठाया और समुचित सम्मान के पश्चात् पधारने का कारण ज्ञात किया।

परशुरामजी ने अम्बा की करुण कहानी भीष्म को सुनाई और

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अन्त में बोले, "भीष्म ! चाहे अनभिज्ञता में ही सही, परन्तु सत्य यही है कि अम्बा का जीवन नष्ट होने का कारण तुम हो। इसलिये मैं तुम्हीं से कहता हूँ कि तुम अम्बा के साथ विवाह करके अम्बा का जीवन सुखमय बनाओ। इसके अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं है।"

तब तक माता सत्यवती भी वहाँ आ पहुँचीं। इस भयंकर स्थिति को देखकर वह सिहर उठीं। गुरु परशुराम के क्रोधी स्वभाव से वह पूर्व परिचित थीं और अपने दृढ़प्रतिज्ञ पुत्र भीष्म के स्वभाव का भी उन्हें ज्ञान था। अम्बा का विनष्ट जीवन भी उनके समक्ष था। एक बार उनके मन में आया कि वह भीष्म से अपने गुरु का आदेश पालन करने को कहें, परन्तु तभी उन्होंने देखा कि भीष्म के नेत्रों के डोरे लाल हो गये थे। उनकी भुजाएँ फड़कने लगीं। माता सत्यवती के मस्तिष्क में उठने वाले विचार और हृदय में बहने वाली भावना, जैसे अस्थिर हो गई। वह प्रस्तर-पुतलिका के समान खड़ी रहीं। उनके मुख से एक शब्द भी न निकला। वह मौन खड़ी भवितव्यता को देखती रहीं।

भीष्म ने अपने अन्दर के क्रोध को दबा कर सरल वाणी में कहा, "गुरुदेव ! आपकी आज्ञा का पालन करने में मुझे किंचित मात्र भी आपत्ति न होती यदि मैंने आजन्म ब्रह्मचारी रहने की प्रतिज्ञा न की होती। मैं अम्बा को गंगा-जल के समान निर्मल और पवित्र मानता हूँ, परन्तु असमर्थ हूँ क्योंकि मैं इससे विवाह नहीं कर सकूँगा। यह चाहे तो विचित्रवीर्य के साथ इसका विवाह हो सकता है।"

गुरु परशुराम अपनी आज्ञा का न मानना सहन नहीं कर सकते थे। वह क्रोधित होकर बोले, "भीष्म ! तुम अपने गुरु का अपमान कर रहे हो। तुम मेरी आज्ञा का उल्लंघन करोगे तो तुम्हें मुझसे युद्ध करना होगा। क्या तुम उद्यत हो मुझसे युद्ध करने के लिये ?"

युद्ध की बात सुनकर माता सत्यवती का बदन थर-थर काँप उठा। एक भयानक आशंका ने उनके हृदय को मथ दिया। उन्हें पसीना आ

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

गया। उनका सिर चकरा गया। वह हताश-सी होकर भीष्म की ओर देख रही थीं।

अम्बा के चेहरे पर प्रसन्नता की रेखाएँ दौड़ गईं। उसका बदन रोमांचित हो उठा। उसने मन में कहा, 'भीष्म! केवल तुम्हीं एक अकेले बली नहीं हो भारत-भूमि पर। तुम हमें बलपूर्वक अपने यहाँ उठा लाये। अब तुम्हें निर्बल होकर मुझसे विवाह करना होगा।' अम्बा के वक्षःस्थल में उभार आ गया। उसके चेहरे पर मुस्कान खिल उठी।

भीष्म इस गम्भीर स्थिति को टालना चाहते थे, परन्तु अब टालने से काम चलने वाला नहीं था। उन्होंने अपनी माता के चिंतित चेहरे की ओर देखा, फिर देखे अम्बा के मुस्कराकर अपने सीने पर व्यंग्यबाण बरसाने वाले कटाक्ष देखे।

भीष्म मुस्कराकर सरल वाणी में बोले, "गुरुदेव! आप की दूसरी आज्ञा का पालन करने में मुझे कोई आपत्ति नहीं है, परन्तु मैं चाहता हूँ कि आप क्रोध को त्याग कर न्याय का पक्ष लें। अम्बा शाल्व से प्रेम करती थी, यह रहस्य इसने यहाँ आकर बताया। यदि यह वहीं बता देती तो मैं इसे अपने साथ न लाता। यहाँ आने पर जब इसने मुझे बताया तो मैंने तुरन्त सुरक्षा के साथ इसकी शाल्व के पास जाने की व्यवस्था कर दी। इसमें मैंने क्या अपराध किया, मेरी समझ में नहीं आया। मैं चाहता हूँ कि आप न्याय को ध्यान में रख-कर आज्ञा करें। आप की न्यायपूर्ण आज्ञा का पालन करने में मुझे कोई आपत्ति न होगी।"

गुरु परशुराम क्रोध के आवेग में मूल बात को भूल गये। उन्हें केवल इतना मात्र स्मरण रहा कि भीष्म ने उनकी आज्ञा का उल्लंघन किया है। वह क्रुद्ध होकर बोले, "मैं कुछ नहीं सुनना चाहता भीष्म! यदि तुम मेरी आज्ञा का पालन करने को उद्यत नहीं हो तो युद्ध के लिये उद्यत हो जाओ। तुम्हें मेरे साथ युद्ध करना होगा।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

युद्ध के अतिरिक्त अब अन्य कोई चारा नहीं रह गया था। भीष्म अपने गुरु से युद्ध करने को मैदान में आ गये। नगरनिवासी दर्शक-रूप में एकत्रित हो गये। कुरु-राजधानी में आतंक के बादल छा गये। गुरु परशुराम से युद्ध करना सरल कार्य नहीं था।

बालब्रह्मचारी भीष्म और गुरु परशुराम का युद्ध आरम्भ हो गया। गुरु और शिष्य दोनों अपने पराक्रम दिखाने लगे। राजमाता सत्यवती अपने पुत्र भीष्म के पराक्रम को देखकर चकित रह गईं। शस्त्रास्त्रों के युद्ध के पश्चात् मल्ल-युद्ध आरम्भ हुआ तो भीष्म ने गुरु परशुरामजी को अपनी दोनों बाहुओं के बीच इतनी कड़ाई के साथ जकड़ लिया कि वह उनकी भुजाओं के बंधन को न खोल सके। महाबली भीष्म अपने गुरु परशुराम को भुजाओं में ही बाँधे वहाँ से उठाकर आचार्य के आसन के निकट ले गये और उन्हें सम्मानपूर्वक उस पर बिठा दिया। उन्हें आसन पर बिठाकर भीष्म ने उनकी चरण-रज अपने मस्तक पर लगाई।

गुरु परशुराम का क्रोध शांत हो गया। उन्होंने भीष्म को 'विजेता' कहकर आशीर्वाद दिया और अम्बा से बोले, "बेटी ! मैं इससे अधिक और तुम्हारी कोई सहायता नहीं कर सकता। अब यदि तुम्हें भीष्म से बदला ही लेना है तो तुम किसी अन्य व्यक्ति की खोज करो।'

भीष्म अम्बा से बोले, "अम्बा ! मेरा कोई अपराध नहीं है। यदि मेरा अपराध होता तो मैं सहर्ष उसे स्वीकार कर अपने को दोषी घोषित करता और दण्ड सहन करने को उद्यत होता। तुम अब भी चाहो तो विचित्रवीर्य से विवाह कर अपनी बहिनों के साथ आनन्दपूर्वक रह सकती हो।

तुम्हारे यौवन के मद ने तुम्हारी विवेक-बुद्धि को नष्ट कर दिया है। मिथ्या अभिमान तुम्हारे रक्त में प्रवाहित हो चुका है। गुरुदेव शाल्व से भी तुम्हारा विवाह करा सकते हैं। तुम्हें जो मार्ग सुखकर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रतीत हो, ग्रहण कर लो। यही तुम्हारे हित में है। व्यर्थ क्रोधाग्नि में जलकर अपना जीवन नष्ट न करो।"

अम्बा पगली-सी हो गई थी। उसने विचित्र दृष्टि से भीष्म की ओर देखा। उसके हृदय में प्रचण्ड ज्वाला जल रही थी। वह क्रोधपूर्ण स्वर में बोली, "भीष्म ! तुमने अपनी शक्ति के मद में मेरा जीवन नष्ट किया है, अपने गुरु परशुराम की आज्ञा की अवज्ञा की है और अपने गुरु से युद्ध किया है। इन तीनों कृत्यों पर दृष्टि डालकर देखो, तुम कितने बड़े दोषी हो। तुम्हें अपने इन अपराधों का दण्ड भुगतना होगा।"

ब्रह्मचारी भीष्म को अम्बा का जीवन नष्ट होने का हार्दिक खेद था। उनका हृदय उद्विग्न था। वह अपने को उसका कारण भी मानते थे, परन्तु इस कठोर सत्य को भी वह नहीं भुला सकते थे कि वह सब उनसे अनभिज्ञता में हुआ था। उनका उद्देश्य कभी भी उसका जीवन नष्ट करना नहीं था।

उनकी दृष्टि में वास्तविक दोष उनका नहीं था। दोष उसके पिता का था। अम्बा का शाल्व से प्रेम होने पर उसके पिता काशी नरेश को उसे स्वयंवर में नहीं लाना चाहिये था। अम्बा को स्वयं भी स्वयम्वर में नहीं आना चाहिये था। उसने स्वयम्वर में आकर अन्य नरेशों को धोखा दिया।

गुरु परशुराम ने अपने क्रोधावेश में उनकी प्रतिज्ञा को चुनौती दी। यदि गुरु परशुराम अनभिज्ञता में ऐसा कर बैठते तो भीष्म को कोई अन्य मार्ग ग्रहण करना पड़ता, परन्तु जब गुरुदेव जान-बूझकर अपने क्रोध की भट्टी में अपने शिष्य के व्यक्तित्व को झोंक देने पर उद्यत होगये और उसे युद्ध की चुनौती दे दी तो वह युद्ध के अतिरिक्त और कर ही क्या सकते थे ? उन्हें विवश होकर युद्ध करना पड़ा।

ब्रह्मचारी भीष्म का उद्विग्न मन, यह विचारकर, शांत हो गया।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वह गम्भीर वाणी में बोले, "अम्बा ! तुम्हारा छल स्वयं तुम्हारे पतन का कारण बना। तुमने अपना पतन अपने हाथों से किया है।"

"मेरा छल !" आश्चर्यचकित होकर अम्बा ने भीष्म की ओर देखा।

"हाँ तुम्हारा छल ! शाल्व को प्रेम करने के पश्चात् तुम स्वयम्वर में आईं इसका क्या अर्थ था ? यही ना कि तुमने स्वयं एक छलना बनकर स्वयम्वर में प्रवेश किया। जब तुम अपने किसी इष्टदेव की मूर्ति को अपने हृदय-मन्दिर में स्थापित कर चुकी थीं तो क्यों स्वयम्वर में उपस्थित नरेशों के ऊपर अपनी रूप-मोहिनी डालकर तुमने उन्हें छलने का प्रयास किया ? तुमने उन्हें धोखा क्यों दिया ?

"उत्तर दो अम्बा !" भीष्म बोले।

अम्बा मौन रही। वह ब्रह्मचारी भीष्म के इस प्रश्न पर निरुत्तर थी।

ब्रह्मचारी भीष्म फिर गम्भीर वाणी में बोले, "अपने खंडित प्रेम-प्रमाद में तुमने अपनी विवेक-बुद्धि नष्ट कर दी है। तुमने गुरु परशुराम पर भी अपना छल-रूप ही प्रकट करके उन्हें प्रभावित किया और ऐसी स्थिति पैदा कर दी कि गुरु और शिष्य में युद्ध छिड़ गया। परन्तु अब गुरुजी का क्रोध शांत हो जाने पर विवेक-बुद्धि लौट आई है। गुरु परशु-रामजी ने अपने शिष्य को स्नेहपूर्वक अपनी छाती से लगा लिया है। मेरा अपराध गुरुदेव क्षमा कर देंगे।

"तुम्हारा छल का बंधन मैंने काट दिया है। अब वह अपना प्रभाव किसी पर नहीं डाल सकेगा।

"ब्रह्मचारी भीष्म पर तुम्हारा यह छल कभी विजयी नहीं होगा।"

भीष्म की गम्भीर वाणी सुनकर अम्बा विक्षिप्त-सी हो उठी। वह उसी विक्षिप्तावस्था में वहाँ से चली गई। इतना अपमान सहन करके वहाँ रुकना उसके लिये सम्भव नहीं था।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

विचित्रवीर्य का विवाह काशी-नरेश की दो कन्याओं, अम्बिका और अम्बालिका से विधिवत् सम्पन्न हो गया था। ब्रह्मचारी भीष्म ने विवाह सम्पन्न कराया।

विवाह के पश्चात् विचित्रवीर्य भोग-विलास में इतना लिप्त हुआ, कि उसने राज-सभा में आना ही बन्द कर दिया। भीष्म ने उन्हें अनेकों बार चेतावनी दी, उनके गिरते हुए स्वास्थ्य की ओर उनका ध्यान आकृष्ट किया, परन्तु विचित्रवीर्य पर उसका कोई प्रभाव न हुआ, वह दिन-प्रतिदिन भोग-विलास के सागर में गहरी डुबकियाँ लगाता रहा। फलस्वरूप उसका स्वास्थ्य गिरता ही गया।

माता सत्यवती ने भी विचित्रवीर्य को समझाने का प्रयास किया, परन्तु उस पर उनका भी कोई प्रभाव न हुआ। वह रात-दिन मदिरा-पान करता और भोग-विलास में लिप्त रहता।

विचित्रवीर्य का स्वास्थ्य बराबर गिरता जा रहा था। राजवैद्य ने उसकी दशा देखकर सूचना दी कि यदि उन्होंने अब अपने विलासी जीवन का परित्याग करके संयम से काम नहीं लिया तो निश्चित रूप से क्षय-रोग के ग्रास हो जायेंगे।

परिणाम वही हुआ। विचित्रवीर्य अपने विलासी जीवन का परित्याग न कर सके और क्षय-रोग से ग्रस्त होकर एक दिन संसार से विदा हो गये। उनकी जीवन-लीला समाप्त हो गई।

इस समाचार से राजधानी में शोक छा गया। राजमाता सत्यवती के शोक का पारावार न रहा। उनके दोनों पुत्र उनकी आँखों के समक्ष मृत्यु को प्राप्त हुए। इस कष्ट ने उन्हें संज्ञाविहीन कर दिया। उनका भविष्य अंधकारपूर्ण हो गया।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

माता सत्यवती की यह दशा देखकर ब्रह्मचारी भीष्म का हृदय विदीर्ण हो उठा। उन्होंने माता सत्यवती को सांत्वना दी, परन्तु उनके हृदय को शांति प्राप्त न हो सकी। उनके समक्ष कुरु-वंश का विनाश अपना मुख बाये खड़ा था। इस विनाश का कारण वह अपने-आपको समझ रही थीं। उन्हीं के कारण युवराज देवव्रत को इतनी भीषण प्रतिज्ञा ग्रहण कर, ब्रह्मचारी भीष्म बनना पड़ा था। कुरु-वंश की वंश-बेल को सूखती देखकर उनका हृदय फटा जा रहा था।

माता सत्यवती को लगा कि उनके पुत्रों की असमय मृत्यु का एक-मात्र कारण यही था कि उन्होंने अपने स्वार्थ में लिप्त होकर भीष्म जैसे आज्ञाकारी पुत्र को संसार के सुख-वैभव से वंचित कर दिया था। उन्हें लगा कि चित्रांगद और विचित्रवीर्य के रूप में उनका स्वार्थ संसार से उठ गया था।

माता सत्यवती ने कातर दृष्टि से ब्रह्मचारी भीष्म की ओर देखा और दीन वाणी में बोलीं, "भीष्म! जिस समय अचानक विधाता ने मेरी एक निषाद-कन्या से साम्राज्ञी बनने की स्थिति पैदा की थी तो मेरा मस्तिष्क स्वार्थ से भर उठा था। मेरे स्वार्थ का प्याला छलछला उठा था। मेरी उचित-अनुचित का निर्णय करने वाली विवेक-बुद्धि नष्ट हो गई थी और मैंने वह कार्य किया जिसके लिये इतिहास मुझे सर्वदा घृणा की पात्री समझेगा। मानवता मुझे कभी क्षमा नहीं करेगी।

"तुमने आजीवन ब्रह्मचारी रहने का व्रत लिया, तो मेरे हृदय को असीम शांति प्राप्त हुई थी। तुम्हारी प्रतिज्ञा ने मेरी स्वार्थ-सिद्धि का मार्ग उन्मुक्त किया था। मुझे उस समय तुम बहुत प्रिय लगे थे। मैंने तुम्हें छाती से लगा लिया था।" कहते-कहते माता सत्यवती के नेत्र बह चले। वह गम्भीर वाणी में बोलीं, "नहीं भीष्म! नहीं। मैंने तुम्हारे नवविकसित जीवन को अपने स्वार्थ की भट्टी में झोंक दिया। वह जीवन जो कल्प-वृक्ष के समान पुष्पित और पल्लवित

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

होता, उसका एक-एक पत्ता मेरी कुदृष्टि ने नोंच डाला। तुम्हारे लह-लहाते हुए वृक्ष को मैंने काट कर फेंक दिया। केवल तना मात्र छोड़ दिया आंधी के बवंडरों के मध्य खड़े रहने और उनके आघात सहन करने के लिये। वह मेरे स्वार्थ की पराकाष्ठा थी।

"घोर वर्षा के झंझावतों को सहन करने और ग्रीष्म-काल की ज्वाला में जलने-भुनने के लिये मैंने तुम्हें छोड़ दिया। एक स्वार्थप्रिय नारी के समान मैंने तुम्हारे जीवन-रस को अपने जीवन में भर लेना चाहा। मैंने अपने ही पुत्रों के रूप में अपने सुख की कल्पना की। तुम पर मेरी दृष्टि आदान के हेतु ही गई, प्रदान की भावना मेरे हृदय में उत्पन्न ही नहीं हुई।" यह कहकर माता सत्यवती विक्षिप्तावस्था में खिलखिलाकर हँस पड़ीं।

ब्रह्मचारी भीष्म मौन मुद्रा में खड़े माता सत्यवती की ओर देखते रहे। उन्हें उस समय उनकी यह दशा देखकर अपार कष्ट हो रहा था। वह माता सत्यवती के दुःख में दुखी थे।

माता सत्यवती फिर बोलीं, "मैंने कुरु-वंश का राज्य-पथ अन्धकार-पूर्ण कर दिया। मेरे स्वार्थ ने कुरु-वंश का लहलहाती हुई खेती पर तुषारपात किया है।" उनके नेत्र बरस पड़े। वह विह्वल होकर वहीं भूमि पर बैठ गईं और धीरे-धीरे संज्ञाविहीन होकर एक ओर को ढुलक पड़तीं यदि ब्रह्मचारी भीष्म ने उन्हें अपनी बाहुओं पर उठाकर पलंग पर न लिटा दिया होता।

माता सत्यवती ने थोड़ी देर में अपने नेत्र खोले तो ब्रह्मचारी भीष्म को अपने समक्ष खड़ा पाया। उनका चित्त बहुत उद्विग्न था।

माता सत्यवती दीन दृष्टि से भीष्म की ओर देखकर बोलीं, "बेटा भीष्म! अब कुरु-वंश का क्या होगा? क्या इस वंश-बेल का यहीं अन्त हो जायेगा?'

ब्रह्मचारी भीष्म माता सत्यवती की बात का कोई उत्तर न दे सके। वह प्रस्तर-शिला के समान संज्ञा-विहीन से मौन खड़े रहे,।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"तुम मौन खड़े हो भीष्म ! क्या तुम अपनी माता की इस भूल को क्षमा नहीं कर सकते ?" माता सत्यवती बोलीं ।

"ब्रह्मचारी भीष्म को माता-पिता की किसी बात को भूल मानने का अधिकार नहीं है। मैं आपकी आज्ञा पालन करने के लिये खड़ा हूँ ।" गम्भीरतापूर्वक भीष्म ने कहा ।

ब्रह्मचारी भीष्म का गम्भीर उत्तर सुनकर माता सत्यवती बोलीं, "भीष्म ! तुम्हें आज्ञा करने का मुझमें साहस नहीं है। आज तुम्हीं मेरे एकमात्र पुत्र हो और तुम्हारे ही ऊपर कुरु-वंश का भविष्य आधारित है। तुम चाहो तो इसे आगे बढ़ा सकते हो, न चाहो तो समाप्त तो वह हो ही चुका ।

"मैं चाहती हूँ कि तुम अम्बिका और अम्बलिका से विधिवत् विवाह करके कुरु-वंश की बेल को पुष्पित और पल्लवित करो। तुम्हें प्राप्त करके दोनों रानियों के निराशापूर्ण जीवन की इतिश्री हो जायेगी और तुम्हारे नीरस जीवन में भी सुख का संचार हो उठेगा ।

"भीष्म ! मुझे विश्वास है कि तुम मेरी इस इच्छा की पूर्ति कर, मेरे दग्ध जीवन को शीतलता प्रदान करोगे ।"

माता सत्यवती के प्रस्ताव को सुनकर ब्रह्मचारी भीष्म मुस्कराकर बोले, "ब्रह्मचारी भीष्म अपनी माता की भावना को श्रद्धा और भक्ति की दृष्टि से देखता है ।

"मैं स्वयं भी यह कभी नहीं चाह सकता कि कुरु-वंश का यहीं अन्त हो जाये। महाराज ययाति से आज तक अविच्छिन्न दशा में वैतरणी के समान आचार्य कच के आदर्शों पर चलकर बहती चली आ रही इस वंश-धारा का समाप्त हो जाना मेरे लिये भी महान् कष्टप्रद होगा, परन्तु यह भी कभी सम्भव नहीं होगा कि ब्रह्मचारी भीष्म अपनी प्रतिज्ञा भंग कर दे। जिस प्रतिज्ञा के फलस्वरूप पिता शान्तनु को साम्राज्ञी की प्राप्ति हुई और जिस प्रतिज्ञा की रक्षा के लिये गुरु

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

परशुराम से युद्ध करना पड़ा, उसे इस प्रकार समाप्त नहीं किया जा सकता। राजमाता ! ब्रह्मचारी भीष्म हँसते-हँसते आपकी आज्ञा से प्राण दे सकता है, परन्तु प्रतिज्ञा भंग नहीं कर सकता।"

माता सत्यवती ब्रह्मचारी भीष्म की बात सुनकर कम्पायमान हो उठीं। उन्हें मूर्च्छना-सी आ गई। उन्हें चतुर्दिश अन्धकार-ही-अन्धकार दिखाई दिया। उन्होंने नेत्र बंद कर लिये।

माता सत्यवती ने कुछ देर पश्चात् नेत्र खोले तो ब्रह्मचारी भीष्म सरल वाणी में बोले, "कुरु-वंश की वंश-परम्परा माता सत्यवती के गर्भ से उत्पन्न पुत्र के द्वारा ही संचालित हो सकती है राजमाता ! आपके अधिकार का हनन करके मैं पूज्य पिताजी की आत्मा के असंतोष का कारण नहीं बन सकता।

"इस कठिन परिस्थिति में भाई व्यास हमारे सहायक हो सकते हैं। आप उन्हें यहाँ बुलाकर, यह समस्या उनके समक्ष प्रस्तुत करें। वह कभी सहन नहीं करेंगे कि इतनी प्राचीन वंश-परम्परा इस प्रकार नष्ट हो जाये। उनके ऐसा न चाहने का एक और भी महत्त्वपूर्ण कारण है !"

"वह क्या ?" माता सत्यवती ने पूछा।

भाई व्यास महाभारत नामक एक महान् ग्रन्थ की रचना कर रहे हैं। इस वंश-परम्परा का अन्त होने से उनका वह ग्रन्थ अधूरा रह जायेगा। इसे वह कदापि सहन नहीं करेंगे।" भीष्म बोले।

भीष्म के प्रस्ताव को सुनकर राजमाता सत्यवती के निराशपूर्ण जीवन में आशा की एक हल्की-सी रेखा खिंच गई। उन्होंने आशापूर्ण दृष्टि से ब्रह्मचारी भीष्म के तेजपूर्ण मुख-मण्डल पर निहारा तो उन्हें असीम शान्ति और साहस का संदेश मिला।

वह अपने उद्विग्न मन को सांत्वना देकर बोलीं, "तो बेटा भीष्म,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

व्यास के पास दूत भेजकर उसको माता का यह संदेश भेज दो।"

ब्रह्मचारी भीष्म ने तुरन्त सारथी को बुलाकर आज्ञा दी कि वह माता सत्यवती का संदेश लेकर व्यास जी के आश्रम पर जायें और उन्हें आदरपूर्वक रथ पर बिठाकर ले आयें।

सारथी ने तुरन्त रथ जोड़ दिया और तीव्र गति के साथ व्यास जी के आश्रम की ओर प्रस्थान किया।

सारथी व्यासजी के आश्रम में पहुँचा और उन्हें माता सत्यवती का संदेश दिया तो वह तुरन्त रथ पर सवार होकर हस्तिनापुर की दिशा में चल पड़े। व्यासजी हस्तिनापुर आये तो उन्हें राजसी सम्मान के साथ राजमहल में ले जाया गया।

ब्रह्मचारी भीष्म ने व्यास जी से सादर भेंट की और उन्हें बड़ा भाई कहकर सम्बोधित किया। व्यासजी ने माता सत्यवती के चरण छूकर सादर प्रणाम किया।

व्यासजी ने अपने बुलाने का कारण पूछा तो माता सत्यवती बोलीं, 'बेटा व्यास! तुम्हारी माता का स्वार्थ-लिप्सा के कारण यह इतनी प्राचीन वंश-बेल सूख रही है। ब्रह्मचारी भीष्म ने तुम्हारी माता की स्वार्थप्रिय कामना-पूर्ति के लिये आदित्य ब्रह्मचारी रहने का व्रत धारण कर लिया था।

"तुम्हारी माता के गर्भ से चित्रांगद और विचित्रवीर्य दो पुत्रों ने जन्म लिया, जिनमें चित्रांगद तो अविवाहित ही मृत्यु को प्राप्त हुआ। विचित्रवीर्य का विवाह तुम्हारे भाई भीष्म ने काशी-नरेश की दो कन्याओं अम्बिका और अम्बालिका के साथ कराया।

"दुर्भाग्यवश विचित्रवीर्य भी अपनी दोनों रानियों को बिना संतान ही छोड़कर परलोक सिधार गया। इस प्रकार अब इस गद्दी का कोई उत्तराधिकारी नहीं रहा।

"क्या तुम चाहोगे कि तुम्हारी माता का नाम इस गौरवपूर्ण

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

परिवार को नष्ट करने वाली चाण्डालिनी के रूप में लिया जाये। मैंने इस आपत्ति-काल में तुम्हें अपनी सहायता के लिये स्मरण किया है।"

व्यासजी माता सत्यवती की कातर वाणी सुनकर द्रवित हो उठे। वह सरल वाणी में बोले, "माता ! अब इस दशा में गृहस्थ बनकर रहना तो व्यास के लिये असम्भव है। मैं जिन ग्रन्थों की रचना कर रहा हूँ, मेरे प्राण उसमें अटके हुए हैं। मेरा वह कार्य छूट गया तो मैं निश्चय ही प्राण विहीन हो जाऊँगा।"

व्यासजी का उत्तर सुनकर ब्रह्मचारी भीष्म बोले, "भय्या व्यास ! क्या हम नहीं जानते हैं कि आप अपने तपस्वी जीवन का परित्याग नहीं कर सकते ? हम जानते हैं कि आपको गृहस्थ में फंसाने से जो महान् सांस्कृतिक साहित्य की रचना आपके द्वारा हो रही है, वह रुक जायेगी ? हमारा कोई प्रस्ताव आपके कार्य में बाधक नहीं बनेगा।

"माता सत्यवती की इच्छा केवल यही है कि विचित्रवीर्य की विधवा रानियाँ अम्बिका और अम्बालिका गर्भवती हो जायें।'

"केवल मात्र !" माता सत्यवती के मुख से अस्फुट शब्द निकले।

"केवल मात्र ?" व्यासजी ने पूछा।

बहुत सोच-विचार के पश्चात् व्यासजी ने स्वीकृति प्रदान की।

प्रथम दिन विचित्रवीर्य की बड़ी रानी अम्बिका व्यासजी के पास गईं। उन्होंने जाकर व्यासजी का जटा-जूट दाढ़ी-मूंछों वाला विकराल रूप देखा तो उनके नेत्र बन्द हो गये। राजसी ठाठ-बाट से परिचित रानी इस तपस्वी साधू के समक्ष नेत्र न खोल सकीं।

दूसरे दिन विचित्रवीर्य की दूसरी रानी अम्बालिका व्यासजी के पास पहुँची तो वह उनकी सूरत देखकर पीली पड़ गईं। वह भयभीत हो उठीं।

व्यासजी ने अपनी माता से दोनों रानियों के अपने पास आने की स्थिति का वर्णन करके कहा, "मुझे भय है कि बड़ी रानी का पुत्र जन्म से

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ही अंधा होगा और छोटी रानी का पुत्र पांडु रोग से ग्रस्त।"

यह समाचार पाकर माता सत्यवती का उत्साह भंग हो गया। उन्होंने अम्बालिका को एक बार फिर व्यासजी के पास जाने का आदेश दिया।

अम्बालिका दोबारा जाने की बात सुनकर सिहर उठी। पुत्र-लोभ में वह किसी प्रकार एक बार वहाँ चली गई थी, परन्तु अब जाने का उसका साहस न हुआ।

उसने उस रात्रि को अपनी दासी को शृंगार कराकर व्यास जी के पास भेज दिया। वह स्वयं उनके पास नहीं गई।

दासी इठलाती हुई मुस्कराकर व्यासजी के पास पहुँच गई। वह मुग्ध-भाव से व्यासजी से मिली।

अम्बिका, अम्बालिका और दासी तीनों गर्भवती हो गईं। तीनों के गर्भवती होने की सूचना प्राप्त कर व्यासजी ने माता सत्यवती और ब्रह्मचारी भीष्म से विदा ली। भीष्म ने अपना रथ व्यासजी की यात्रा के लिये तय्यार कराया और आदरपूर्वक उन्हें विदा किया।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दोनों रानियों और दासी के गर्भ से तीन पुत्रों ने जन्म लिया। अम्बिका का पुत्र जन्मान्ध पैदा हुआ। उसका नाम धृतराष्ट्र रखा गया। अम्बालिका का पुत्र पीले वर्ण का हुआ। उसका नाम पाण्डु रखा गया। दासी-पुत्र को देखकर ब्रह्मचारी भीष्म बहुत अप्रसन्न हुए। वह बच्चा तीनों बच्चों में स्वस्थ और सुन्दर था। उसका नाम विदुर रखा गया।

तीनों बच्चे धीरे-धीरे बड़े होने लगे।

उनके कुछ बड़े होने पर राजमाता सत्यवती ब्रह्मचारी भीष्म से बोलीं, "बेटा भीष्म! इनकी शिक्षा का प्रबन्ध करो। मैं चाहती हूँ कि इनकी शिक्षा का भार तुम स्वयं सँभालो। इन्हें किसी योग्य बनाकर सुख-शान्ति का जीवन व्यतीत करो।"

माता सत्यवती की बात सुनकर ब्रह्मचारी भीष्म मुस्कराकर बोले "माता! भीष्म के जीवन में सुख-शान्ति कहाँ? यदि भीष्म के जीवन में सुख-शान्ति होती तो क्या चित्रांगद और विचित्रवीर्य मुझे छोड़कर अकाल मृत्यु को प्राप्त होते? यह न होता तो क्यों ब्रह्मचारी भीष्म को गृहस्थ के जंजाल में फँसा रहना पड़ता? क्या भय्या व्यास की तरह मैं भी किसी आश्रम का निर्माण न करता?"

माता सत्यवती ब्रह्मचारी भीष्म की बात सुनकर स्नेहातिरेक में बोलीं, "भीष्म! जंगल के आश्रमों में रहने वाले त्यागी और तपस्वी लोगों के वृत्तान्त भारतीय संस्कृति के इतिहास में अनेकों भरे पड़े हैं, परन्तु राजमहलों में रहकर राज-सत्ता को संचालित करने वाला, तुम जैसा त्यागी और तपस्वी कोई बिरला ही मिलेगा। तुम जल में रहकर भी कमल के समान, जल से ऊपर निकाल कर खिल रहे हो। सच पूछो तो

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आज यह कुरु-वंश तुम्हारे ही त्याग की नौका पर बैठ कर आगे बढ़ रहा है। तुम न होते तो इस वंश का सूर्य कभी का अस्त हो गया होता।"

माता सत्यवती के मुख से अपनी प्रशंसा सुनकर भीष्म का बदन रोमांचित हो उठा। उन्होंने माता के चरण छूकर शपथ ली "माता! आपको जो वचन दिया है, उसका निर्वाह उस समय तक करता रहूँगा जब तक इस बदन में एक बूँद भी रक्त शेष रहेगा।"

माता सत्यवती का हृदय पुत्र-स्नेह से भर उठा। उनके नेत्रों की ज्योति बढ़ गई। उन्होंने खड़ी होकर भीष्म को अपने निकट करके, उनके सिर पर अपना वरद हस्त रखकर आशीर्वाद दिया।

ब्रह्मचारी भीष्म ने धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर को अपने संरक्षण में रखकर शिक्षा का प्रबन्ध किया। धृतराष्ट्र महाबलशाली योद्धा बने। उनके शरीर-बल की ख्याति दूर-दूर तक फैल गई। पाण्डु धनुर्विद्या में निपुण हुए। उनके पराक्रम की गाथाएँ राज्य भर में गाई जाने लगीं। सम्पूर्ण राज्य में उनकी ख्याति व्याप्त हो गई। महात्मा विदुर की प्रवृत्ति अस्त्रशस्त्र-विद्या की ओर न जाकर राजनीति और धर्म-नीति की ओर प्रवाहित हुई। वह अपने समय के महान् नीतिज्ञ बने। आपके पाण्डित्य की धाक चतुर्दिश फैली और देश-देशान्तरों में उसकी धूम मच गई।

भीष्म ने पहिले चित्रांगद और विचित्रवीर्य के निर्माण में अपना जीवन लगाया था। उनके पराक्रम के रूप में उन्होंने कुरु-वंश के उज्जवल भविष्य की कल्पना की थी, परन्तु भीष्म का वह प्रयास विधाता से न देखा गया। उसने उन दोनों वीरों को असमय में ही पृथ्वी से उठा लिया।

भीष्म फिर भी निराश नहीं हुए। उन्होंने कुरु-वंश की ख्याति और गौरव की रक्षा-के लिये इन तीनों बच्चों का निर्माण किया और

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इनके रूप में कुरु-वंश की समृद्धि की कल्पना की।

भीष्म ने धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर को सुशिक्षा प्रदान कर संतोष की साँस ली। वह चित्रांगद और विचित्रवीर्य की मृत्यु के पश्चात् राज्य-संचालन का सम्पूर्ण भार अपने अकेले कंधों पर संभाले रहे।

अब उनकी आँखों के समक्ष कुरु-वंश के दो युवराज धृतराष्ट्र और पाण्डु थे। विदुर पर भी उन्हें बहुत विश्वास था, क्योंकि उन्हें भी उन्होंने पुत्रवत् पाला और शिष्यवत् शिक्षा प्रदान की थी। उनके गुणों को देखकर वह रीझ उठे थे।

धृतराष्ट्र जन्म के अन्धे थे, इसलिये उनके साथ विवाह कराने को कोई कन्या उद्यत नहीं होती थी।

भीष्म को गांधार देश के राजा सुबाहु की कन्या गांधारी के स्वयम्वर की सूचना मिली। उन्होंने सुबाहु के पास सूचना भेजी, 'गांधारी का विवाह हम अपने बड़े पोते धृतराष्ट्र के साथ करना चाहते हैं। आपका क्या विचार है?''

गांधार देश के राजा सुबाहु में भीष्म के संदेश की अवहेलना करने की सामर्थ नहीं थी। गांधारी ने अपने पिता की स्थिति को समझकर विवाह की स्वीकृति दे दी और गांधारी का भाई शकुनी गांधारी को लेकर हस्तिनापुर आ गया। शुभ मुहूर्त्त देखकर धृतराष्ट्र का विवाह गांधारी से सम्पन्न हुआ।

तभी शूरसेन ने अपनी पुत्री कुन्ती का स्वयम्वर रचा। उसमें दूर-दूर के राजाओं को निमंत्रित किया गया था। भीष्म ने स्वयम्वर का समाचार प्राप्त किया तो पांडु को भी स्वयम्वर में भेजा।

पाण्डु विख्यात धनुर्धर थे। उनकी ख्याति चारों ओर फैल चुकी थी। कुन्ती ने पांडु के गले में जयमाला डाल दी। उनका विवाह भी धूम-धाम के साथ सम्पन्न हुआ।

पाण्डु कुन्ती को लेकर हस्तिनापुर आये तो भीष्म ने विराट् आयोजन

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

किया। याचकों को मुँह मांगे दान दिए और उत्सव में राजाओं को आमंत्रित किया।

धृतराष्ट्र और पाण्डु के विवाह के पश्चात् भीष्म ने विदुर का विवाह सुबल के राजा देवकी की परम सुन्दरी पुत्री से किया। विदुर दासी-पुत्र थे, परन्तु भीष्म उन्हें किसी प्रकार भी धृतराष्ट्र और पाण्डु से कम नहीं चाहते थे। इसी लिये सुवल के राजा देवकी ने सहर्ष अपनी कन्या का विवाह उनके साथ कर दिया था। यह विवाह भी धूम-धाम से सम्पन्न हुआ।

कुरु-वंश की बेल, जो चित्रांगद और विचित्रवीर्य की मृत्यु से एक बार सूखी प्रतीत होने लगी थी, लहलहा उठी। माता सत्यवती ने इस उजड़ती हुई वाटिका में फिर से हरियाली के दर्शन किये। उनके निराशामय जीवन में फिर से आशा और सन्तोष की धारा प्रवाहित हो चली। उन्हें संतोष था कि उन्होंने अपने पति के वंश को विनाश से बचा लिया।

दोनों पोतों तथा विदुर का विवाह सम्पन्न करके भीष्म ने माता सत्यवती के पैर छुए और सरल वाणी में कहा, "राजमाता! आपने उस बगिया को, जिसे आपने पिताजी के राज्य में आकर लगाया था, उजड़ने से बचा लिया। इस बार बहुत परिश्रम करना पड़ा है। मैं अब चाहता हूँ कि पाण्डु को राज्य-भार संभलवाकर कुछ दिन विश्राम करूँ, परन्तु देख रहा हूँ कि ये बच्चे अपने ताऊ को विश्राम नहीं लेने देंगे।'

माता सत्यवती मुस्कराकर बोलीं, 'इस बगिया को लगाने के लिये बेटा! तुम ही तो मुझे अपने पिता के राज्य में लाये थे। इसे उजड़ने से तुमने बचाया है, मैंने नहीं। इस बगिया के माली तुम ही तो हो। सुना है पाण्डु दिग्विजय-यात्रा पर जाने का इच्छुक है।'

भीष्म मुस्कराकर बोले, "आपकी आज्ञा हो तो पाण्डु को गद्दी पर बिठाकर दिग्विजय के लिये भेजा जाये। इस समय यह कार्य होना नितान्त आवश्यक हो गया है।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"क्या यह धृतराष्ट्र को बुरा नहीं लगेगा भीष्म ?" माता सत्यवती ने पूछा। "धृतराष्ट्र बड़ा भाई है। गद्दी का तो वही अधिकारी है।"

"लगना तो नहीं चाहिए क्योंकि वह अन्धा है। राज्य-कार्यों को संभालता उसके लिये कठिन है। राज्य-संचालन इतना सरल कार्य नहीं है कि उसे अन्धा व्यक्ति कर सके।" सतर्कतापूर्वक भीष्म बोले।

"जैसा तुम उचित समझो बेटा! इस बात का ध्यान रखना कि दोनों में वैमनस्य पैदा न हो। माता सत्यवती ने कहा।"

"यह क्या कह रही हो राजमाता! यह कुरु-वंश है। हम उस माता देवयानी के वंशज हैं जिन्होंने इस वंश की कलह को मिटाने के लिये राज्य का परित्याग कर दिया था। ये बच्चे उस ताऊ के पुत्र हैं जिसने भाइयों के लिये आदित्य ब्रह्मचारी रहने का व्रत लिया था। इनके विषय में आप के मन में ऐसी शंका क्यों उत्पन्न हुई ?" भीष्म बोले।

माता सत्यवती भीष्म की बात सुनकर अवाक् रह गयी। वह मधुर स्वर में बोलीं, "पता नहीं क्यों बेटा भीष्म' यह शंका मेरे मन में पैदा हुई ? जो बात मन में आई, तुमसे स्पष्ट कह दी। अम्बिका और अम्बालिका में इधर देख रही हूँ कि वैसा स्नेह नहीं रहा, जैसा बहिन-बहिन में होना चाहिए। इसी से कुछ भय-सा लग रहा है। यह बदलता युग है, युग की प्रवृत्तियाँ भी बदल रहीं हैं।"

भीष्म ने शुभ मुहूर्त्त निकलवाया और माता सत्यवती ने पाण्डु का राजतिलक किया। सब कार्य विधिवत् सम्पन्न हो गया।

पाण्डु ने राज्य की शासन-व्यवस्था को सँभाला। राज्य में फैली अव्यवस्था का अन्त किया। छोटे-बड़े-विद्रोहों को शांत किया और राज्य में शांति की स्थापना की। कुरु-वंश के गौरव की धाक एक बार फिर सम्पूर्ण भारत में जम गई।

पाण्डु ने कुरु-वंश के यश को चारों ओर फैलाया। उपयोगी राज्य-पथों का निर्माण कराया। सुन्दर भवन तथा यज्ञ-शालाएँ बनवाईं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

देश के व्यापार और कारीगरी को बढ़ावा दिया। बड़े-बड़े यज्ञ कराये। विश्वविद्यालयों की स्थापना की। पाण्डु ने राज्य में ऐसी स्थिति पैदा कर दी कि प्रजा से कर वसूल करने के लिये राज्य-कर्मचारियों को उनके पास नहीं जाना पड़ता था। प्रजा के लोग स्वयं जाकर सरकारी कोष में धन जमा करा आते थे।

पाण्डु की शासन-व्यवस्था ने भीष्म को महान् सन्तोष प्रदान किया। धृतराष्ट्र के हृदय में भी अपने भाई के कुशल राज्य-कार्य-संचालन के प्रति असीम संतोष था। उनका चित्त प्रसन्न था। कुरु-परिवार की उन्नति को देखकर माता सत्यवती का मस्तक गर्व से ऊँचा उठ जाता था। उन्हें असीम आत्मसंतोष था।

पाण्डु राज्य की व्यवस्था ठीक करके दिग्विजय के लिये निकले। वह जिधर भी गये उधर ही उन्होंने कुरु-वंश की विजय-पताका फहराई। उन्होंने दूर-दूर के देशों पर अपना अधिकार स्थापित करके साम्राज्य की सीमा का विस्तार किया। इसी दिग्विजय के मध्य पाण्डु ने मद्राज देश की सौंदर्यशालिनी राजकुमारी माद्री से विवाह किया।

महाराज पाण्डु जब दिग्विजय करके लौटे और उनके साथ अपूर्व सुन्दरी माद्री को देखा तो भीष्म और माता सत्यवती के हृदय हर्ष से प्रफुल्लित हो उठे। कुन्ती ने माद्री को अपनी सगी छोटी बहिन के समान ग्रहण किया और बड़े स्नेह के साथ वह उसे अपने महल में ले गयीं।

पाण्डु के लौटने पर हस्तिनापुर में मंगल-सभाएँ हुईं और राज्य का सम्पूर्ण वातावरण हर्ष और उल्लास से पूर्ण हो उठा।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

राज्य-व्यवस्था को सुचारु रूप से संचालित कर महाराज पाण्डु अपनी पत्नियों को साथ लेकर उत्तर-पथ की ओर आखेट के लिये निकल गये। पाण्डु की वन-विहार करने और आखेट खेलने में बहुत रुचि थी। इसी लिये जब वह वन-विहार के लिये जाते थे तो कई-कई वर्ष वनों की सुन्दर शोभा के मध्य व्यतीत कर देते थे। प्रकृति के सुन्दर साम्राज्य की शोभा उन्हें अपने साम्राज्य की शोभा से कहीं अधिक आकर्षक प्रतीत होती थी।

वन-विहार करते-करते पाण्डु बहुत दूर निकल गये। वह हिमालय पर्वत की दक्षिण तराई में पहुँचे। वहाँ की सुन्दर-शोभा को देखकर पाण्डु का मन हुआ कि कुछ दिन वहीं निवास किया जाये।

महाराज पाण्डु ने सेवकों को उसी वनस्थली में एक सुन्दर प्रपात के पास सघन-वृक्षों की शीतल छाया में अपने ठहरने की व्यवस्था करने का आदेश दिया।

पाण्डु पर्याप्त दिन तक वहीं रहे। वन की सुन्दर शोभा के बीच कुन्ती और माद्री के साथ एक दिन पाण्डु सरोवर के किनारे घूमने गये। सरोवर के जल पर बहुत से कमल-पुष्प खिले थे। उन्हें देखकर पाण्डु बोले, "कुन्ती ! देख रही हो इस सरोवर को। कितना स्थिर है इस सरोवर के जल का धरातल ? कितना शान्त और निश्चल है। कहीं कोई एक भी अशांति की लहर इसके धरातल पर दिखाई नहीं देती। यह धरातल ठीक कुरु-राज्य के समान है। इस पर जो कमल-पुष्प खिले हैं, न ये तुम्हारी सन्तानों के समान हैं। वह कुरु-वंश के गौरव का सरोवर होगा, जिस पर कुरु-वंश के राजकुमार इन पुष्पों के समान लहरायेंगे।

यह कहकर उनके नेत्रों के समक्ष वह घटना सजीव हो उठी जब उनके

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

राजतिलक को लेकर दादा भीष्म और राजमाता सत्यवती में वार्तालाप हुआ था और उनके मन में जो शंकाएँ थीं उन्हें उन्होंने अपनी बातों में व्यक्त किया था। वे एक-एक करके उनके मस्तिष्क में उभर आईं।

वह मुस्कराकर बोले, 'भय्या धृतराष्ट्र की सहनशीलता देखी तुमने कुन्ती ! कितनी सद्भावना के साथ उन्होंने दादा भीष्म के प्रस्ताव को मान्यता प्रदान करदी। उनके मन पर हल्की-सी भी मालिन्य की रेखा नहीं खिंची। वह मेरे राजतिलक के समय कितने प्रसन्न थे ?'

पति की सरल बात सुन कर कुन्ती मुस्करा कर बोलीं, प्राणनाथ ! जेठ जी की सहनशीलता, इसमें कोई सन्देह नहीं, सराहनीय थी, परन्तु जेठानी गांधारी के हृदय में तभी से द्वेष की प्रचण्ड ज्वाला दहक रही है। उनके मन की अशान्ति का आप अनुमान नहीं लगा सकते। उनका वश चले तो वह सम्पूर्ण राज्य-व्यवस्था को एक क्षण में छिन्न-भिन्न कर डालें। उन्हें आपका राजतिलक तनिक भी अच्छा नहीं लगा।

कुन्ती की बात सुनकर पाण्डु हँस दिये। वह हँसते हुए बोले, यह सम्भव है कुन्ती ! उनकी आशाओं पर तुषारापात हुआ है और इससे भी बड़ी उनकी चिन्ता का कारण अब तुम बनने जा रही हो। क्यों माद्री ?' माद्री की ओर देखकर महाराज पाण्डु बोले।

पाण्डु की बात सुनकर उनकी दोनों रानियाँ लजा गईं। कुन्ती और माद्री दोनों रानियाँ गर्भवती थीं।

महाराज पांडु मुस्कराकर बोले, 'कुन्ती ! तुम्हारे बच्चों की सूचना जिस समय हस्तिनापुर पहुँचेगी तो वहाँ की प्रजा को अपार हर्ष होगा।

दादा भीष्म, माता सत्यवती और माता अम्बालिका के हर्ष का पारावार नहीं रहेगा। माता अम्बिका और भाभी गांधारी के विषय में मैं कुछ नहीं कह सकता।

राजमहल और राजसभा में मंगल छा जायेगा कुन्ती ! तुम दोनों यहाँ वनस्थली में रहकर राजमहलों के पुष्प खिला रही हो। तुम्हारे

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पुष्पों की सुगन्धि से सम्पूर्ण साम्राज्य भर जायेगा। उनकी सुगन्धि से सब दिशाएँ सुगंधित हो जायेंगी।

कुन्ती ! वह हम सब के सौभाग्य का कितना मनोहर दिन होगा जब हमारे पुष्प खिल कर भू-मण्डल को सुगन्धित करेंगे ?'

तीनों के मन आनन्द की लहरों में तरंगित थे।

महाराज पांण्डु उस वनस्थली में कई वर्ष रहे। वहीं कुन्ती के गर्भ से युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन तथा माद्री के गर्भ से नकुल और सहदेव ने जन्म लिया। इन बच्चों के जन्म का समाचार हस्तिनापुर भेज दिया गया।

महाराज पांडु उसी तपोवन में अपने परिवार को लेकर आनन्द-पूर्वक रह रहे थे। कुन्ती और माद्री दोनों के पुत्र वहाँ खुले जंगल में खेलते और क्रीड़ा करते थे। वे मुक्त प्रकृति की क्रीड़ा में विलीन थे और प्रकृति का आनन्द ले रहे थे।

युधिष्ठिर इत्यादि के जन्म का संदेश हस्तिनापुर पहुँचा तो उसे सुनकर दादा भीष्म, महात्मा विदुर और धृतराष्ट्र को असीम आनन्द की प्राप्ति हुई। राजपरिवार में मंगल छा गया। माता सत्यवती और अम्बालिका हर्ष से खिल उठीं। उनकी वंशबेल फैलती जा रही थी।

हस्तिनापुर की प्रजा इनके के जन्म पर प्रसन्न हो गई। हाट, बाज़ार, सब सजाये गये। नगर की सड़कों पर बन्दनवारें बाँधी गईं और पताकाएँ फहराई गईं। स्थान-स्थान पर नृत्य और संगीत-सभाएँ आयोजित की गईं। जन-जीवन हर्ष से उन्मत्त हो गया।

हस्तिनापुर में सभी को प्रसन्नता हुई परन्तु गांधारी का मन मलिन हो गया। उनका हृदय बहुत व्याकुल हो गया। विधाता ने उन्हें राज-माता बनने के सौभाग्य से वंचित कर दिया। उनके हृदय में असीम पीड़ा थी। बड़े भाई की पत्नी होने पर भी पति के अन्धे होने के कारण वह राजमाता-पद् प्राप्त न कर सकीं। अपने जीवन के इस अभाव

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

का उनके हृदय में गहरा असंतोष था। वह इसे कुरु-परिवार के गुरुजनों का अपने ऊपर अन्याय समझती थीं।

गांधारी स्वयं भी गर्भवती थीं, परन्तु दुर्भाग्यवश सन्तान कुन्ती के पहिले हुई। गांधारी के पुत्र का जन्म युधिष्ठिर से बाद हुआ और राज-माता बनने का सौभाग्य उन्हें प्राप्त न हो सका।

पाण्डु का स्वास्थ्य इधर कुछ दिन से ठीक नहीं चल रहा था। एक दिन वह आखेट से लौटे तो उनकी दशा ठीक नहीं थी। उनका दिल बहुत तेजी से धड़क रहा था और उन्हें पसीना छूट रहा था। डेरे पर आते ही उनकी दशा और भी गम्भीर हो गई। उनका श्वाँस उखड़ने लगा और वह अचेत हो गये।

यह देख कर कुन्ती और माद्री भयभीत हो गईं। उन्हें संभालकर बिस्तर पर लिटाया, परन्तु उनकी दशा में सुधार न हुआ। देखते-ही-देखते उनकी हृदय-गति रुक गई और कुन्ती तथा माद्री के रुदन से वहाँ का वायुमण्डल भर गया। प्रकृति का वातावरण उदास हो गया।

पाण्डु की मृत्यु से उनका परिवार शोकसागर में डूब गया। वे सब जंगल में निराश्रित से खड़े रह गये। उनका कोई सहारा न रहा।

कुन्ती अपने पति के साथ सती होने को उद्यत हुई तो माद्री विनम्रता पूर्वक आँखों से अश्रु बरसाती हुई बोलीं, 'बहिन! आप बड़ी हैं और पति के साथ सती होने का अधिकार भी आपका है, परन्तु मैं आपसे आपके इस अधिकार की भिक्षा माँगती हूँ। यह भिक्षा मैं इन पाँच असहाय बच्चों के लिये माँग रही हूँ, क्योंकि इनका उत्तरदायित्व सम्भालने योग्य मैं अपने को नहीं समझती। इसके लिये आप ही समर्थ हैं।' यह कहकर माद्री अचेत होकर महाराज पाण्डु के शव पर गिर पड़ीं और उनके वक्षस्थल पर पड़े-पड़े ही उन्होंने प्राण त्याग दिये।

कुन्ती ने अपने पाँचों बच्चों और उन दो शवों के साथ हस्तिनापुर के लिये प्रस्थान किया। वह लम्बी यात्रा के पश्चात् हस्तिनापुर पहुँचीं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उनके इस प्रकार हस्तिनापुर आने का समाचार भीष्म, विदुर और धृतराष्ट्र को मिला तो वे तीनों किंकर्त्तव्यविमूढ़ से रह गये। हस्तिनापुर में कुहराम मच गया।

दोनों शवों की अंत्येष्टि के लिये चन्दन की चिता तैयार कराई गई और उस पर पुष्पों से सुसज्जित शवों को रखा गया। उनके ऊपर सुगन्धित हवन-सामग्री बिछाकर ऊपर से चंदन की समिधाओं से शवों को ढक दिया गया और कपूर से ज्वाला प्रज्वलित की गई।

पाँचों पाण्डव और कुन्ती खड़े-खड़े अश्रु बरसाते हुए चिता को देखते रहे। अम्बालिका अपने पुत्र और पुत्र-वधू के शोक में अचेत हो गईं। माता सत्यवती के कष्ट का पारावार नहीं था। इस हृदय विदारक दृश्य को देख कर दादा भीष्म की आँखों के समक्ष अंधकार छा गया। वह विह्वल हो गये।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कुन्ती का जीवन वैधव्य के कारण त्यागमय और सात्विक हो गया था। गांधारी राजसी जीवन व्यतीत कर रही थीं। वह बहुत हठी और क्रोधी स्वभाव की थीं।

पाँचों पाण्डव बचपन से ही होनहार थे। वे अपने गुरुजनों का आदर करते थे। धृतराष्ट्र के पुत्र द्वेषपूर्ण प्रकृति के थे। वे गुरुजनों का अनादर करते थे। इसी लिये पाण्डव दादा भीष्म और विदुर के विशेष कृपा-पात्र बन गये।

युधिष्ठिर सरल और सात्विक स्वभाव के थे। कौरव उनकी खिल्ली उड़ाया करते थे परन्तु भीम को देख कर उनके देवता कूच कर जाते थे। खेल-कूद में वह कौरवों को खूब झंझोड़ता था और जल-विहार में उन्हें पकड़-पकड़ कर डुबकियाँ खिलाता था। भीम के पराक्रम पर उसके भाइयों को गर्व था।

भीम के पराक्रम को देखकर कौरव सर्वदा चिन्तित रहते थे। एक दिन कौरवों ने मंत्रणा करके जल-विहार का आयोजन किया और भोजन का भी वहीं पर प्रबन्ध किया गया। जल-विहार के पश्चात् भोजन करने बैठे तो दुर्योधन ने भीम को भोजन में विष खिला दिया। भोजन करके भीम अपने डेरे पर गया तो वहाँ जाते ही अचेत हो गया। दुर्योधन भीम को देखने के लिये वहाँ गया। भीम को मूर्च्छित देखकर उसने अपने भाइयों को साथ लेकर उसे वृक्ष की कटी डालों पर कस-कर बाँधा और सरिता में प्रवाहित कर दिया।

भीम के अन्य भाई भोजन के उपरान्त अपने अपने डेरों पर जाकर सो गये।

जब उनकी निद्रा टूटी और भीम उन्हें अपने डेरे पर नहीं मिले

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तो उन्होंने भीम की खोज की। दुर्योधन ने उनसे कह दिया कि भीम घर चला गया होगा।

भीम के चारों भाई घर आये तो भीम उन्हें वहाँ नहीं मिला। भीम के न लौटने का समाचार कुन्ती के कानों में पड़ा तो वह व्याकुल हो उठीं। उन्होंने यह सूचना उसी समय अपनी सास अम्बालिका को दी। अम्बालिका अपने पौरुषपूर्ण पोते के खो जाने की सूचना लेकर माता सत्यवती और भीष्म के पास गईं। इस समाचार से सम्पूर्ण हस्तिनापुर में खलबली मच गई। चारों ओर राजकुमार भीम की खोज की जाने लगी।

भीष्म सशंकित हो गये। उनके मन ने कहा कि अवश्य इसमें दुर्योधन की कोई चाल है। उन्होंने अपने सैनिक भीम की खोज के लिये चारों दिशाओं में दौड़ा दिये।

धृतराष्ट्र को भीम के न लौटने की सूचना मिली तो वह यह तो अनुमान न लगा सके कि उसमें दुर्योधन की कोई चाल है, परन्तु चिन्ता और मानसिक क्लेश उन्हें बहुत हुआ। उन्होंने अपनी ओर से भीम की खोज के लिये कई दूत भेजे। वे सब कुछ दिन पश्चात् खोज करके निराश राजधानी को लौट आये। उन्हें भीम का कहीं कुछ पता न चला।

भीम गंगा में बहता हुआ नागराज्य में पहुँच गया। वहाँ एक ऋषि ने उसे गंगा से निकाल लिया। वह ऋषि विष सम्बन्धी विज्ञान का नागराज्य में रहकर अध्ययन कर रहे थे। उन्होंने भीम के बदन का विष दूर कर दिया। भीम ने आँखें खोल दीं और सचेत होकर इधर-उधर देखा।

ऋषि ने अपने प्रदेश के राजा वासुकि को यह सूचना भेजी तो वह स्वयं वहाँ पधारे और भीम को सस्नेह अपनी राजधानी में ले गये। वासुकि के एक भाई आश्चर्यक कुन्ती के नाना होते थे। उन्होंने भीम

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

को देखते ही पहिचान लिया। वह बोले, 'भीम ! तुम यहाँ कहाँ ?'

भीम अपनी स्मरण-शक्ति पर जोर देकर सोच रहा था कि वह कहाँ था। उसने अपने नाना की ओर देखकर कहा, 'मुझे दुर्योधन ने विष खिला दिया।'

महाराज वासुकि ने भीम का और उपचार कराया और वह पूर्ण स्वस्थ हो गया। उसके बदन पर विष का कोई प्रभाव न रहा। स्वस्थ होने पर उसने हस्तिनापुर के लिये प्रस्थान करने की प्रार्थना करके कहा, 'मुझे न पाकर मेरे भाई तथा माता और दादी-दादा चिंतित होंगे। सारा परिवारशोकग्रस्त होगा। मुझे अब तुरन्त वहाँ पहुँचना चाहिये।'

भीम की बात सुनकर वासुकि मुस्कराकर बोले, 'परिवार में नहीं, हाँ पाण्डव-कुल में अवश्य शोक छाया हुआ होगा। कौरव-कुल में तो घृत-दीप जलाकर दीपावली मनाई जा रही होगी।'

भीम की विदाई के उपलक्ष्य में महाराज वासुकि ने एक विराट-भोज का आयोजन किया। भीम को अनेकों सुन्दर भेंट दी गईं और रथ पर बिठाकर हस्तिनापुर भेजा। भीम के साथ उसे सुरक्षित पहुँचाने के लिये महाराज वासुकि ने अपने रक्षक भेजे।

इस ठाठ-बाट के साथ भीम ने हस्तिनापुर की दिशा में प्रस्थान किया। उसका हृदय उमंग से भरा था। वह माता कुन्ती की छाती से जाकर लिपट जाने के लिये व्यग्र हो रहा था। वह अपने भाइयों के स्नेह में स्नान करने के लिये व्याकुल था। वह महात्मा विदुर, दादा भीष्म, दादी अम्बालिका और माता सत्यवती के चरण छूने के लिये एक क्षण में उड़ कर हस्तिनापुर पहुँच जाना चाहता था।

दुर्योधन के कुचक्र ने उसका मन कौरवों की ओर से सर्वदा के लिये विषाक्त कर दिया। भीम दुर्योधन को, खेल-कूद में चाहे कोई भी बात क्यों न हो, परन्तु हृदय से स्नेह करता था। उसके

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पौरुष को भी वह कुरु-कुल की अमूल्य निधि समझता था। इसी लिये उसकी समय-बे-समय की द्वेषपूर्ण बातों के विष को वह शिव के समान पी जाता था। परन्तु यह घटना इस प्रकार की नहीं थी। यह एक षड्यन्त्र था, न केवल उसको वरन् सब पाण्डवों को समाप्त करने का। इसे सहन नहीं किया जा सकता था।

भीम की त्योरियाँ चढ़ गईं। दुर्योधन के प्रति उसके मन में द्वेष की ज्वाला धधकने लगी, परन्तु उसने अपने क्रोध को अपने वक्ष के गहरे केन्द्र में छिपा लिया और मुख पर प्रसन्नता का ही भाव धारण किये रहा।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हस्तिनापुर में भीम का कोई समाचार न मिलने पर पाण्डव-कुल में कुहराम मच गया । कुन्ती के विलाप से चारों दिशाएँ रो उठी थीं । अम्बालिका के शोक का भी पारावार न रहा । भीम के चारों भाई भीम के बिना असहाय से हो गये थे । उन्हें रह-रह कर कौरवों पर क्रोध आ रहा था । वे मन में सोच रहे थे कि भीम को कहीं दुर्योधन ने ही लापता न किया हो ।

माता सत्यवती, भीष्म और विदुर भी शोकातुर थे । भीम का कोई समाचार न मिलने से उनका मन चिंतित हो रहा था । उनका हृदय इस कुचक्र को देख कर बहुत व्यग्र था । उनकी समझ में इसका रहस्य नहीं आ रहा था । शंका दुर्योधन पर उन्हें भी थी, परन्तु वे मुख से कुछ कह नहीं सकते थे ।

भीष्म माता सत्यवती से बोले, 'राजमाता ! आज आपकी उस शंका का साक्षात रूप मेरी आँखों के समक्ष आ गया, जो आपने पाण्डु को सिंहासन पर बिठाते समय व्यक्त की थी । यह कुचक्र उसी का परिणाम प्रतीत होता है ।

धृतराष्ट्र को इस कुचक्र का कोई ज्ञान नहीं है, परन्तु गांधारी सब कुछ जानती है । भीम के न लौटने के शोक में हस्तिनापुर का जन-जन शोकाकुल है । जिसे देखो उसके चेहरे पर उदासी दिखाई देती है । सबकी आँखों से अश्रुओं की धारा प्रवाहित हो रही है । किसी को भूख नहीं लगती, किसी को प्यास नहीं लगती । विदुर ने आज दस दिन से अन्न-जल ग्रहण नहीं किया है । अम्बालिका पुत्र के शोक में अपने महल से बाहर नहीं निकली । कुन्ती के विलाप को सुनकर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कलेजा मुँह को आने लगता है। दास-दासियाँ सभी भीम के न आने से दुःखी हैं।

परन्तु कौरव-कुल में प्रसन्नता की लहर दौड़ रही है। वे सब भाई आनन्दपूर्वक खेलते-कूदते फिर रहे हैं। मानो घर में कुछ हुआ ही नहीं। कल मैंने अम्बिका और गांधारी को हँस-हँसकर बातें करते देखा। दोनों के चेहरों पर प्रसन्नता देखी। मेरा हृदय शंका से भर गया। उनके कुचक्र को मैंने उनके चेहरों पर मँडराते देखा। मेरा हृदय उनकी दशा देखकर विदीर्ण हो गया। भीम जैसे पराक्रमी पुत्र के लापता होने पर कौन ऐसी माता हो सकती है जिसके चेहरे पर मुस्कान की रेखा खिंच सके, कौन ऐसी दादी होगी जो हँस-हँस कर बातें करे ? मैं पूर्ण विश्वास के साथ कह सकता हूँ कि भीम का क्या हुआ, इस रहस्य से अम्बिका और गांधारी पूर्ण परिचित हैं। उन्हें पता है कि भीम कहां है।'

महात्मा विदुर ने भीष्म के कथन का अनुमोदन किया और संक्षेप में केवल इतना ही कहा, 'इस कुकृत्य को दुर्योधन के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं कर सकता। इस कुचक्र की रचना दुर्योधन ने की है। मुझे इसमें लेश मात्र भी सन्देह नहीं है। उसके सब भाइयों को इसका ज्ञान है और गांधारी तथा अम्बिका से भी यह भेद छिपा नहीं है।'

तीनों व्यक्ति शोक-सागर में डूबे हुए थे। तीनों के सामने कुरु-वंश का पतन साक्षात् खड़ा दिखाई दे रहा था। कुरु-वंश का भविष्य अन्धकारपूर्ण हो रह था। पारस्परिक द्वेष की ज्वाला सुलग चुकी थी। इस घटना ने उस पर घृताहूति डालकर यज्ञ का श्रीगणेश कर दिया।

भीष्म व्याकुल हो गये। उन्होंने अपने सम्पूर्ण जीवन के त्याग और तपस्या की शिला पर जिस विशाल भवन का निर्माण किया था उसकी दीवारें उन्हें हिलती दिखाई दीं। उसकी दीवारों में उन्होंने

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

स्पष्ट दरारें देखीं और भविष्य ने उस खण्डहर की कल्पना की जो घोर विध्वंस का सूचक था। उनके समक्ष कुरु-वंश के विनाश की काली घटाएँ उठ-उठ कर आ रही थीं।

भीष्म का बदन सिहर उठा। वह नेत्रों में आँसू भर कर बोले, 'राजमाता! जीवन भर की तपस्या भंग हो गई। आपकी इस बगिया में, जिसे मैं आज तक अपने रक्त से सींचता आया हूँ, विष-स्रोत प्रवाहित हो चले। मेरे नेत्रों के समक्ष घोर विनाश के काले बादल मँडराते दिखाई दे रहे हैं, विनाश, महाविनाश।"

ये बातें चल ही रही थीं कि तभी सुदूर गंगा-किनारे एक रथ आता दिखाई दिया। वह रथ राजमहलों की ही ओर बढ़ता चला आ-रहा था। उसे देखकर भीष्म, माता सत्यवती और महात्मा विदुर बाहर निकल कर उद्यान में आगये। रथ पर नागदेश की पताका फहरा रही थी।

थोड़ी देर में रथ आकर उनके समक्ष रुक गया और उसपर से महाबली भीम ने उतर कर गुरुजनों के चरण छूकर प्रणाम किया।

पाण्डव-कुल के सभी लोग वहाँ आ गये। माता कुन्ती और अम्बा-लिका ने भीम को बाहुओं में भर लिया। माता सत्यवती, भीष्म और विदुर ने उसके सिर पर हाथ रख कर आशीर्वाद दिया। भीम के चारों छोटे भाई स्नेहावेश में उससे आकर लिपट गये और युधिष्ठिर ने उसे छाती से लगा लिया। युधिष्ठिर के नेत्रों से स्नेह-जल बह चला।

भीम के लौट आने का समाचार समस्त हस्तिनापुर में फैल गया। पुरवासियों को यह सूचना प्राप्त कर असीम आनन्द की प्राप्ति हुई। वे लोग सागर की तरंगों के समान राजमहल के प्रांगण में भर गये। भीम को अपने समक्ष देखकर सभी के हृदयों को शांति मिली।

दादा भीष्म ने भीम को प्यार से पुचकारा और पूछा, 'इतने दिन कहाँ रहे बेटा! इस प्रकार अपने गुरुजनों को कोई सूचना दिये बिना

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ही तुम चले गये। तुम्हें क्या पता कि हम लोगों को कितनी चिन्ता रही ? तुम्हारी राह देखते-देखते कुन्ती पगली-सी हो गई। माता सत्यवती को तुम्हारे बिना एक दिन नींद नहीं आई। अम्बालिका दिन में जाने कितनी बार तुम्हारे विषय में उद्विग्न होकर यहाँ पूछने आती थीं। तुम्हारे भाइयों ने तुम्हारी खोज में आकाश-पाताल एक कर दिया। तुम्हारे ताऊ धृतराष्ट की चिन्ता का पारावार नहीं रहा। उन्होंने तुम्हारी खोज में चारों दिशाओं में दूत भेंजे हुए हैं। दुर्योधन कई बार यहाँ मुझसे तुम्हारे विषय में सूचना प्राप्त करने आता था। वह कह रहा था कि तुम्हारे विछोह से उसका दिल डूबा जा रहा है। महात्मा विदुर ने जब से तुम गये हो अन्न-जल ग्रहण नहीं किया।'

दादा भीष्म के मुख से निकलने वाला प्रत्येक शब्द भीम के घावों पर मरहम का लेप कर रहा था, परन्तु जब उन्होंने दुर्योधन का नाम लिया तो भीम के नेत्र लाल हो गये। उसके नेत्र ज्वालामुखी के समान जलने लगे। उसका बदन थर-थर काँपने लगा। वह प्रचण्ड ज्वालामुखी के समान फूट पड़ा। कुछ देर मौन रह कर वह दो पग पीछे हट कर बोला, 'दुर्योधन आपसे मेरी कुशल-क्षेम पूछने आया ?'

'क्यों ?' गम्भीर वाणी में दादा भीष्म ने पूछा। 'क्या वह तुम्हारा भाई नहीं है ? क्या इतने दिन तक तुम्हारे लापता रहने से उसके मन में चिन्ता न होती ? मैंने देखा वह बहुत व्यग्र था तुम्हारे लिये।''

'अवश्य होगा दादा ! व्यग्र क्यों न होगा ? उसे मेरी चिन्ता न होती तो वह मुझे जल-विहार के लिये क्यों ले जाता ? उसे मेरी चिन्ता न होती तो वह मुझे भोजन में विष क्यों खिलाता ? उसे मेरी चिन्ता न होती तो वह मुझे मृत समझ कर गंगा में क्यों बहा देता ? मेरी चिन्ता ने ही तो उससे यह सब कुछ कराया। वह मेरी चिंता मिटाकर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ही उस दिन लौटा था। यह सब करके वह यहाँ पूछने आता था आपके पास कि कहीं मैं बच तो नहीं गया हूँ।'

'यह तुम क्या कह रहे हो भीम ? क्या कुरु-कुल इस सीमा तक पहुँच चुका है ?' आश्चर्यचकित होकर दादा भीष्म ने कहा। उनके ऊपर बज्रपात हुआ।

'अक्षर-अक्षर सत्य कह रहा हूँ दादा ! मृत्यु नहीं थी, इसी लिये आपके समक्ष खड़ा हूँ। वरना क्या भीम कभी गुरुजनों की आज्ञा के बिना घर से बाहर एक पग भी रख सकता था ? क्या पहिले कभी भीम ने ऐसा किया ?'

माता सत्यवती और अम्बालिका ने भीम को बारी-बारी से अपनी छाती से लगा कर प्यार किया। उनके नेत्रों में जल भर आया। उनका चित्त व्याकुल हो गया। भीम को दुर्योधन द्वारा विष दिये जाने के समाचार ने उन्हें विह्वल बना दिया।

भीम के लौटने का समाचार पाकर महाराज धृतराष्ट्र तुरन्त वहाँ आये और उन्होंने हार्दिक संतोष प्रकट किया। उन्होंने आगे बढ़कर भीम को प्यार किया और छाती से लगा कर कहा, 'तुम इस प्रकार बिना कुछ कहे-सुने कहाँ चले गये थे भीम ? तुम्हें क्या पता कि तुम्हारे बिना यहाँ हम लोग कितने चिन्तित रहे।'

भीम ने अपने ताऊजी के चरण छुए और कोई उत्तर नहीं दिया। वह मौन बना रहा।

दादा भीष्म बोले, 'धृतराष्ट्र ! आज कुरु-वंश में मैंने जो घटना अपने कानों से सुनी उस पर मेरे कान विश्वास नहीं कर रहे, परन्तु क्योंकि घटना सत्य है, इस लिये अविश्वास भी नहीं किया जा सकता।'

'ऐसी क्या घटना घटी ताऊजी ?' आश्चर्यचकित होकर महाराज धृतराष्ट्र ने पूछा। वह चकित रह गये यह बात सुन कर।

'तुम क्या करोगे वह सुनकर ? तुम्हारे हृदय पर बहुत गहरा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आघात होगा ? यदि सुनना ही चाहते हो तो सुनो ! भीम को जल-विहार के बहाने गंगा-किनारे ले जाकर दुर्योधन ने विष खिला दिया और फिर इसे अचेत होने पर गंगा में बहा दिया।

यह नदी में बहता हुआ नागराज्य में पहुँच गया। वहाँ एक ऋषि ने इसे गंगा की धारा से बाहर निकाला और इसके बदन का विष दूर करके इसे वहाँ के राजा वासुकी के पास भेज दिया।

महाराज वासुकी ने भीम का शेष उपचार कराया और स्वस्थ होने पर अपने रथ पर चढ़ा कर यहाँ भेजा है।'

दुर्योधन के दुष्कर्म की कहानी सुनकर धृतराष्ट्र का सिर नीचा हो गया। उनकी आत्मा को असीम कष्ट हुआ। उन्होने दुर्योधन के कु-कृत्य की निन्दा की। इससे सभी गुरुजनों को हार्दिक शांति मिली। सभी ने अपने मन में महाराज धृतराष्ट्र की सराहना की।

माता कुन्ती भीम को अपने महल में ले गईं।

दादा भीष्म ने महाराज धृतराष्ट्र को आज्ञा दी कि वह महाराज वासुकी के सारथी को पुरस्कार देकर विदा करें। साथ ही कोई मूल्य-वान भेंट महाराज वासुकी के लिये भेजें और उनके इस कार्य पर आभार प्रकट करें।

महाराज धृतराष्ट्र, 'जो आज्ञा', कहकर वहाँ से विदा हो गये और मन्त्री को आदेश देकर सार्थी को पुरस्कार तथा भेंट देने का प्रबन्ध किया।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दुर्योधन द्वारा भीम को विष दिये जाने की घटना ने राजमहलों का वातावरण विषाक्त कर दिया। माता कुन्ती का हृदय अनेकों शंकाओं से भर गया। उन्हें अब हर समय अपने पुत्रों की सुरक्षा की चिन्ता रहने लगी। वे बाहर जाते थे तो उनका मन भयभीत हो जाता था।

दादा भीष्म के मन में इस घटना को लेकर दुर्योधन के प्रति महान् ग्लानि उत्पन्न होगई। धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर को सुशिक्षित कर भीष्म ने कुरु-वंश के उन्नत भविष्य की जो कल्पना की थी, उसके तार-तार बिखरे दिखाई देने लगे। उन्हें आशा नहीं रही कि भविष्य में कुरु-राज्य संगठित रह सकेगा।

अब पाँचों पांडव खेलने जाते थे तो अपने किसी भाई को अकेला नहीं छोड़ते थे। दुर्योधन के कुचक्रों से वे हर समय सतर्क रहने लगे। फिर भी कौरव और पांडव राजोद्यानों में साथ-साथ खेलते-कूदते थे। भीम को विष देने की घटना को सभी ने भुलाने का प्रयास किया। एक दिन जब सब बच्चे उद्यान में खेलने गये तो उनकी गेंद कुए में जा गिरी और खेल बन्द हो गया। बच्चों को अपनी गेंद कुए में गिर जाने पर बहुत दुःख हुआ और वे सब किसी प्रकार गेंद को कुए से बाहर निकालने का प्रयास करने लगे। सब बच्चे गेंद को प्राप्त करने के प्रयत्न में लगे थे।

जब वे कुए से गेंद निकालने का प्रयास कर रहे थे तो एक दुबला-पतला तेजस्वी ब्राह्मण वहाँ आया। उसने बच्चों से पूछा, 'तुम सब लोग कुए में क्या खोज रहे हो? क्या तुम्हारा कुछ गिर गया है इस कुए में?'

बच्चे बोले, 'महाराज! हमारी गेंद इस कुए में गिर गई है। इससे

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हमारा खेल बन्द हो गया है। क्या आप हमारी गेंद के निकलवाने में हमारी सहायता करेंगे ?'

ब्राह्मण मुस्कराकर बोला, 'बच्चो ! क्या तुम्हें धनुर्विद्या का ज्ञान किसी गुरु ने नहीं कराया ?' यह कहकर उन्होंने एक तीर कुए में मारा, जो गेंद को अपने साथ लेकर कुए से बाहर आ गया।

यह देख कर बच्चों के आनन्द का पारावार न रहा। वे ब्राह्मण के चारों ओर एकत्रित हो गये। कुछ बच्चे वहाँ से दौड़ कर दादा भीष्म के पास जा पहुँचे और उनसे ब्राह्मण के हस्तकौशल की प्रशंसा की।

दादा भीष्म को यह सुनकर आश्चर्य हुआ। वह स्वयं उस ब्राह्मण के दर्शन करने के लिये बच्चों के साथ कुए पर आये। उन्होंने ब्राह्मण को सादर प्रणाम करके पूछा, 'आदरणीय ब्राह्मण ! क्या मैं आपका परिचय प्राप्त कर सकता हूँ ? आपका नाम क्या है और आप कहाँ से पधार रहे हैं ?'

ब्राह्मण बोला, 'महाराज ! मैं एक निर्धन ब्राह्मण हूँ। मेरा नाम द्रोण है। मैं भारद्वाज ऋषि का पुत्र हूँ। मैंने महामुनि अग्निवेष से सब प्रकार की युद्ध-विद्या प्राप्त की है। धनुर्विद्या में मेरी विशेष रुचि है। मैंने उनकी दस वर्ष सेवा की और अन्त में उनसे आशीर्वाद लेकर बिदा ली। मैं स्वयं को उन्हीं का शिष्य मानता हूँ।

एक बार परशुराम जी ने अपनी सब सम्पदा ब्राह्मणों को बांटी थी। धनाभाव में मैं भी वहाँ याचक बनकर पहुँच गया, परन्तु उस समय तक वह अपनी सब सम्पदा बाँट चुके थे। उनके पास उस समय केवल उनके अस्त्र-शस्त्र शेष रह गये थे। वह बोले, 'याचक इस समय मेरे पास अपने शरीर तथा इन अस्त्र-शस्त्रों के अतिरिक्त और कुछ नहीं बचा है। इनमें से तुम जो लेना चाहो ले सकते हो। मुझे देने में आपत्ति न होगी।'

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मैंने प्रार्थना की, 'महाराज ! मुझे आप धनुर्विद्या सिखादें ।'

मेरी यह प्रार्थना उन्होंने स्वीकार की और मुझे कई प्रकार की धनुर्विद्या में निपुण कर दिया । उन्होंने मुझे कई अमोघ अस्त्र दिये । वे सब मेरे पास सुरक्षित हैं । उन अस्त्रों के अतिरिक्त मेरे पास और कुछ नहीं है ।

आपके पिता महाराज शान्तनु ने, आपको ज्ञात होगा कृप और कृपी को अपनी सन्तान की तरह पाला था । ये बच्चे महात्मा शरद्वान् की सन्तान थे । तप में विघ्न पड़ने के कारण वह उन्हें अकेले छोड़ गये थे । जब उन्हें ज्ञात हुआ कि महाराज शान्तनु उन्हें अपने संरक्षण में ले गये तो उन्हें बहुत प्रसनन्ता हुई और उनके मन की चिन्ता समाप्त हो गई ।

एक बार महाराज शान्तनु ने शरद्वान् ऋषि से मिलकर उनके पुत्र के युद्ध-कौशल की प्रशंसा की तो महात्मा शरद्वान् ने प्रसन्न होकर, उन्हें हर प्रकार की युद्ध-विद्या सिखाई ।

कृप की बहिन कृपि मेरी धर्मपत्नी हैं । मैं आज कल उन्हीं के यहाँ रह रहा हूँ, परन्तु उनकी कृपा पर आश्रित रहते भी मुझे लज्जा आती है ।'

द्रोण की कथा सुनकर भीष्म बहुत प्रभावित हुए । उनके व्यक्तित्व का उन पर प्रभाव पड़ा । वह सरल वाणी में सस्नेह बोले, 'क्या मैं आपकी कोई सेवा कर सकता हूँ ? आप निसंकोच भाव से अपनी इच्छा प्रकट करें ।'

भीष्म की बात सुनकर द्रोण बोले, 'मैं इस समय अर्थ-संकट में हूँ । किसी के द्वार पर भिक्षा-वृति के लिये मैं कभी नहीं गया । महाराज परशुराम के द्वार पर भी मैं विद्या सीखने के अभिप्राय से ही गया था । मुझे यह प्रलोभ न होता तो मैं वहाँ भी न जाता ।

इस समय मेरी निर्धनता पराकाष्ठा को पहुँच चुकी है । मैं अपने पुत्र अश्वस्थामा के लिये दूध का प्रबन्ध करने में भी असमर्थ हूँ ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दरिद्रता की दशा में बच्चों द्वारा चिढ़ाये जाने पर एक दिन मैंने उसे आटा घोलकर पिला दिया और वह उसे दूध समझ कर पी गया। उस बालक को कभी गाय का दूध नसीब नहीं हुआ। मेरी निर्धनता की यह स्थिति है।

पानी में घुला आटा पीकर जब वह बच्चों के बीच गया तो उन्होंने उसे चिढ़ाया। वह मुझसे देखा नहीं गया। उस समय मुझे बचपन की एक स्मृति हो आई। महर्षि अग्निवेश के आश्रम में मैं और पांचाल देश का राजकुमार द्रुपद सहपाठी थे। मैंने किरीटी को पराजित कर द्रुपद को उनका राज्य वापिस दिलाया था। द्रुपद ने मेरे इस सहयोग के बदले में मुझे अपना आधा राज देने का वचन दिया था। उस समय मैंने उससे कुछ नहीं लिया और थाती स्वरूप उसी के पास अपना आधा भाग छोड़ दिया।

उस दिन जब मैंने अश्वस्थामा को दूध के लिये इस प्रकार तरसते देखा तो मैं उनके पास गया और पुरानी बात का स्मरण कराया। मैं द्रुपद के यहाँ आधा राज्य लेने नहीं गया था। मैं उसके पास अपनी दशा स्पष्ट करके उससे कुछ आर्थिक सहायता प्राप्त करने के विचार से गया था। मैं बहुत बड़ी आशा लेकर भी नहीं गया था। मैं मित्रता के सहयोग की आशा करके गया था, परन्तु मेरी आशाओं पर तुषारापात हुआ? द्रुपद ने मुझे अपने महल में भी प्रवेश नहीं करने दिया। उसने स्पष्ट कह दिया, 'राजा की दरिद्र से कैसी मित्रता?'

यह उत्तर सुनकर मेरे पैरों के नीचे से भूमि निकल गई। मैं निराधार खड़ा रह गया। अपमान से मेरे हृदय में ज्वाला दहक उठी। मेरे नेत्रों में क्रोध उभर आया, परन्तु मैं उस क्रोध के काल कूट को अमृत समझ कर पी गया और अपमानित होकर उसके द्वार से चला आया।'

द्रोण के नेत्र रक्त-वर्ण के हो रहे थे। क्रोध से उनका मस्तक

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

झनझना उठा था। उनका बदन कांप रहा था और क्रोध से उनकी दशा विचित्र सी-हो गई थी। उनके हाथों की मुट्ठियाँ बार-बार खुल कर बन्द हो जाती थीं।

द्रोण की कथा सुनकर भीष्म को हार्दिक कष्ट हुआ। उन्हें द्रुपद की नीचता पर क्रोध आया। वह विनम्र वाणी में बोले, 'महात्मन्! इस राज्य को आप अपना राज्य समझें। यहाँ की सब सम्पदा आपकी अपनी सम्पदा है। आप इसका स्वतन्त्रतापूर्वक उपभोग करें। आप हमारे राजकुमारों का गुरु-पद् ग्रहण करें और यहीं रहें। आपको अन्यत्र कहीं जाने की आवश्यकता नहीं है। आपका बच्चा हमारे राजकुमारों के साथ रहेगा।

उसके पालन-पोषण की चिन्ता करने की आपको आवश्यकता नहीं है।''

भीष्म ने द्रोणाचार्य के लिये एक भव्य भवन का निर्माण कराया। द्रोण अपने पुत्र और पत्नी को लेकर उसमें आगये। द्रोण का पुत्र अश्वस्थामा भी राजकुमारों के साथ शिक्षा ग्रहण करने लगा और उसका पालन-पोषण उन्हीं की तरह होने लगा।

द्रोण ने राजकुमारों का गुरु-पद् सम्भाल लिया और उनका शिक्षण आरम्भ कर दिया। द्रोणाचार्य ने कुछ ही दिनों में सब राजकुमारों को अस्त्र-शास्त्र विद्या में निपुण कर दिया।

एक दिन द्रोणाचार्य राजकुमारों को साथ लेकर वन में आखेट को गये। उनके शिकारी कुत्ते उनके साथ थे। वे शिकार खेलते हुए एक वन में पहुँचे जहाँ निशाद का लड़का एकलव्य धनुर्विद्या का अभ्यास कर रहा था। राजकुमारों का शिकारी कुत्ता भौंकता हुआ उसके पास जा पहुँचा। कुत्ते ने एकलव्य के कार्य में विघ्न उपस्थित किया तो उसने एक तीर से उसका मुँह बंद कर दिया। उसने एक ऐसा तीर मारा कि कुत्ता मरा तो नहीं, परन्तु उसका मुँह बन्द हो गया।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तीर उसके जबाड़े में अटक गया।

एकलव्य की यह कुशलता देख कर राजकुमार दंग रह गये। तब तक द्रोणाचार्य भी वहाँ आ गये। उन्हें अपने समक्ष देख कर एकलव्य ने सादर प्रणाम किया और उनकी चरण-रज अपने मस्तक पर लगाई।

द्रोणाचार्य ने एकलव्य का हस्तकौशल देख कर पूछा, 'युवक! तुमने यह हस्तकौशल किससे सीखा? तुम्हारा गुरु कौन हैं?'

एकलव्य श्रद्धापूर्वक बोला, 'महाराज! आप को स्मरण होगा मैं एक बार आपकी सेवा में शिक्षा ग्रहण करने के लिये गया था। मैं निषाद-पुत्र था, इस लिये आपकी गुरु-पद् सेवा मुझे प्राप्त न हो सकी। मैं लौट आया और यहाँ जंगल में आकर आपकी एक मिट्टी की प्रतिमा स्थापित की। उसी प्रतिमा को गुरु मान कर मैंने धनुर्विद्या का अभ्यास करना आरम्भ कर दिया। अभ्यास करते-करते आपकी कृपा से यह योग्यता मुझे प्राप्त हुई। यह सब आपके ही गुरु-पद् का प्रताप है।'

आचार्य द्रोण एकलव्य की यह कुशलता देख कर अपने मन में भयभीत हो गये। उन्हें भय हुआ कि कहीं वह किसी दिन अर्जुन व अश्वस्थामा से धनुर्विद्या में अधिक निपुण न हो जाये और अवसर पड़ने पर उन्हें परास्त न करदे। इस शंका को मन में धारण कर वह एकलव्य से बोले, 'तो तुमने यह हस्त-कौशल मुझे गुरु मान कर प्राप्त किया है। तुम्हें चाहिये कि तुम मुझे गुरुदक्षिण दो।''

एकलव्य हाथ जोड़कर उनके समक्ष आ गया और बोला, 'गुरुदेव! आज्ञा करें! मैं गुरुदक्षिणा में अपने प्राण भी दे सकता हूँ। मैंने यह जो कुछ भी अर्जित किया है सब आपके ही चरणों का प्रताप है। मुझे इस कार्य में आपसे प्रेरणा मिली है।'

एकलव्य की यह बात सुन कर द्रोणाचार्य अपने मन में बहुत प्रसन्न हुए और सोचा कि अश्वस्थामा और अर्जुन के मार्ग के उसे हटा दें।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वह बोले, 'यदि जो कुछ तुम कह रहे हो वह वास्तव में सत्य है, तो तुम अपने सीधे हाथ का अँगूठा हमें गुरुदक्षिणा स्वरूप भेंट कर दो। यही हमारी गुरुदक्षिणा होगी और तुम्हारे शिष्यत्व का प्रमाण।''

द्रोणाचार्य को कहने में विलम्ब हुआ, परन्तु एकलव्य को अपना अँगूठा काट कर द्रोण की भेंट करने में विलम्ब न हुआ। द्रोण ने एकलव्य को छाती से लगा लिया। उसका त्याग देख कर वह गद्-गद् हो गये। उन्हें अपने इस कुकृत्य पर ग्लानि भी हुई, परन्तु संतोष भी था कि उन्होंने अर्जुन और अश्वस्थामा का मार्ग साफ कर दिया।

आचार्य द्रोण ने कौरव तथा पाण्डवों को युद्ध और शस्त्र-विद्याओं में निपुण कर दिया। उनकी हर प्रकार की परीक्षा लेकर जब उन्हें पूर्ण संतोष हो गया तो उन्होंने भीष्म पितामह से कहा, 'महाराज! अब आपके सब राजकुमार शस्त्र-विद्या में निपुण हो गये हैं। मेरी इच्छा है कि एक विराट सभा के समक्ष इनके कौशल का प्रदर्शन किया जाये। इसका सम्पूर्ण राज्य पर अच्छा प्रभाव होगा।'

भीष्म, विदूर और धृतराष्ट्र इससे सहमत हो गये और एक खुले मैदान में विशाल मंडप का निर्माण कराया गया। मंडप में चारों ओर दर्शकों के बैठने का स्थान बनवाया गया। स्त्रियों के बैठने का पृथक से प्रबन्ध किया गया था। देश-देशान्तरों के राजाओं को यह प्रदर्शन देखने के लिये आमंत्रित किया गया। इस प्रकार का यह प्रथम ही आयोजन था जो हस्तिनापुर में आयोजित हुआ।

प्रदर्शन के दिन दर्शकों की भीड़ एकत्रित हुई। दूर-दूर के राजे-महाराजे कुरुवंश के बच्चों का हस्तकौशल तथा अस्त्र-विद्या देखने के लिये आये। उन्हें समुचित सम्मान के साथ उचित आसनों पर बिठाया गया। जब सब प्रबन्ध ठीक हो गया तो प्रदर्शन का कार्य आरम्भ किया गया।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

राजकुमार मैदान में उतर आये और बन्दी-जनों ने वीरतापूर्ण छन्द सुनाने आरम्भ किये। वातावरण वीर-रसपूर्ण हो गया। रण में बजने वाले वाद्य बज उठे।

गुरु द्रोण ने आगे बढ़ कर सर्व प्रथम धनुर्विद्या का प्रदर्शन कराया, जिसमें अर्जुन को प्रथम पुरस्कार दिया गया। द्रोण ने अर्जुन की कला-कुशलता पर मुग्ध होकर उसे 'ब्रह्मशिरा' अस्त्र प्रदान किया। यह पुरस्कार अर्जुन को एक चिड़िया की आँख बींधने के उपलक्ष्य में दिया गया था, जिसमें अन्य सभी राजकुमार असफल रहे थे। अर्जुन की धनुर्विद्या को देख कर उपस्थित राजे और सम्मानित जन आश्चर्य चकित रह गये। अर्जुन ने अपनी कुशलता के अनेकों कौशलपूर्ण प्रदर्शन दिखाये।

उसके पश्चात् गदा-युद्ध का प्रदर्शन हुआ। भीम और दुर्योधन मैदान में उतरे और दोनों का घमासान युद्ध हुआ। यह युद्ध इतनी भयंकर स्थिति को पहुँच गया कि द्रोण को अपने पुत्र अश्वस्थामा को गदा लेकर मैदान में उनके बीच उतारना पड़ा, जिसने उन दोनों के बीच में खड़ा होकर युद्ध को समाप्त करा दिया।

भीष्म, विदुर, राज्यमाता सत्यवती, अम्बिका अम्बालिका और कुन्ती अपने युवराजों के पराक्रम देख कर आनन्दविभोर हो उठे। गांधारी, अम्बिका और धृतराष्ट्र को विदुर ने बच्चों के पराक्रमों का वृतान्त सुनाया तो उसकी प्रसन्नता का पारावार न रहा।

दर्शकों ने भी राजकुमारों के प्रदर्शन की भूरि-भूरि प्रशंसा की। सबने आचार्य द्रोण के आचार्यत्व की मुक्त कंठ से सराहना की। पारस्परिक प्रतियोगिताओं के पश्चात् राजकुमारों ने पृथक-पृथक अपने कौशल दिखाये। अभी लोग मण्डप से बाहर भी न हो पाये थे कि द्वार पर कुछ गड़बड़ आरम्भ हो गई। दर्शकों ने देखा कौरवों के साथ कर्ण खुम ठोकता हुआ मंडप में चला आ रहा था। वह सीधा मण्डप

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

में मंच के निकट आ गया।

कर्ण मण्डप में आकर बोला, 'महानुभावो ! आप लोगों ने अभी तक वही कुछ देखा जो अर्जुन और भीम ने आपके सम्मुख प्रदर्शित किया। युद्ध-कौशल का यहीं अन्त नहीं हो जाता है। यह जो कुछ आपने देखा, वह मेरे बाँये हाथ का खेल है। वीरता का जौहर देखना है तो आप यथा-स्थान बैठे रहें और मेरा पराक्रम देखें।"

द्रोणाचार्य ने सभा के मध्य कर्ण को युद्ध -कौशल दिखाने की आज्ञा दे दी। कर्ण के युद्ध-कौशल को देखकर दर्शक स्तब्ध रह गये। कर्ण अर्जुन की ओर मुँह करके बोला, 'अर्जुन ! तुम केवल हाथ की सफाई जानते हो। तुम योद्धा नहीं हो। मैं तुम्हें मल्ल-युद्ध के लिये ललकारता हूँ। वीरता का दम भरते हो तो मैदान में आओ और मुझ से मल्ल-युद्ध करो।'

कर्ण की ललकार सुनकर अर्जुन के तन-बदन में ज्वाला प्रज्वलित हो गई। वह मैदान में उतर आया और कर्ण से युद्ध करने को उद्यत हो गया।

कौरवों की इस चाल को देख कर भीम शान्त न रह सका। वह सीना तान कर बीच में आ गया और गम्भीर वाणी में बोला, 'कर्ण ! तुझे बिना बुलाये यहाँ आने पर भी गुरु द्रोण ने तुम्हें प्रदर्शन का अवसर दिया। अब तूने मल्ल-युद्ध की बात ठानी है तो आ मेरे सामने, मैं तुझे उठा कर मंडप से बाहर फेंक देता हूँ।"

भीम को सामने देखकर कर्ण के होश उड़ गये। वह मल्ल-युद्ध के लिये अर्जुन को ललकारने चला था, भीम को नहीं। भीम से मल्ल-युद्ध करने की सामर्थ उसमें नहीं थी। फिर भी वह दबी जबान से बोला, 'पराक्रम-प्रदर्शन के स्थान पर सभी वीरों को समान रूप से आने का अधिकार है। मैं अपने वीरता के बल पर यहां आया हूँ।"

दुर्योधन ने कर्ण की बात का समर्थन किया। अश्वस्थामा ने भी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कर्ण का पक्ष लेकर कहा, 'कर्ण का यहाँ आकर प्रदर्शन करने का अधिकार है।'

गुरुजनों ने देखा रंग में भंग हुआ चाहता है। कृपाचार्य आगे बढ़कर बोले, 'कर्ण के महाबली होने में हमें कोई संदेह नहीं है, परन्तु उसके वंश का कोई परिचय नहीं मिलता। उसका पालन-पोषण अधिरथ सारथी द्वारा किया गया है। इसलिये जब तक कर्ण अपना वंश-परिचय न दे, तब तक वह इस मंडप में अर्जुन को चुनौती नहीं दे सकता।'

कृपाचार्य की बात सुन कर महाबली कर्ण नतमस्तक हो गया। दुर्योधन को भी लज्जित होना पड़ा। वे कोई उत्तर न दे सके।

दुर्योधन ने तुरन्त एक राजसी सिंहासन मँगाकर कर्ण को उस पर सुशोभित कराया और उसे अंग-देश का राजा घोषित किया। वह बोला, 'महाराज! वीरों की कोई जाति नहीं होती। सभी वीर क्षत्रिय होते हैं। यदि अब भी अर्जुन चुनौती स्वीकार करने को उद्यत नहीं है तो इसे उसकी कायरता कहा जायेगा।''

गुरुजनों ने खड़े होकर दुर्योधन की बात को अमान्य ठहराया। भीष्म गम्भीर वाणी में बोले, 'कर्ण ने रंग में भंग करने का जो षड्यन्त्र रचा है उसे देखकर मुझे हार्दिक खेद हुआ। इस मंडप की रचना हमने अपने बच्चों के कला-कौशल का प्रदर्शन देखने के लिये की है। दुनियाँ भर के शूरवीर यहाँ आकर हमारे बच्चों को चुनौती दें, इसलिये इस मंडप का निर्माण नहीं किया गया। कर्ण हमारे सारथी का पुत्र है, इसलिये उसे कौशल प्रदर्शन की आज्ञा दी गई थी। यदि वह हमारे बच्चों के बीच कलह का बीज बोने के लिये आया है तो मैं आज्ञा देता हूँ कि वह मंडप से बाहर हो जाये।'

भीष्म पितामह की गम्भीर वाणी सुनकर कर्ण सिर झुकाये हुए मंडप से बाहर चला गया। दुर्योधन और दुश्यासन भी गुरुजनों की

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मर्यादा भंग करके कर्ण के पीछे-पीछे मंडप से बाहर से चले गये।

आज की यह सभा जिस आनन्द और उत्साह के साथ आरम्भ हुई थी, वह अन्त तक स्थायी न रह सका। दुर्योधन और भीम का गदा-युद्ध देखकर स्पष्ट हो चुका था कि वे दो भाई नहीं, एक दूसरे के प्राणों के ग्राहक आपस में लड़ रहे थे। मंडप में दुर्योधन का कर्ण को साथ लेकर आना आज की सब से दुर्भाग्य पूर्ण घटना रही। वह भविष्य में कौरवों और पांडवों के पारस्परिक सम्बन्धों की सूचक थी।

दादा भीष्म देख रहे थे कि आज का यह प्रदर्शन किसी भी प्रकार शुभ नहीं रहा। उसके पीछे उन्होंने पारिवारिक द्वेष और असद भावना का नंगा नृत्य होता हुआ देखा। वह भावी दुर्भाग्य की कल्पना से आशंकित हो गये। उन्होंने माता सत्यवती से कहा 'माता! यह आज का प्रदर्शन महायुद्ध की घोषणा है। धृतराष्ट्र और पाण्डु के पुत्रों में मुझे सहयोग की कोई सम्भावना प्रतीत नहीं होती।'

दादा भीष्म की बात सुनकर माता सत्यवती ने कुरु-वंश के अंधकारपूर्ण भविष्य की कल्पना की। उनका बदन सिहर उठा।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

१३

कुरु राज्य में पाण्डवों का प्रभाव कौरवों की अपेक्षा प्रजाजनों में बढ़ने लगा। अंधे राजा की अन्धी संतान का राज्य प्रजा नहीं चाहती थी, कौरवों का व्यवहार भी उन्हें पसन्द नहीं था।

पाण्डवों के जनता में बढ़ते हुए प्रभाव को देखकर धृतराष्ट्र भी सशंकित हो गये। उन्हें प्रत्यक्ष दिखाई देने लगा कि पाण्डु के बेटे युधिष्ठिर को उन्हें राज्य सौंपना होगा और उनका बेटा दुर्योधन राज-सिंहासन से वंचित रह जायेगा। यह सोच कर उनकी चिंता बढ़ने लगी। वह किसी से कुछ कहते नहीं थे, परन्तु उनके मन में एक घुटन सी होने लगी थी।

एक दिन उन्होंने अपने मंत्री वणिक को बुला कर कहा, 'मंत्री जी! हमारे भाई पाण्डु के पुत्र यों बहुत सभ्य और शिष्ट हैं, परन्तु मैं देख रहा हूँ कि इधर युधिष्ठिर का प्रभाव प्रजा में बढ़ता जा रहा है। कहीं ऐसा न हो कि प्रजा के इस आकर्षण को देखकर पाण्डव राज्य पर अधिकार कर लें और हमारा प्रभाव समाप्त कर दें।'

मंत्री वणिक बोले, 'महाराज! शत्रु को कभी भोला नहीं समझना चाहिये। पाण्डवों की सभ्यता और शिष्टता तभी तक है जब तक सत्ता उनके हाथों में नहीं है। सत्ता हाथ में आने पर सब सभ्यता और शिष्टता समाप्त हो जायेगी है।''

दुर्योधन भी वहीं बैठा था। यों दुर्योधन के हृदय में पाण्डवों के प्रति द्वेष की ज्वाला हर समय सुलगती रहती थी, परन्तु पहिले कभी उसने अपने पिता से इस विषय में एक शब्द भी नहीं कहा था। वह स्थिति का अध्ययन कर रहा था और अपनी चालें चलता जा रहा था।

धृतराष्ट्र और मंत्री वणिक की बातें सुनकर उसने भी अपना मुँह

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

खोला। वह बोला, 'पिता जी ! पाण्डवों से भयभीत होने का कोई कारण नहीं समझता। प्रजा को मैं मक्खी-मच्छरों के समान समझता हूँ और पाँचों पाण्डवों के लिये मेरे पाँच भाई पर्याप्त हैं, परन्तु मैं नहीं चाहता कि आपस में कलह हो। मेरे विचार से कुछ दिन के लिये इन्हें यहाँ से कहीं बाहर भेज दिया जाये। इससे तो यह बढ़ता हुआ वैमनस्य कम हो जायेगा। यदि ये लोग यहाँ बने रहे तो निश्चिय ही एक दिन आग भड़क उठेगी और फिर उस आग को बुझाना आप लोगों के लिये कठिन ही नहीं, असम्भव हो जायेगा।"

दुर्योधन की बात सुनकर धृतराष्ट्र गृह-युद्ध की सम्भावना से काँप उठे। वह संयत होकर बोले, 'दुर्योधन ! मैं तुम्हारी इस बात को नहीं मानता कि प्रजा-जन मक्खी और मच्छरों के समान हैं। प्रजा की शक्ति बहुत प्रबल होती है। उस पर युधिष्ठिर अधिकार करता जा रहा है। तुम देख रहे हो, इतनी छोटी-सी आयु में उसे बड़े-बड़े लोग धर्म राज कह कर पुकारने लगे हैं। वह उनके हृदयों पर छाता चला जा रहा है। सभी लोग उसे आदर की दृष्टि से देखते हैं।

प्रजा को विद्रोही बनाना अपने पैर काटना है। देश में अराजकता फैल गई तो हमें शासन का परित्याग करना होगा। जो राजा प्रजा को सन्तुष्ट नहीं रख सकता उसे राज करने का कोई अधिकार नहीं है। अपने राज्य की विद्रोहात्मक स्थिति देख कर मैं भयभीत हूँ। देख रहा हूँ जनता हमसे विमुख होती जा रही है।"

दुर्योधन बोला, 'पिताजी ! आप सतयुग की बातें कर रहे हैं। यह द्वापर-युग है। इसमें वे नीतियाँ और वे सिद्धान्त नहीं चल सकते जो सतयुग में चला करते थे। आज की स्थिति को सँभालने के लिये हमें विभिन्न प्रकार की नीतियाँ अपनानी होंगी। जो भय से हमारा साथ देगा उसे भयभीत किया जायेगा और जो अर्थ के वश में आयेगा उसे अर्थ देकर अपने साथ मिलाया जायेगा। कुछ लोगों में भेद-नीति

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कार्य करेगी । छोटे-मोटे लोग दब कर अपने साथ आ जायेंगे । द्रोणाचार्य और कृपाचार्य अश्वस्थामा के कारण हमारा साथ देंगे । अश्वस्थामा को हमने पूरी तरह अपने साथ मिला लिया है । भीष्म पितामह दोनों को समान स्नेह करते हैं । अकेले विदुर के विषय में सुना है कि वह पाण्डवों के अधिक निकट हैं, सो उनकी मैं चिन्ता नहीं करता । वह हमारे यहाँ रह कर जीवन-यापन कर रहे हैं, इसलिये हमारे विरुद्ध खुल कर मुँह नहीं खोल सकते । उन्हें हमारा विरोध करने से पूर्व अपने भविष्य के विषय में सोचना होगा ।'

दुर्योधन की आज की बातों का धृतराष्ट्र पर गम्भीर प्रभाव हुआ । उनकी विवेक-बुद्धि नष्ट हो गई । राज्य और बच्चों के मोह ने आँखों के अंधे धृतराष्ट्र के मस्तिष्क, हृदय और मन को भी अन्धा बना दिया । वह पथ-भ्रष्ट हो गये । कुरु-वंश की मर्यादा को, जिसका आदि-काल में माता देवयानी ने सूत्रपात किया था और जिसे भीष्म ने अप-नाया था, धृतराष्ट्र ने नष्ट करने का बीड़ा उठा लिया । त्याग का स्थान स्वार्थ ने ले लिया । कुरु-वंश की आधारशिला बदल गई । माता सत्यवती के रक्त का प्रभाव परिवार के जीवन-दर्शन में मुखरित होने लगा । स्वार्थप्रिय मनोवृत्ति ने व्यापक दृष्टिकोण का गला घोंट दिया । भीष्म का वह त्याग, जिसमें उसने अपने जीवन के स्वर्ण-युग को पिता की कामुकता और विमाता की स्वार्थलिप्सा पर न्यौछावर किया था, एक ओर मौन खड़ा रह गया ।

धृतराष्ट्र के चारों ओर दुर्योधन ने ऐसा विषाक्त वातावरण पैदा कर दिया कि वह सही दिशा में नहीं सोच सकते थे । उन्हें दुर्योधन जो कुछ कहता था, वही सत्य प्रतीत होता था और फिर गांधारी का समर्थन प्राप्त करके उस पर सचाई की मुहर लग जाती थी । दुर्यो-धन के शब्दों में धृतराष्ट्र को उनका अपना रक्त बोलता दिखाई देता था ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कुन्ती ने राजमहलों के इस विषाक्त वातावरण से कुछ दिन के लिये मुक्ति पाने वारणावृत की उपत्यका में जाकर निवास करने का निश्चय किया।

दुर्योधन को इसका समाचार मिला तो वह प्रसन्नता से खिल उठा। वह यही चाहता था कि किसी प्रकार पाण्डव कुछ दिन के लिये हस्तिनापुर से बाहर चले जायें।

धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर को अपने पास बुलाकर बड़े प्यार से पूछा, 'बेटा युधिष्ठिर ! मैंने सुना है कुन्ती का मन वारणाव्रत की प्राकृतिक शोभा देखने और शिव-मन्दिर में पूजा करने का हो रहा है। तुम सब भी उसके साथ जाना चाहते हो। मैं यात्रा का सब प्रबन्ध किये देता हूँ। तुम प्रसन्नतापूर्वक वहाँ जा सकते हो।'

युधिष्ठिर को धृतराष्ट्र के सामने 'हाँ' करनी पड़ी, परन्तु उन्हें वारणाव्रत भेजने में धृतराष्ट्र और दुर्योधन की इतनी शीघ्रता देख कर वह कुछ चिन्तित से हो गये। वह समझ गये कि इसमें अवश्य उनकी कोई गहरी चाल है।

दुर्योधन ने अपने पुराने मंत्री पुरोचन को बुलाकर आज्ञा दी, 'पुरोचन ! तुम तुरन्त एक तीव्रगामी घोड़ों का रथ लेकर वारणाव्रत जाओ और वहाँ जाकर एक ऐसे लाक्षगृह का निर्माण कराओ जो एक क्षण में भस्म हो जाये। इस कार्य को पूर्ण करने पर तुम्हें प्रधानमंत्री बनाया जायेगा।'

प्रधानमंत्री बनने के प्रलोभन में पुरोचन तुरन्त वारणाव्रत के लिये प्रस्थान कर गये और पाण्डवों के वहाँ पहुँचने से पूर्व उन्होंने एक लाख का महल बनवा दिया। महल बनवा कर पुरोचन वापिस हस्तिनापुर लौट आये।

माता कुन्ती ने अपने पाँचों पुत्रों सहित वाररणाव्रत के लिये प्रस्थान किया। हस्तिनापुर की जनता और महात्मा विदुर को पाण्डवों का

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इस प्रकार हस्तिनापुर से जाना अच्छा न लगा। वे कौरवों की चाल को समझते थे। वे समझ गये कि धृतराष्ट्र उनके प्रभाव से आतंकित हैं और उन्हें हस्तिनापुर से बाहर भेजना चाहते हैं।

प्रजा-जनों ने माता कुन्ती और युधिष्ठिर से चलते-चलते हस्तिनापुर न छोड़ने का आग्रह किया। महात्मा विदुर का भी मत यही था परन्तु युधिष्ठिर अपने ताऊ धृतराष्ट्र से कह आये थे कि वह जा रहे हैं। वह अपना वचन तोड़ कर व्यर्थ उनके मन में किसी प्रकार की शंका पैदा नहीं करना चाहते थे। वह हाथ जोड़कर प्रजा-जनों और महात्मा विदुर से बोले, 'कौरवों की चाल को मैं भली प्रकार समझ रहा हूँ, परन्तु मैं वचन भंग नहीं करूँगा। यह मेरी प्रतिष्ठा के प्रतिकूल होगा और ताऊजी को सशंकित करेगा।'

सब लोग धर्मराज युधिष्ठिर के समक्ष नतमस्तक हो गये। महात्मा विदुर ने उन्हें आशीर्वाद दिया और रथ चल पड़ा। प्रजा-जनों के नेत्र सजल थे।

लम्बी यात्रा तै करके पाण्डव वारणाव्रत पहुँचे। पुरोचन वहाँ अपने अनुचरों के साथ पहिले से ही विराजमान थे। पाण्डवों ने खुले मैदान में ही ठहरने की इच्छा प्रकट की, परन्तु पुरोचन ने उनसे लाक्षागृह में ठहरने का अनुरोध किया। पुरोचन का आग्रह युधिष्ठिर को दुराग्रह-सा प्रतीत हुआ। इससे उनके मन का संदेह और बढ़ गया परन्तु कोई रहस्य उनकी समझ में नहीं आया। कौरवों ने क्या षड्यन्त्र रचा था उसका भेद उन पर नहीं खुला। वह चुपचाप गतिविधि को देखते रहे।

एक दिन जब पुरोचन सो रहा था तो युधिष्ठिर और भीम ने लाक्षागृह का परीक्षण किया। उन्होंने देखा लाक्षागृह के लाख की दुर्गन्ध को दबाने के लिये उसकी दीवारों पर कोई सुगन्धियुक्त पदार्थ पुतवा दिया गया था।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

यह देखकर भीम को बहुत क्रोध आया, परन्तु युधिष्ठिर ने उन्हें शान्त कर दिया। उन्होंने कहा, 'पुरोचन पर यह रहस्य प्रकट नहीं होना चाहिये कि हम लोगों को इस कुचक्र का पता चल गया है।'

महात्मा विदुर ने गुप्त रूप से लाक्षागृह के नीचे एक सुरंग खुदवा दी थी। पाण्डव रात्रि में उसी सुरंग में सोते थे और दिन में शिव-मंदिर के दर्शन करने के लिये चले जाते थे।

युधिष्ठिर ने वहाँ की जनता को भी अपने व्यवहार से प्रभावित कर लिया था। संध्या-समय अनेकों लोग उनके दर्शन करने को आने-लगे थे। पुरोचन युधिष्ठिर के इस बढ़ते हुए प्रभाव को देखकर आतंकित था। वह दुर्योधन को वहाँ की सूचना भेजता रहता था।

पुरोचन का जो दूत दुर्योधन के पास पुरोचन की सूचना लेकर जाता था, वह पहिले महात्मा विदुर को सूचना देता था और फिर जाकर दुर्योधन से भेंट करता था। इसी प्रकार जो दूत दुर्योधन का सन्देश पुरोचन के पास ले जाता था, वह विदुर को सब कुछ बताकर तब वारणाव्रत जाता था। महात्मा विदुर दुर्योधन के षड्यन्त्र को समझ चुके थे।

आज इस दूत ने महात्मा विदुर को सूचना दी कि उसके वारणा-व्रत पहुँचने के एक दिन पश्चात् महल को भस्म कर दिया जायेगा। विदुर ने उस दूत के प्रस्थान करने से पूर्व अपने विशेष दूत को वार-णाव्रत भेज दिया। दूत ने युधिष्ठिर को षड्यन्त्र की सूचना दी।

महल में आग लगाये जाने वाले दिन युधिष्ठिर ने पुरोचन से प्रेम पूर्वक कहा, 'मन्त्री जी! दूर-दूर तक सूचना भिजवा दो ताकि लोग अधिक संख्या में एकत्रित होकर धर्म-चर्चा सुनें। हमारा विचार यहाँ काफ़ी दिन ठहरने का है।'

'जो आज्ञा धर्मराज!' कह कर पुरोचन चला गया। उसने मुस्करा-कर अपने मन में कहा, 'आज इस बेचारे को और धर्म-चर्चा कर लेने

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दो। रात्रि में तो इसे भस्म ही हो जाना है।' वह एकान्त में अपनी सफलता पर हँस दिया।

संध्या समय लाक्षागृह के समक्ष प्रजा-जन बहुत बड़ी संख्या में एकत्रित हुए। युधिष्ठिर ने अपने मधुर उपदेश की सब पर अमृत-वर्षा की। श्रोतागण मंत्र-मुग्ध होगये। प्रजा-जनों के हृदयों में पाण्डवों के प्रति अगाध श्रद्धा उत्पन्न होगई। वे सब आनन्द-विभोर थे।

सभा समाप्त होने पर युधिष्ठिर ने पुरोचन से कहा, 'मंत्री महोदय! हम लोग अब विश्राम के लिये जारहे हैं।' वह बातें करते-करते पुरोचन को भी अपने साथ महल में ले गये। उन्होंने अपनी सरलता से उसे जता दिया कि उन्हें उसके षड़यन्त्र का कोई ज्ञान नहीं है और वे उसकी चाल से पूर्ण अनभिज्ञ हैं।

पुरोचन के जाने पर महल के सब द्वार बन्द कर दिये गये। द्वार बन्द करके युधिष्ठिर वहाँ से चले तो माता कुन्ती तथा अपने भाइयों से बोले, 'तुम सब लोग तुरन्त मेरे पीछे-पीछे चले आओ। आज रात्रि को यह महल भस्म कर दिया जायेगा। भीम! तुम माता कुन्ती को अपनी पीठ पर उठा लो।'

युधिष्ठिर ने सुरंग का द्वार खोला और माता कुन्ती के साथ पाँचों भाइयों ने उसमें प्रवेश करके सुरंग का द्वार धीरे से बन्द कर दिया। पाण्डव लाक्षागृह से बाहर निकल गये। भीम ने पुरोचन को सोता देखकर उसके शस्त्रागार में आग लगादी। शस्त्रागार और महल दोनों जलने लगे। भीम फिर सुरंग में चला गया और माता कुन्ती को अपने कन्धे पर उठा कर आगे बढ़ गया। पाण्डव बहुत तीव्र गति से आगे बढ़ते जारहे थे।

चन्द्रमा उदय हो चुका था। उसी के प्रकाश में युधिष्ठिर ने देखा वह व्यक्ति जो भिखारी-वेश में विदुर का सन्देश लेकर आया था, एक रथ लिये सामने खड़ा था। वह आगे बढ़ कर बोला, 'मुझे महात्मा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बिदुर ने भेजा है। आप सब रथ पर सवार हो जायें। मैं आपको यहाँ से दूर ले चलूँगा।"

पाँचों भाई माता कुन्ती के साथ रथ पर सवार हो गये। रथ तीव्र गति से चल पड़ा। सारथी ने रथ बड़ी कुशलता से हाँका और वे बहुत शीघ्र गंगा नदी के तट पर पहुँच गये।

वे गंगा नदी के किनारे पहुचे तो उन्हें एक छोटी-सी नौका मिली। उसके नाविक ने आगे बढ़ कर धर्मराज युधिष्ठिर को प्रणाम करके कहा, 'मुझे महात्मा विदुर ने आपको गंगा से पार उतारने के लिये भेजा है। आप नौका पर पधारें, मैं आपको पार उतार देता हूँ।"

पाण्डवों ने नौका पर चढ़कर गंगा नदी पार की और नाविक को पुरस्कार देकर आगे बढ़ गये।

पाण्डव गंगा नदी के पार पहुँचे तो वहाँ उन्हें महात्मा विदुर का भेजा हुआ दूसरा रथ मिला। वे उस पर चढ़ कर कौरवों के कुचक्र से बाहर निकल गये।

कुन्ती और पाण्डवों के मन महात्मा विदुर के प्रति श्रद्धा से भर गये। माता कुन्ती ने आँखों में आँसू भर कर कहा, 'महात्मा विदुर! आपने इन बच्चों की रक्षा इनके पिता के समान की है। मैं आजीवन आपका आभार नहीं भूल सकती।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

१४

माता कुन्ती के साथ पाँचों पाण्डव जंगलों के बीच यात्रा करते हुए आगे बढ़ रहे थे। यात्रा बहुत लम्बी थी और उन्हें बीहड़ वनों के बीच से होकर चलना पड़ रहा था। मार्ग में उन्हें कहीं कुछ खाने के लिये नहीं मिला। भूख और प्यास से सब त्रस्त हो रहे थे। थकान के कारण उनका आगे बढ़ना कठिन हो गया था। अन्त में वे सब थक कर एक वृक्ष की छाया में बैठ गये। अन्य सब को नींद आ गई, केवल भीम जागता रहा। भीम ने चारों ओर दृष्टि दौड़ा कर देखा तो पश्चिम-दिशा में उन्हें आकाश में कुछ जल-पक्षी उड़ते दिखाई दिये। भीम ने अनुमान लगाया कि वहाँ अवश्य कोई जलाशय होगा। प्यास से त्रस्त भीम उसी ओर को चल दिये।

कुछ दूर चलने पर भीम ने वहाँ एक सुन्दर जलाशय देखा। जलाशय के पास पहुँच कर भीम ने पहिले अपनी प्यास बुझाई और फिर किनारे पर रखा एक जल-पात्र भरा। उस पात्र को लेकर वह अपनी माता तथा भाइयों के पास आये। भीम ने सबको जल पिलाया उनके बदन में प्राणों का संचार हुआ। उन्होंने निकट में एक नगरी देखी। वह उस ओर संकेत करके बोले, 'जलाशय के पास झोंपड़ी में रहने वाला ब्राह्मण कह रहा था कि यहाँ एक अनार्य राजा हिडम्ब राज्य करता है। वह बहुत दुष्ट प्रकृति का है।' भीम यह कह ही रहे थे कि तभी उन्हें नगरी की ओर से एक रथ जलाशय की दिशा में आता दिखाई दिया।

रथ को देख कर सब की दृष्टि उस पर टिक गई। रथ बहुत तीव्र गति से उनकी ओर बढ़ता चला आ रहा था। रथ में दो घोड़े जुते हुए थे।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

महाबली भीम अन्य सब से आगे बढ़ कर सामने खड़े हो गये। उन्होंने देखा उस रथ में एक स्त्री बैठी थी। उस स्त्री के रूप ने भीम को प्रभावित किया। गौर वर्ण पर घन जैसी घुंघराली अलकें बिखरी हुई थीं।

रथ भीम के निकट आया तो उन्होंने देखा वह महिला भी एक टक उनकी ओर को देख रही थी। उस महिला ने अपना रथ भीम के निकट लाकर रोक दिया और रथ से उतर कर पूछा, 'आप लोग यात्री हैं ? थक गये मालूम देते हैं ? आप विश्राम चाहते हैं ? आप हमारी अतिथिशाला में चल कर विश्राम करें। मैं जलाशय में स्नान करके आती हूँ। आपको वहाँ भोजन की व्यवस्था मिलेगी।'

भीम माता कुन्ती और अपने चारों भाइयों के साथ नगरी की ओर चल दिये। वहाँ जाकर वे लोग अतिथिशाला में ठहरे। ग्राम छोटा ही था। वहाँ के सब नर-नारी माता कुन्ती और पाण्डवों को देखने के लिये एकत्रित हो गये। पाण्डवों के चारों ओर ग्राम-वासियों की भीड़ लग गई।

नगरी के प्रायः सभी निवासी विशालकाय थे। उनके बदन का गठन अच्छा था। वर्ण काला था। केवल हिडम्बा गौर वर्ण की थी।

माता कुन्ती अतिथिशाला में पहुँच कर युधिष्ठिर से बोलीं, 'युधिष्ठिर ! तुमने देखी वह लड़की। उसने अपना नाम हिडम्बा बताया था। कैसी लग रही थी वह भीम के पास खड़ी ?'

युधिष्ठिर माता कुन्ती का आशय समझ कर बोले, 'मैं सोच रहा था कि हम लोग घूमते-घूमते बहुत थक गये हैं। कुछ दिन यहीं विश्राम करें तो कैसा रहे ? कुछ दिन ठहरने के लि यहये स्थान अच्छा है। वह लड़की सम्भवतः यहाँ के राजा की लड़की है।'

तब तक वह महिला जलाशय से स्नान करके लौट आई। वह अतिथिशाला में पहुँची और अपने साथ अतिथियों के भोजनार्थ बहुत

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सी सामग्री ले गई। वह बोली, 'आप लोग पहिले भोजन करें। यहाँ तक आते हुए मार्ग में आपको कुछ खाने को नहीं मिला होगा।'

पाण्डवों ने भोजन किया। वह महिला वहीं बैठ गई। उसके नेत्र भीम पर टिके थे। किसी आकर्षण-शक्ति ने उसके नेत्रों को भीम के पौरुष से बाँध दिया था। वह एक-टक उनकी ओर देख रही थी।

भोजन के उपरान्त वह बोली, आप लोग अच्छे समय पर आये। महाराज हिडम्ब आज कल यहाँ नहीं हैं। उनकी अनुपस्थिति में जो अतिथि यहाँ आते हैं उनकी मैं कुछ सेवा कर पाती हूँ। महाराज हिडम्ब के रहते कोई बाहर का पक्षी भी यहाँ पर नहीं मार सकता। महाराज हिडम्ब बहुत ही निर्दय व्यक्ति हैं।'

कुन्ती कृतज्ञतापूर्वक उसकी ओर देख कर बोलीं, 'हिडम्ब से तुम्हारा क्या सम्बन्ध है बेटी ? क्या वह तुम्हारे पिता हैं ?''

कुन्ती के मुख से अपने लिये 'बेटी' शब्द सुन कर उस महिला के नेत्रों में आँसू आ गये। वह बड़ी ही दीन वाणी में बोली, 'मुझे ज्ञात नहीं मैं कौन हूँ। हिडम्ब मुझे अपनी बहिन कहता है, परन्तु मैं कभी-कभी उसे देख कर भयभीत हो जाती हूँ। वह नर-मांसभक्षी है। यहाँ उसकी उपस्थिति में जो कोई आ जाता है, वह उसे मार कर खा जाता है।

'नर-मांसभक्षी है !' आश्चर्यचकित होकर भीम ने कहा, 'तब अवश्य ही वह कोई दैत्य है।''

वह बोली, 'हाँ, वह अपने को दैत्य ही कहते हैं। मनुष्य के मांस से वह अग्नि की पूजा करते हैं। मैं देखती हूँ कि वह प्रति-वर्ष अग्नि की परिक्रमा करके एक मनुष्य का संहार करते हैं और फिर उसे देवि पर चढ़ा देते हैं। वह उसका माँस खाते हैं और उसका मुण्ड देवि को पहिना देते हैं। उनकी देवि के गले में बहुत से मुण्ड लटके हुए हैं उनकी बहुत भयंकर आकृति है। उन्हें देखकर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भय लगता है। उनके सामने कोई एक शब्द नहीं बोल सकता, परन्तु उन्होंने मुझे कभी कुछ नहीं कहा। मैं उनकी क्या हूँ, यह मैं नहीं जानती। जब से मुझे कुछ समझने और स्मरण रखने का ज्ञान हुआ है, तब से मैंने स्वयं को यहीं पाया है। मेरे आमोद-प्रमोद और नृत्य-संगीत का उन्होंने प्रबन्ध किया हुआ है। जब वह देवी की पूजा करते हैं तो मेरा नृत्य और संगीत होता है।'

'तुम नृत्य करना भी जानती हो।' कुन्ती ने पूछा।

'मैं बहुत सुन्दर नृत्य जानती हूँ और कंठ भी मेरा बहुत मधुर है।' उस प्रसन्नवदना ने कहा।

हिडम्बा बातें कुन्ती से कर रही थी, परन्तु दृष्टि उसकी भीम पर जमी हुई थी। उसे जो-जो कलाएँ आती थीं, वे सब प्रदर्शित करके वह भीम को मोहित कर लेना चाहती थी। उसकी वक्र दृष्टि स्पष्ट कह रही थी कि वह भीम पर मोहित हो चुकी थी।

भीम के नेत्र भी हिडम्बा के रूप-लावण्य पर अटक गये थे। हिडम्बा के बदन के सुडौल गठन को देख कर उनके मानस में उथल-पुथल-सी होने लगी थी। उनका हृदय अनायास ही हिडम्बा की ओर खिंचता जा रहा था। उन्हें वह बहुत आकर्षक प्रतीत हो रही थी। उसके अङ्ग का प्रत्येक भाग उन्हें अपनी ओर खींच रहा था।

हिडम्बा की दृष्टि भीम के नेत्रों पर गई तो दोनों के नेत्र अपलक हो गये। दोनों ने मौन भाषा में अपना-अपना प्रेमोपहार एक दूसरे को समर्पित कर दिया। दोनों के हृदय में रस की धारा बह चली। दोनों का बदन रोमांचित हो गया।

हिडम्बा के हृदय में हिलोरें उठने लगीं। उनके कंठ से मधुर संगीत फूट पड़ा। वह मुग्ध होकर नाचने लगी। हिडम्बा ने अपने मधुर संगीत से वहाँ के वायुमण्डल को आच्छादित कर दिया। चारों

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

दिशाएँ हिडम्बा के संगीत से स्वरमय हो गईं। वहाँ का वातावरण मधुर हो गया।

माता कुन्ती ने खड़ी होकर हिडम्बा को अपनी छाती से लगाया और प्रेमपूर्वक उसका मुख चूम लिया। वह बोलीं, 'हिडम्बा! हमें क्या पता था कि इस जंगल के मध्य बसी इस छोटी-सी नगरी में इतना सुन्दर पुष्प खिल रहा है। तुम्हारे संगीत और नृत्य ने मुझे मुग्ध कर लिया।'

उसी समय आकाश में घन-गर्जन के समान एक भयंकर नाद गूंजा। उस नाद ने नगरी और उसके निकटवर्ती वायुमण्डल को कम्पायमान कर दिया। नगरी में उपस्थित जन भय से काँपने लगे।

एक रथ तीव्र गति से दौड़ता हुआ दूर से आता दिखाई दिया। उसके ऊपर बैठा हुआ व्यक्ति, 'हिडम्बा, हिडम्बा' कह कर जोरों से चिल्ला रहा था। उसका भयंकर मुख रक्तवर्ण हो गया था। उसके नेत्र अङ्गारों की भाँति जल रहे थे।

हिडम्बा भयभीत होकर माता कुन्ती से लिपट गई। वह कातर वाणी में बोली, 'माता! भयंकर भूल हो गई। इस नृत्य और संगीत का प्रदर्शन करने की मुझे वर्ष में केवल देवी के समक्ष ही आज्ञा थी और वह तभी जब हिडम्ब अग्नि का पूजन करते हैं। हिडम्ब ने मेरा संगीत सुन लिया मालूम देता है। वह निश्चय ही मेरे प्राण ले लेंगे। वह मुझे जीवित नहीं छोड़ेंगे।' यह कह कर वह फूट-फूट कर रो पड़ी।

हिडम्ब का रथ सामने आ गया। वह रथ से उतर कर बोला, 'हिडम्बा! तूने नृत्य किया? तूने किसी को संगीत सुनाया? तूने देवी के नृत्य और संगीत को भ्रष्ट कर दिया।' यह कह कर उसने हिडम्बा का हाथ पकड़ कर उसे माता कुन्ती के पास से अपनी ओर खींच लिया। उसका बदन क्रोध से थर-थर काँप रहा था।

हिडम्ब के मुँह में क्रोध के कारण झाग भर आये थे। उसके नेत्र बाहर को निकले पड़ रहे थे। उसका बदन क्रोध से तिलमिला रहा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

था। उसके दाँत किटकिटा रहे थे। वह पागल-जैसा प्रतीत हो रहा था। उसकी समझने की शक्ति समाप्त हो गई थी।

वह आग-बगूला होकर बोला, 'दुराचारिणी हिडम्बा! तूने मेरी सौ वर्ष की तपस्या को भंग कर दिया। जिस पुष्प को मैं देवी पर अर्पित करने के लिये बीस वर्ष से संवार रहा था, मुझे पता नहीं था वह इस प्रकार धूल में मिल जायेगा। तूने घोर अपराध किया है। इसका प्रायश्चित मृत्यु-दण्ड के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

अपने पाप का प्रायश्चित करने के लिये उद्यत हो पापिष्ठा!' यह कह कर हिडम्ब ने हिडम्बा के बाल पकड़ कर उसे चारों दिशाओं में घुमाना आरम्भ कर दिया।

हिडम्ब का यह नीच कृत्य देखकर भीम के क्रोध का पारावार न रहा। वह मौन खड़े न रह सके। वह दो पग आगे बढ़कर बोले, 'नीच! छोड़ दे इस कन्या को। पापिन यह नहीं, तू है पापी। तेरी यह तपस्या पाप से पूर्ण है। तेरे पाप का प्याला भर चुका है। भोली-भाली अनजान कन्या पर अत्याचार करके तू देवी की पूजा करता है। इतना घृणित कार्य करके भी तू अपने को तपस्वी कहता है। तेरी तपस्या इस कन्या ने भंग नहीं की, तेरी तपस्या मैं भंग करता हूँ। अपने पाप का प्रायश्चित करने को उद्यत हो।' यह कह कर भीम हिडम्ब की ओर बढ़ गये।

भीम की ललकार सुनकर हिडम्ब बलबला उठा। वह हिडम्बा को छोड़कर पागल की तरह भीम पर झपटा और चाहा कि उसे चीर-फाड़ डाले, परन्तु भीम भूधर के समान उसके समक्ष खडे थे।

हिडम्बा भयभीत हो गई। वह खड़ी-खड़ी काँपने लगी। उसने चाहा कि वह हिडम्ब से जाकर लिपट जाये और कहे, 'तुम मुझे मार कर अपना क्रोध शान्त कर लो और इन्हें छोड़ दो। इनका इसमें कोई अपराध नहीं है।' परन्तु उसका आगे बढ़ने का साहस न हुआ। भय

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

से उसके नेत्र बन्द हो गये। वह अपने प्रेमी का वध अपनी आँखों से नहीं देख सकती थी।

भीम ने हिडम्ब की छाती पर जोर की लात मारी तो वह लड़खड़ा कर भूमि पर जा गिरा। भीम उसकी छाती पर जा चढ़ा और उसका जबाड़ा चीरकर उसकी जीभ पकड़ कर बोले, 'पापी कहीं के! एक स्त्री के केश पकड़ कर उसे चारों ओर घुमा कर तू अपने को बलवान् समझने लगा। अब तेरा अन्त निकट है।' भीम ने इतना कह कर एक ही झटके में हिडम्ब की जीव बाहर खींच ली। हिडम्ब ने तड़फ-तड़फ कर प्राण त्याग दिये।

हिडम्ब की मृत्यु से नगरी के जन-जीवन ने चैन की सांस ली। वे सभी लोग हिडम्ब के अत्याचारों से त्रस्त थे। उन्होंने पाण्डवों को अपने रक्षक के रूप में देखा।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हिडम्ब की मृत्यु के पश्चात् माता कुन्ती ने हिडम्बा के साथ भीम को विवाह करने की अनुमति प्रदान की। धर्मराज युधिष्ठिर ने भी अपनी अनुमति दे दी। अन्य सब भाई इस समाचार को प्राप्त कर प्रसन्नता से खिल उठे।

नगरी में विवाह की तय्यारियाँ होने लगीं। वहाँ के निवासियों ने नगरी को सजाया और सब लोग विवाह की तय्यारियों में जुट गये।

धूम-धाम के साथ विवाह-संस्कार सम्पन्न हुआ। विवाह के पश्चात् पाण्डवों ने कुछ दिन उसी नगरी में व्यतीत किये। हिडम्बा ने एक पुत्र को जन्म दिया, जिसका नाम घटोत्कच रखा गया।

पाण्डवों को वहाँ रहते लगभग एक वर्ष व्यतीत हो गया था। अब उन्होंने वहाँ से आगे बढ़ने का विचार किया। हिडम्बा भी साथ चलने को उद्यत हो गई। वह माता कुन्ती से लिपट कर हिडक-हिडक कर रोने लगी। वह बोली, 'माता! मैं यहाँ अकेली नहीं रहूँगी।'

भीम ने घटोत्कच को उसकी गोद में देकर कहा, 'हिडम्बा! तू अकेली नहीं है अब। यह बच्चा क्या मेरा प्रतिनिधि नहीं है। तू हमारे साथ चलकर क्या लेगी? हमें ज्ञात नहीं अभी और कहाँ-कहाँ भटकना होगा। हमारा भविष्य अंधकारपूर्ण है। हमारे समक्ष संघर्ष-ही-संघर्ष है।'

हिडम्बा स्थिरतापूर्वक बोली, 'जहाँ माता कुन्ती और प्राणनाथ भटकेंगे, मैं भी भटक लूँगी। मुझे आप अपने साथ चलने दें। मैं आपत्ति में भयभीत नहीं हूँगी।'

माता कुन्ती हिडम्बा को छाती से लगा कर बोलीं, 'बेटी हिडम्बा! तुम्हारी गोद में नवजात शिशु है। तुम्हारे पास यह पाण्डव-कुल की थाती है। इसकी सुरक्षा के लिये मेरा तुमसे यही अनुरोध है कि तुम

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

यहीं रहो और इस राज्य की व्यवस्था को सम्भालो। तुम्हारे चले जाने से यह छोटा सा वन-राज्य निराश्रित हो जायेगा। तुम्हें अपने बच्चे के भविष्य के विषय में सोचना चाहिये।

बड़ा होकर घटोत्कच यहाँ का राजा बनेगा।'

हिडम्बा ने नेत्रों में आँसू भरकर माता कुन्ती के चरण छुए और भारी मन से पाण्डवों को विदा दी। उसके नेत्रों से अश्रुओं की वर्षा हो रही थी।

पाण्डव मार्ग में आगे बढ़कर व्यास जी के आश्रम पर पहुँचे। वह तपस्या कर रहे थे। माता कुन्ती ने आगे बढ़कर उनके चरण छुए तो उन्होंने नेत्र खोलकर कुन्ती और पाण्डवों की ओर देखा। वह पाण्डवों को इस रूप में देख कर व्याकुल रहे।

व्यास जी को माता कुन्ती ने अपनी करुण-कथा सुनाई। उन्हें यह सुनकर महान् कष्ट हुआ। वह गम्भीर वाणी में बोले, 'कुन्ती! तुम्हारी कथा सुनकर मेरा हृदय विदीर्ण हो गया है। यह हृदय तुम्हारे और तुम्हारे बच्चों पर पड़े अपार कष्ट को देखकर विदीर्ण नहीं हुआ। मेरा हृदय कुरु-वंश के उस आभाग्य पर विदीर्ण हो रहा है, जिसके कारण उसका सर्वनाश मेरी आँखों के समक्ष स्पष्ट दिखाई दे रहा है। इस वंश के पुर्खा आज तक इसे त्याग और प्रेम का पाठ पढ़ाते आये हैं। उन्होंने त्याग की भट्टी में अपने जीवन झोंक दिये हैं। उस त्याग और तपस्या के ब्रह्मचारी भीष्म ज्वलंत उदाहरण हैं। माता देवयानी का नाम भी तुम्हें भूला न होगा।' व्यास जी कहते-कहते रुक गये। वह कुछ सोच कर बोले, 'मैं देख रहा हूँ कुन्ती! इस वंश की शिराओं में जो रक्त प्रवाहित हो रहा है उसमें माता देवयानी का अंश नहीं रहा। यह माता शर्मिष्ठा और सत्यवती का रक्त है, जिसमें द्वेष और स्वार्थ भरा हुआ है। यह महाभारत का श्री गणेश है। भयंकर युद्ध होगा कुन्ती? इतना भयंकर कि जिसकी तुम कल्पना भी नहीं कर सकती।'

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

'क्या कहा महाराज, महाभारत ? मैं अपने बच्चों को लेकर इस प्रकार भटक रही हूँ तो क्या मैं महाभारत की घोषणा कर रही हूँ ?' माता कुन्ती ने कातर वाणी में कहा ।

व्यास जी मुस्कराकर बोले, 'तुम महाभारत की घोषणा नहीं कर रहीं कुन्ती ! परन्तु तुम्हारे अन्दर मैं वह सन्तोष भी तो नहीं देख रहा जो माता देवयानी में था । सुन्दर वनस्थली के छोटे से राज्य से तुम्हें सन्तोष नहीं हुआ । तुमने अपने पुत्रों के बाहुबल पर भरोसा करके यहीं पर अपने राज्य का विस्तार करने का प्रयास नहीं किया ? तुम्हारे नेत्र हस्तिनापुर के विशाल राज्य और उसकी आधी सम्पत्ति पर टिके हुए हैं । तुम्हारी इस चिंता में क्या कहीं माता देवयानी की छाया भी है ? सच कहो, क्या तुम्हारे अन्दर त्याग की भावना है ?'

महात्मा व्यास की बात सुनकर कुन्ती लज्जित हो गईं ।

व्यासजी बोले, 'तीर धनुष की प्रत्यंचा से छूट चुका है कुन्ती ! तुम्हारे साथ भयंकर अन्याय हुआ है, इसमें कोई सन्देह नहीं । महाराज पाण्डु की मृत्यु ने कुरु-वंश को इस दुर्भाग्य की कीचड़ में धकेल दिया । धृतराष्ट्र अंधे हैं और अंधे ही बने रहे । उनके ज्ञान-चक्षु नहीं खुले ।

दुर्योधन जैसे मन्दमति पुत्र ने इस कुल में जन्म लेकर धृतराष्ट्र का मन लोभ में लिप्त कर लिया है । इसे कुरु-वंश का दुर्भाग्य नहीं तो क्या कहूँ ? भवितव्यता इस वंश के सिर पर चढ़ कर बोल रही है । मेरे लिये कौरव और पाँडव समान हैं । चलो मैं तुम्हें निकट की एक नगरी में छोड़ आता हूँ । वहाँ तुम एक ब्राह्मण के यहाँ गुप्त वेश में रहना । शीघ्र ही तुम्हारा भाग्य उदय होगा ?'

पाण्डव व्यास जी के साथ एकचक्रा नगरी में गये और गुप्तवेश में एक ब्राह्मण के यहाँ रहने लगे । वहाँ कोई यह नहीं जान पाया कि वे पाण्डव थे । सब लोग यही समझते रहे कि वे व्यास जी के कोई शिष्य हैं ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

एकचक्रा हिडम्ब के ही समान एक अनार्य राज्य की नगरी थी। उसका राजा वक बड़ा आतंकी था। वह मानव-माँस का भक्षण करता था। उसका जिस व्यक्ति पर हाथ पड़ जाता था वह उसी को पकड़ कर ले जाता था।

इस नगरी के निवासियों ने वक के पास सन्देश भेजा कि वे प्रति सप्ताह उसके पास अपना एक आदमी भेज दिया करेंगे। नगर-निवासियों के इस निर्णय पर वक ने नगर पर नित्य आक्रमण करना बन्द कर दिया था क्योंकि अब बिना प्रयास ही उसे आहार स्वरूप एक आदमी मिल जाता था।

संध्या समय कुन्ती ने देखा कि ब्राह्मण-कुल में सब लोग रो रहे थे। यह देखकर कुन्ती का मन द्रवित हो गया। उनसे उन्होंने रोने का कारण पूछा तो ब्राह्मणी ने वक के लिये दी जाने वाली अपने पति की भेंट की कथा सुनाई। उसने बताया कि उस दिन उसके पति को वक के आहार के निमित्त जाना है। माता कुन्ती बोलीं, 'आप चिंता न करें। मेरे पाँच पुत्र हैं। मैं आपके पति के स्थान पर कल अपने एक पुत्र को वक की भेंट-स्वरुप भेज दूँगी। इससे आपके पति के प्राणों की रक्षा हो जायेगी। आपने हमें अपने घर में शरण दी है तो हमें भी आपके साथ सहानुभूति रखनी चाहिये।'

माता कुन्ती की बात सुनकर ब्राह्मणी कातर वाणी में बोली, 'ना बहिन! यह मैं कभी नहीं होने दूँगी। अपनी रक्षा के लिये मैं तुम्हारे पुत्र की भेंट स्वीकार नहीं करूँगी। तुम लोग हमारे अतिथि हो। अतिथि भगवान्-तुल्य होता है। मैं यह पाप कभी नहीं कमाऊँगी।'

माता कुन्ती बोलीं, 'तुम घबराओ नहीं बहिन! मेरे बच्चे को

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वक नहीं मार सकता। मेरा एक-एक बच्चा ऐसे हजारों वकों को मौत के घाट उतार सकता है।' माता कुन्ती ब्राह्मणी को यह आभास नहीं देना चाहती थीं कि वे लोग कौन हैं, फिर भी इतनी बात उनके मुख पर आ ही गई।

माता कुन्तीं ने भीम को वक की कथा सुनाई और वक के पास जाने को कहा। भीम मस्ती में झूमते हुए उधर चल दिये।

भीम के चारों भाई जब संध्या को घर लौटे और उन्हें पता चला कि माता कुन्ती ने भीम को वक के पास भेज दिया है तो उन्हें बहुत चिंता हुई। वे चिन्तित हो गये और तुरन्त भीम की सहायता के लिये चल पड़े।

माता कुन्ती से विदा होकर भीम वक के बागीचे में जाकर घुस गये। उसमें अच्छे-अच्छे फल लगे थे। भीम ने पेड़ों को हिला-हिलाकर फल खाने आरम्भ कर दिये। वह केवल फल ही नहीं खा रहे थे, वरन् उसके बाग को उजाड़ भी रहे थे।

यह देख कर वक गरजकर बोला, 'धूर्त कहीं के, तूने हमारा सारा बाग उजाड़ डाला। बता तू कौन है? तुझे अभी यमपुरी पहुँचाता हूँ। तू यहाँ किस लिये आया है? तेरा क्या अभिप्राय है यहाँ आने का?'

वक की क्रोधपूर्ण बात सुनकर भीम बोले, 'महाराज! मैं एक-चक्रा नगरी का निवासी हूँ। मुझे आपके आहार के लिये यहाँ भेजा गया है। मैंने आज भोजन नहीं किया था। यहाँ फल लगे देखकर मैंने सोचा कि पहिले पेट भर कर तब आपके पास आऊँ। मैं भूख से तड़पता हुआ आपके पेट में चला जाता तो आपकी भूख शांत होने के बजाये और भड़क उठती।'

भीम की बात सुन कर वक क्रोधपूर्ण वाणी में बोला, 'धूर्त्त कहीं के! हमारे साथ उपहास करता है। इधर आ हमारे पास, हम तेरी भूख अभी शांत कर देते हैं।'

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वक भीम पर झपटा तो भीम पेंतरा काट कर एक ओर हट गये और वक उस बरगद के पेड़ से जा टकराया, जिससे कमर लगाये भीम खड़े मुस्करा रहे थे। बहुत मोटा बरगद का वृक्ष था।

बरगद से टकरा कर वक के माथे में रक्त झलक आया। तब तक भीम दूसरे वृक्ष से कमर लगा कर जा खड़े हुए। भीम हँस कर बोले, 'महाराज ! आपके बागीचे के फल बहुत मीठे हैं। ऐसे फल मैंने पहिले कभी नहीं खाये।"

तब तक नगर के लोग वहाँ एकत्रित हो गये। वक के पेड़ से टकराने और भीम को पेंतरा काटते देखकर सबके हृदय प्रसन्नता से खिल उठे। वक के अत्याचारों से नगर के निवासी तृस्त हो चुके थे। उन्हें नित्य ही अपने किसी-न-किसी स्वजन की उसे भेंट देनी होती थी और जब-तब वह किसी का भी पकड़ कर भक्षण कर लेता था। वह जब भी नगर में प्रवेश करता था तो किसी-न-किसी बच्चे या युवक को गाजर-मूली की तरह तोड़-मरोड़ डालता था। उसका सामना करने का किसी में साहस नहीं था।

पेड़ से टकरा कर वक पागल हो गया। भीम के शब्दों ने उसके घायल अंगों पर नमक का काम किया। वक तड़फड़ा कर फिर भीम पर झपटा। यह देख कर नागरिक आतंकित हो गये, परन्तु भीम उसी प्रकार खड़े रहे। वह अपने स्थान से तनिक भी न हिले। वह खड़े-खड़े फल खाकर मुस्करा रहे थे।

वक उनके पास आया तो भीम फिर पेंतरा काट कर एक ओर हट गये और वक दूसरे वृक्ष के तने से जा टकराया। वक की टक्कर से वह वृक्ष जड़मूल से उखड़ कर भूमि पर गिर पड़ा। वक अपने को न सँभाल सका। वह भी वृक्ष के ही साथ भूमि पर मुँह के बल जा गिरा।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

गिरने से वक के मुँह के सब दाँत पथरीली भूमि पर टकराकर झड़ गये। उसका मुँह लोहू-लुहान हो गया। भीम ने आगे बढ़ कर उसकी कमर की हड्डी पर अपने पैर की ऐड़ी से ऐसा भीषण प्रहार किया कि उसकी हड्डी कड़ाक से टूट गई। वह फिर ऊपर न उठ सका। उसकी आखें फटी-की-फटी रह गईं। वह भूमि पर पड़ा-पड़ा तडफने और चिल्लाने लगा परन्तु वहाँ उसका कोई सहायक नहीं था। सब लोग यही चाहते थे कि किसी तरह उसका पाप कटे।

नगर-निवासियों ने हर्ष-ध्वनि की। वहाँ की प्रजा ने महाबली भीम का जय-नाद किया। उन्होंने उनके गले को पुष्प-मालाओं से भर दिया।

तब तक भीम के चारों भाई भी वहाँ आ गये। उनके पीछे-पीछे माता कुन्ती आ रही थी। भीम के पराक्रम को देखकर सबके हृदय आनन्दविभोर हो गये। नगर-निवासियों ने पाण्डवों का अपने रक्षक के रूप में सम्मान किया परन्तु पाण्डवों ने फिर भी अपना भेद किसी को न दिया। वे उसी प्रकार अज्ञात वेश में ब्राह्मण के घर रहते रहे।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

एक दिन ब्राह्मण के घर एक पांचाल देश का यात्री आया। भोजन से निवृत्त होकर ब्राह्मण और अतिथि इधर-उधर की बातें करने लगे।

सब सो गये थे, केवल अर्जुन जग रहा था। उसे नींद नहीं आई थी। वह उनकी बातें सुनने लगा। उनकी बातें उसे बहुत दिलचस्प मालूम दीं।

पांचाल देश के वैभव का वर्णन करने के पश्चात् अतिथि बोला, 'आजकल पांचाल देश में पांचाली के स्वयंम्वर की बड़ी धूम है। देश देशान्तरों के राजाओं को आमंत्रित किया गया है। दूर-दूर के राजे-महाराजे उसमें सम्मिलित होने के लिये आ रहे हैं। नगर में आजकल राजे-महाराजों की भीड़ है।'

ब्राह्मण बोला, 'पंडित ! सुना है पांचाली जैसी रूपवती कन्या भारत में नहीं है। हमने तो बड़ी प्रशंसा सुनी है उसके रूप की।"

"तभी तो उस पर रीझ कर सब राजे भौंरों के समान मँडराते हुए आ रहे हैं। परन्तु राजा ने स्वयम्वर की शर्त इतनी कड़ी लगादी है कि बिरले ही उस ओर बढ़ने का साहस कर सकेंगे। सरल नहीं है, पांचाली को प्राप्त करना।'

'ऐसी क्या शर्त लगादी है महाराज ?' ब्राह्मण ने पूछा।

'राजा ने एक खम्भे पर मछली टाँगदी है। उसके नीचे एक चक्र है, जो हर समय घूमता रहता है। उसमें मछली की आँख के बराबर एक छिद्र है। उस खम्वे के नीचे एक तेल का बड़ा कढ़ाव रखा हुआ है। उस तेल में मछली की परछाईं पड़ती है। जो योद्धा उस तेल में पड़ने वाली परछांई को देखकर ऊपर खम्भे पर टंगी मछली की आँख बींध देगा, उसके साथ पांचाली का विवाह होगा। वह तीर उस चक्र के छेद

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

में से होकर मछली की आँख तक जायेगा। यह बड़ा कठिन कार्य है। इसे अर्जुन ही बींध सकता था, परन्तु उसका कहीं पता नहीं है।'

अर्जुन ने पांचाल में होने वाले पांचाली के स्वयंवर का वृतान्त सुना तो उसके मन में पांचाल जाने की आकांक्षा प्रबल हो उठी। अर्जुन ने पांचाली को कभी देखा नहीं था, परन्तु उसके रूप की प्रतिमा उसके नेत्रों में उतर आई। उसका मन पांचाली के स्वयंवर में अपना कौशल दिखाने के लिये व्यग्र हो गया।

वह रात्रि भर इस बात को अपने मन में लिये लेटा रहा। प्रातः काल होते ही वह माता कुन्ती और अपने भय्या युधिष्ठिर तथा भीम से बोला, 'हम लोग अब यहाँ नहीं रहेंगे भय्या! यह देश नितान्त दरिद्र है। रात्रि में मैंने इस अतिथि से सुना है कि पांचाल देश बहुत सम्पन्न है। हमें वहीं चलना चाहिये। हम अब व्यर्थ यहाँ रह कर समय नष्ट नहीं करेंगे।'

जब ये बातें चल रही थीं तभी व्यास जी वहाँ आ गये। पाँचों भाइयों तथा कुन्ती ने उन्हें सादर प्रणाम करके बैठने के लिये आसन दिया।

व्यासजी बोले, 'क्या बातें चल रही थीं कुन्ती?'

कुन्ती बोलीं, 'बच्चे यहाँ रहते-रहते ऊब गये हैं महामुनि! अर्जुन कह रहा है कि हम लोग पांचाल देश चलें। यह कहता है कि वह देश यहाँ से अधिक सम्पन्न है। क्या यह सच है?'

कुन्ती की बात सुनकर व्यास जी को हँसी आ गई। वह बोले, 'मैं जानता था कि यदि अर्जुन को यह सूचना मिल गई तो तीर उसकी प्रत्यंचा पर चढ़ गया होगा। उसके नेत्र मछली की आँख से बँध गये होंगे और उसके भुजदण्ड उसे बींधने को फड़कने लगे होंगे। उसने धनुष की प्रत्यंचा टंकार दी होगी।"

व्यासजी की बात सुनकर अर्जुन का प्रसन्न मुख नीचे झुक गया।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

गुरुजनों के समक्ष यह बात स्पष्ट नहीं कही जा सकती थी। वह व्यास जी का मंतव्य समझ गया, परन्तु अन्य किसी की समझ में कुछ न आया। वे सब व्यास जी की ओर देखते रहे।

माता कुन्ती ने प्रश्नवाचक दृष्टि से व्यास जी की ओर देखा। व्यास जी समझ गये कि पांचाली के स्वयंवर की सूचना केवल अर्जुन को ही है। वह मुस्कराकर बोले, 'जिसके मतलब की बात थी उस के कानों तक उसका स्वर अनायास ही पहुँच गया कुन्ती! पांचाल देश की राजकुमारी का स्वयंर हो रहा है। उसमें जो शर्त रखी गई है उसे अर्जुन के अतिरिक्त अन्य कोई पूरा नहीं कर सकता। मैं अर्जुन को आशीर्वाद देता हूँ कि वह इस कार्य में सफल होकर पांचाल देश की रूपवती कन्या को वधू स्वरूप ग्रहण करे। तुम लोगों को तुरन्त पांचाल देश के लिये प्रस्थान करना चाहिये।'

व्यास जी का आशीर्वाद प्राप्त कर अर्जुन का दिल खिल गया। कुन्ती और अर्जुन के चारों भाई पांचाल देश की यात्रा के लिये उद्यत हो गये। उन्होंने उसी समय प्रस्थान की तैयारी करनी आरम्भ करदी।

पाण्डवों के नगरी से प्रस्थान की सूचना वहाँ के जन-समुदाय में फैली तो सबको हार्दिक खेद हुआ। कुन्ती ने अपने जाने का कारण किसी पर व्यक्त नहीं किया। नगर-निवासियों ने एक बहुत बड़े समारोह में उन्हें विदा दी और आश्वासन दिया कि वहाँ के लोग सर्वदा उनके भक्त रहेंगे। वे सभी उन्हें अपना प्राण-रक्षक मानते थे। उन्होंने बक को मार कर उनके प्राणों की रक्षा की थी।

चलते समय उनके ऊपर पुष्पों की वर्षा की गई। पाँचों पाण्डव नगर-जनों से गले मिले। सभी के नेत्रों में प्रेमाश्रु उमड़ आये।

माता कुन्ती ने सब को सांत्वना दी और आश्वासन दिया कि उनका स्नेह उनके लिये सर्वदा बना रहेगा। उन्हें जब भी उनकी आवश्यकता होगी वे उनकी सहायता के लिये वहाँ आयेंगे।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पांचों पांडवों ने माता कुन्ती के साथ पांचाल देश के लिये प्रस्थान किया। गंगा किनारे उन्हें एक राज्य मिला, जिसका राजा चित्ररथ था। वह बाहर से आने वाले किसी भी व्यक्ति को गंगा से पार नहीं उतरने देता था। और उससे युद्ध करके गंगा को पार करने का किसी में साहस नहीं था।

पाण्डव वहाँ पहुँचे तो उन्हें गंगा किनारे पर पहरेदारों ने रोक लिया और चित्ररथ को उसकी सूचदा दी।

चित्ररथ के गंगा पार करने की आज्ञा न देने पर अर्जुन और चित्ररथ का युद्ध हुआ जिसमें चित्ररथ ने हार स्वीकार की और वह सर्वदा के लिये पांडवों का मित्र बन गया। दोनों में परस्पर मैत्री सम्बन्ध स्थापित हो गये।

चित्ररथ के कहने से पांडव धौम्य ऋषि के आश्रम पर गये। माता कुन्ती ने उनसे प्रार्थना की कि वह उनके पुरोहित बन कर उनके साथ चलें। उन्होंने सहर्ष यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। और उनके साथ पांचाल देश को चल दिये।

पांडव पांचाल देश में प्रवेश कर द्रुपदनगर पहुँचे। द्रुपदनगर में जाकर देखा तो वहाँ सचमुच स्वयंवर का निराला ही ठाठ था। चारों ओर गुणी नायक और गायिकाओं का संगीत लहरें भर रहा था। वाद्य-यत्रों का स्वर सब ओर सुनाई दे रहा था, नृत्य के घुँघरुओं का स्वर ताल के साथ वायुमण्डल में थिरक रहा था। यात्री और दर्शक उसे सुन कर मंत्र-मुग्ध हो रहे थे। उनके आगे बढ़ते हुए पग रुक जाते थे।

रंगभूमि की शोभा और भी निराली थी। राजे-महाराजाओं का जमघट लगा था। एक-से-एक राजा ठाठ-बाट के साथ स्वयं-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

 Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वर में आया था। प्रत्येक राजा यही सोचता था कि जाने उसके किस गुण पर पांचाली रीझ उठे और उसे जयमाला पहिना दे।

निश्चित दिन और समय पर स्वयंवर की कार्यवाही आरम्भ हुई। कितने ही वीर मछली को बींधने के लिये मैदान में आये, परन्तु सब अपना सा मुँह लेकर वापिस लौट गये। उनमें से एक भी लक्ष को न भेद सका।

यह देख कर पांचाली का भाई धृष्टद्युम्न चिन्तित हो, सभा में खड़ा होकर बोला, 'क्या हम समझें कि भूमि धनुर्धरों से रिक्त हो गई ? क्या इस मण्डप में एक भी ऐसा धनुर्धर नहीं है जो मछली की आँख को बींध सके ?'

धृष्टद्युम्न की चुभती बात सुनकर महाबली कर्ण आगे बढ़े और ललकार कर बोले, 'पृथ्वी वीरों से खाली नहीं हुई है धृष्टद्युम्न ! ऐसे-ऐसे सात चक्रों के छिद्रों के बीच से सात मछलियों की आँखें मैं अपनी आँखों पर पट्टी बाँध कर केवल नाद के आधार पर बींध सकता हूँ।' यह कहकर वह मण्डप के मध्य भाग में आ गया।

कर्ण आगे बढ़ा तो भीड़ में से आवाज आई, 'सारथी अधिरथ द्वारा पालित व्यक्ति, जिसके पिता का पता नहीं, इस प्रतियोगिता में भाग नहीं ले सकता। यह सभा में उपस्थित राजाओं का अपमान है।'

यह आवाज पांचाली के कानों तक पहुँची तो उसने स्वयं मंच पर आकर घोषणा की, 'मैं अविवाहित रहना उचित समझूँगी, परन्तु सारथी-पुत्र से विवाह नहीं कराऊँगी। यह कार्य मेरी प्रतिष्ठा के प्रतिकूल होगा।'

पांचाली की इस घोषणा ने कर्ण को अपमानित कर दिया। वह चुपचाप अपने आसन पर जाकर बैठ गया। सभा में फिर सन्नाटा छा गया। एक क्षण के लिये मौन छाया रहा।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अर्जुन अपने स्थान से उठा और स्तम्भ के पास पहुँचा। कुछ लोग अर्जुन की सूरत देख कर व्यंग से मुस्कुरा दिये। उसके ब्राह्मण-वेश को देख कर कुछ राजाओं ने उस पर व्यंग कसा, परन्तु उसका ध्यान उस ओर नहीं था। उसके नेत्र खम्भे पर घूमती हुई मछली पर टिके थे। उसने धनुष लेकर उसकी प्रत्यंचा को टंकारा और धनुष को संधान कर देखा।

एक वृद्ध ने आगे बढ़कर गम्भीर वाणी में कहा, 'ब्राह्मण-कुमार! प्रतीक्षा क्या है? आगे बढ़ो और मछली की आँख भेद कर पांचाली का वरण करो। मुझे लगता है तुम इस कार्य को कर सकोगे।'

अर्जुन ने उस वृद्ध की वाणी सुनते ही, धनुषबाण संधान लिया और तीर ताना। उसने एक बार उस ब्राह्मण की ओर देखा, जिसने उसका उत्साह बढ़ाया था और फिर अपने लक्ष्य की ओर बढ़े।

सभा सन्नाटे में थी। सब की दृष्टि अर्जुन पर टिकी थी। देखते ही-देखते अर्जुन ने बाण छोड़ा और तीर मछली की आँख में जा घुसी। स्वयम्वर की प्रतिज्ञा पूर्ण हो गई।

ब्राह्मण-कुमार द्वारा लक्ष्य भेद करने से जिन्हें निराशा हुई वे चिल्लाये, 'निशाना ठीक नहीं लगा।'

अर्जुन ने क्रुद्ध होकर दूसरा तीर मारा और मछली को काट कर भूमि पर गिरा दिया। वह सीना उभार कर बोला, 'अब तो ठीक है निशाना या तीसरा बाण छोड़ूँ।'

वृद्ध ब्राह्मण मण्डप के बीच आकर अर्जुन से लिपट गया और गम्भीर वाणी में बोला, 'धन्य हो वीर! तुमने पांचाली के स्वयम्वर को लाज रख ली। तुमने महाराज द्रुपद की प्रतिज्ञा पूर्ण की, अन्यथा बेचारे बड़ी चिन्ता में पड़ गये थे।'

पांचाली ने आगे बढ़कर अर्जुन के गले में जयमाला डाल दी। मण्डप हर्ष-ध्वनि से भर गया।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अर्जुन पांचाली को साथ लेकर चले तो कुछ राजाओं ने उनके सामने आकर धन का लालच दिखा कर कहा, 'ब्राह्मण ! तुम जितना धन चाहो ले लो और पांचाली को हमें दे दो। तुम इसका क्या करोगे ?'

अर्जुन मुस्करा दिया।

यह देख कर सब राजे मिलकर एक हो गये और सोचा कि उस निर्धन ब्राह्मण से पांचाली को बलपूर्वक छीन लें। उन्होंने अपने शस्त्र संभाले और मिलकर अर्जुन को ललकारा।

उनका ललकारना था कि अर्जुन ने धनुषबाण संभाल लिया। फिर क्या था ? भीड़ काई की तरह फट गई। जिधर अर्जुन की दृष्टि पड़ी उधर ही मैदान साफ हो गया।

अर्जुन पांचाली के साथ उस स्थान पर पहुँचे जहाँ कुन्ती और उसके भाई पाण्डव ठहरे हुए थे। दोनों ने माता कुन्ती, युधिष्ठिर और भीम के चरण छुए। पाण्डव-परिवार में माता कुन्ती, युधिष्ठिर भीम और कुन्ती का हृदय हर्ष से फूल गया। उन्हें अपना भविष्य उज्ज्वल दिखाई देने लगा। हस्तिनापुर से प्रस्थान करने के पश्चात् यह प्रथम आशा-किरण उन्हें दिखाई दी। उन्होंने पांचाली को अपनी छाती से लगाया और अर्जुन को आशीर्वाद दिया। युधिष्ठिर और भीम ने अर्जुन को गले लगा लिया।

तभी कृष्ण और बलराम वहाँ आ गये। कृष्ण बलराम को देख कर माता कुन्ती के आनन्द का पारावार न रहा। उन्होंने दोनों को दुलार करके अपने पुत्रों से उनका परिचय कराया।

युधिष्ठिर बोले, 'महाबाहो ? आपने स्वयम्वर में अर्जुन को इस वेष में भी पहिचान लिया।'

कृष्ण हँसकर बोले, 'भाई युधिष्ठिर ! कृत्रिम वेश में क्या कभी पाण्डव छिप सकते हैं ? लाल गुदड़ी में रहने पर भी लाल ही रहता है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

परन्तु भाई ! मेरा प्रयास पूर्ण सफल रहा ।'

"इसमें कोई संदेह नहीं भय्या ! आपके वेश को देख कर किसी को किंचितमात्र भी शंका न हुई कि आप कृष्ण हैं ।' अर्जुन बोला।

माता कुन्ती ने कृष्ण बलराम को अपने संकट-काल की कहानी सुनाई तो कृष्ण ने कहा, 'मुझे सबसे अधिक घृणा कौरवों से तब हुई जब मैंने लाक्षागृह का समाचार सुना । मेरा हृदय उनके प्रति ग्लानि से भर गया । महात्मा विदुर से जब मुझे आपके बच कर निकलने का समाचार मिला तो हार्दिक संतोष हुआ । आप किसी बात की चिंता न करें । अन्तिम विजय सत्य की होगी । सत्य पर असत्य की विजय नहीं हो सकती ।"

कृष्ण की बात सुन कर कुन्ती के नेत्रों में जल भर आया ।

धृष्टद्युम्न अपने पुरोहित को लेकर वहाँ आया । उसने उपस्थित सज्जनों को सादर प्रणाम करके कहा, 'गुरुजनो ! स्वयम्वर में अर्जुन ने मेरी बहिन पांचाली का वरण किया, परन्तु अभी शास्त्रोचित पाणिग्रहण-संस्कार नहीं हुआ है । उसके लिये पिताजी ने आप सब को सादर आमंत्रित किया है ।'

माता कुन्ती ने महाराज द्रुपद का निमंत्रण स्वीकार कर लिया । सब लोगों ने द्रुपदनगर में प्रवेश किया । महाराज द्रुपद और उनकी महारानी ने पाण्डवों का नगर-द्वार पर स्वागत किया । माता कुन्ती और पांचाली को रनिवास में ले जाया गया । कृष्ण, बलराम और पाँचों पाण्डवों ने राजदरबार की ओर प्रस्थान किया ।

रात्रि में पाणिग्रहण-संकार सम्पन्न हुआ ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कृष्ण और बलराम द्रुपदनगर से हस्तिनापुर पहुँचे और महात्मा विदुर को सूचना दी, "महात्मा विदुर ! आपके भतीजे अर्जुन ने पांचाली को स्वयंम्वर में वरण कर कुरु-वंश का नाम उज्जवल कर दिया। स्वयंवर की प्रतियोगिता में उन्होंने भारत के सब राजाओं को परास्त किया है।'

महात्मा विदुर हर्षित होकर बोले, 'यह मैं क्या सुन रहा हूँ कृष्ण? क्या अर्जुन ने पांचाली को वरा है ? मैं सोच तो यही रहा था कि वह ब्राह्मण वेशधारी मेरा अर्जुन ही होगा, परन्तु मन सशंकित-सा हो रहा था। भाभी कुन्ती और पाण्डव सब कुशलपूर्वक तो हैं। इधर जब भीम ने बक का संहार किया था तब से मुझे उनका कोई समाचार नहीं मिला।'

महात्मा विदुर को कुशल-समाचार देकर श्रीकृष्ण और बलराम वहाँ से मथुरा चले गये। वे हस्तिनापुर में अन्य किसी से नहीं मिले।

महात्मा विदुर ने यह समाचार दादा भीष्म और द्रोण को दिया तो भीष्म और द्रोण को आनन्द हुआ। माता सत्यवती इस समाचार को पाकर कमल-पुष्प के समान खिल गई। उनका मन पाण्डवों के अज्ञात् हो जाने के कारण बहुत दुःखी रहता था।

कुन्ती और पाण्डवों के वारणाव्रत चले जाने पर माता अम्बालिका का महल सूना हो गया था। जब उन्हें यह समाचार मिला कि लाक्षागृह में उनका पूरा परिवार जल कर भस्म हो गया तो उनका जीवन निराधार हो गया था। तब से वह निष्प्राण सी पड़ी रहती थीं। आज महात्मा विदुर ने उन्हें यह समाचार दिया तो उन्हें लगा मानो उनकी सूखी हुई खेती फिर से लहलहा उठी। उस पर अमृत की वर्षा हो गई।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

यह समाचार हस्तिनापुर की जनता को प्राप्त हुआ तो उसके आनन्द का पारावार न रहा। नगर में स्थान-स्थान पर उत्सव होने लगे। जनता की यह स्थिति देखकर दुर्योधन भयभीत हो गया। उसे लगा कि जनता उससे विद्रोह कर रही है। उसने अपने मंत्री को आज्ञा दी, 'नगर में होने वाले उत्सवों को बन्द कर दिया जाये। पाण्डवों के हितैषियों पर कड़ी दृष्टि रखो।'

महात्मा विदुर महाराज धृतराष्ट्र के पास गये तो वह बोले, 'भाई विदुर, कहिये कैसे पधारना हुआ? आपको हमारे राज्य में कोई कष्ट तो नहीं है? मेरे योग्य कोई सेवा हो तो कहिये।'

'आप जैसे धर्मात्मा भाई और सम्राट को प्राप्त कर कष्ट का क्या कारण? मैं आज आप को वह शुभ समाचार देने आया हूँ जिसे सुन कर आप गद्-गद् हो जायेंगे। आपके भतीजे पाण्डव लाक्षागृह के अग्निकाण्ड से बच गये थे। अर्जुन ने द्रुपदनगर में जाकर प्रतियोगिता में पांचाली का वरण किया है। कुरु-कुल की प्रतिष्ठा को उसने बढ़ा दिया।'

महात्मा विदुर की बात सुनकर धृतराष्ट्र बोले, 'करण ने पांचाली को वर लिया। करण बड़ा प्रतापी वीर है। वह तो वर ही लेता। महात्मा विदुर! मुझे इसमें कोई शंका नहीं थी।'

महात्मा विदुर धृतराष्ट्र की कुटिलता को भाँप कर बोले, 'महाराज! करण ने नहीं, अर्जुन ने। कुन्ती और पाण्डव आजकल महाराज द्रुपद के अतिथि हैं। महाराज द्रुपद ने उन्हें हर प्रकार की सहायता देने का वचन दिया है।'

ये बातें चल ही रही थीं कि तभी दुर्योधन वहाँ आ गया। वह बोला, 'पिताजी! मैं आपसे कुछ आवश्यक बातें करना चाहता हूँ। वे बातें मैं विदुरजी के सामने नहीं कर सकता।'

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दुर्योधन का यह कहना था कि महात्मा विदुर खड़े होकर बोले, 'मैं जा रहा हूँ भैय्या ! मैं तो आपको केवल यह समाचार देने आया था। मुझे अन्य कोई काम नहीं है। आप प्रिय पुत्र दुर्योधन से गुप्त मंत्रणा करें।'

महात्मा विदुर के चले जाने पर दुर्योधन बोला, 'पिताजी ! शत्रुओं का प्रभाव बढ़ता जारहा है। आज यह जानकर कि पाण्डव लाक्षागृह से सुरक्षित निकल भागे और अब अर्जुन ने पांचाली को स्वयम्वर में वर लिया है, नगर-निवासियों ने कई सभाएँ आयोजित कीं, उन सभाओं में पाण्डवों का गुणगान किया जाने वाला था। मैंने उन सभाओं पर प्रतिबन्ध लगा दिया। आपको सतर्क होकर इस समस्या पर विचार करना होगा। मैं भी चुप नहीं हूँ। मैंने बड़े-बड़े तांत्रिकों को बुलाया है। मैं उनसे पाण्डवों का विनाश करा दूँगा। मैं उन्हें हस्तिनापुर में नहीं आने दूँगा।'

दुर्योधन की कायरतापूर्ण बात सुनकर महाराज धृतराष्ट्र बोले, 'दुर्योधन ! तू ये बातें न करके यदि मुझसे युद्ध की आज्ञा माँगता तो मुझे प्रसन्न होती। तेरे कामों में मुझे कायरता और कुटिलता की दुर्गन्ध आती है।'

धृतराष्ट्र की बात सुनकर कर्ण, जो पास ही खड़ा था, बोला, 'महाराज ! हम पाण्डवों को युद्ध के लिये ललकारते हैं। पांचाली-स्वयम्वर में अर्जुन ब्राह्मण-वेश में छिपा रहा, वरना मैं उसे वहीं से जीवित न आने देता।'

महाराज धृतराष्ट्र बोले, 'यह बात मानी जा सकती है, परन्तु इसके लिये हमें दादा भीष्म, द्रोण और महात्मा विदुर की अनुमति लेनी होगी। हम अकेले इसका निर्णय नहीं ले सकते। हमें माता सत्यवती का आदेश मानना होगा।'

धृतराष्ट्र ने अपना यह मत भीष्म द्रोण और महात्मा विदुर के

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

समक्ष प्रस्तुत किया तो भीष्म के तन-बदन में ज्वाला प्रज्वलित हो गई। वह गम्भीर वाणी में बोले, 'धृतराष्ट्र ! तुम्हारे मुख से यह बात शोभा नहीं देती। यह तुम्हारे चरित्र को कलंकित करती है। क्या तुम्हारा अपने पाण्डु के पुत्रों के साथ यह व्यवहार होनाचाहिये ?

तुम्हारे पुत्र दुर्योधन की नीचता ने कुरु-वंश को कलंकित कर दिया है। भीम को विष देने और लाक्षाग्रह में पाण्डवों को जला डालने के नारकीय कृत्य करके तुम लोगों का मन शान्त नहीं हुआ ? पाण्डव सत्य और धर्म के मार्ग पर हैं, उनका विनाश तुम नहीं कर सकते। विनाश असत्य का होता है, सत्य का नहीं।

तुम्हें चाहिये कि तुम पाण्डवों को सम्मानपूर्वक पांचाल देश से बुलाओ और राज्य को दो भागों में विभक्त करके आधा राज्य पांण्डवों को दे दो। इसी में तुम्हारा हित है।'

द्रोण और महात्मा विदुर ने भी दादा भीष्म की बात का समर्थन किया। धृतराष्ट्र बात बदल कर बोले, 'मैं कोई कार्य आपकी सहमति के बिना नहीं कर सकता। अपने लड़के की नीचता पर मुझे स्वयं हार्दिक खेद है। मैंने आपके समक्ष युद्ध-प्रस्ताव रख कर अपने लड़कों का मत प्रकट किया था और यह बताया था कि उनकी विचारधारा किस ओर चल रही है। मैं स्वयं यह नहीं चाहता कि गृह-युद्ध हो।

इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि मैं उनका समर्थक हूँ।' यह कह कर धृतराष्ट्र ने परिस्थिति को अपने अनुकूल बनाने की चेष्टा की। वह बोले, 'होगा वही जो आप सब चाहेंगे। मैं पाण्डवों को कौरवों से कम प्रेम नहीं करता। मैं दोनों को समान समझता हूँ। उनके हितों की रक्षा के लिये मैं वही करूँगा जो आप आज्ञा करेंगे।

महात्मा विदुर से पांचाली-स्वयम्वर की सूचना प्राप्त कर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई। मैं शीघ्र ही द्रुपदनगर से कुन्ती पाँचों पाण्डव और पुत्र-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बधू पांचाली को लिवालाने का प्रबन्ध करता हूँ।'

महात्मा विदुर धृतराष्ट्र को भीष्म से अधिक समझते थे। उनका यह केंचुली बदलना देखकर वह मन में हँसे और सरल वाणी में बोले, 'महाराज ! हम जानते हैं कि आपके हाथों से कभी कोई ऐसा कार्य नहीं हो सकता जो कुरु-वंश की प्रतिष्ठा को आघात पहुँचाये।'

इसके पश्चात कुरु-वंश के इन प्रतिष्ठित व्यक्तियों की सभा विसर्जित हो गई।

'पाण्डवों को आधा राज्य देना होगा,' महाराज धृतराष्ट्र से यह समाचार प्राप्त कर दुर्योधन पागल हो गया। इस समाचार से कौरव-कुल में शोक छा गया, परन्तु हस्तिनापुर की प्रजा में उत्साह भर गया। अपने धर्मपरायण राजकुमारों को फिर से अपने मध्य देखने के लिये प्रजा उतावली हो गई। उसका हृदय गद्-गद् हो गया।

प्रजा-जन महात्मा विदुर से पाण्डवों के लाक्षागृह से सकुशल बच आने और अर्जुन की पांचाली-स्वयम्वर में सफलता की सूचना की पुष्टि करके हर्षित मन अपने घरों को लौटे। उन लोगों ने इस समाचार को व्यापक बना दिया। हस्तिनापुर की गली-मुहल्ले में इसी बात की चर्चा थी। जिसे देखो वह इसी बात को कह रहा था। इस विषय के अतिरिक्त मानो अन्य बातें करने के लिये किसी के कोई विषय ही नहीं रह गया था।

माता अम्बालिका ने महात्मा विदुर से पूछा, 'बेटा ! क्या मैं सच सुन रही हूँ कि धृतराष्ट्र की भ्रष्ट मति सुमार्ग पर आ गई है ? क्या सचमुच वह मेरे पोतों को आधा राज्य देने को उद्यत हो गया है ? क्या वह शांतिपूर्वक यह सब कर सकेगा ?'

महात्मा विदुर बोले, 'हाँ माता ! यह सत्य है। राजदूतों को द्रुपदनगर भेज दिया गया है। कुछ ही दिनों में कुन्ती, पाँचों पाण्डव और आपकी पौत्र-वधू पांचाली हस्तिनापुर आ जायेंगे। भगवान् की

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

असीम कृपा से यह दिन आयेगा ।'

धृतराष्ट्र के राज दूतों ने महाराज द्रुपद को धृतराष्ट्र का संदेश देकर कहा, 'महाराज ! हम लोगों को माता कुन्ती, पाँचों पाण्डवों और पुत्र-वधू पांचाली को लेने के लिये भेजा गया है । हस्तिनापुर की प्रजा अपने राजकुमारों को देखने के लिये व्याकुल है । महाराज धृतराष्ट्र ने पाण्डवों को आधा राज्य देने का निश्चय किया है । यह निश्चय सब गुरु-जनों की सभा में किया गया है ।'

महाराज द्रुपद को यह समाचार पाकर हार्दिक प्रसन्नता हुई । वह बोले, 'कुरु-कुल के गुरुजनों में सद्मति जाग्रत हुई, यह जानकर हमें हार्दिक सन्तोष हुआ । हमें ऐसी दशा में पाण्डवों को हस्तिनापुर भेजने में कोई आपति नहीं है ।'

शुभ मुहूर्त्त देखकर पाण्डवों ने हस्तिनापुर के लिये प्रस्थान किया । महाराज द्रुपद ने चलते समय पाण्डवों को बहुत से हाथी, घोड़े, रथ, वस्त्राभूषण और विपुल सम्पत्ति भेंट की और अपने पुत्र धृष्टद्युम को सेना के साथ उनकी रक्षा के लिये भेजा । उन्हें धृतराष्ट्र के दूतों पर विश्वास नहीं था । लाक्षागृह में मंत्री पुरोचन ने जो किया था, वह उन्हें विस्मरण नहीं हुआ था । पाण्डव भी अब सचेत थे ।

पाण्डव हस्तिनापुर के निकट आये तो उन्होंने देखा वहाँ की प्रजा उनके स्वागत के लिये उमड़ी पड़ रही थी । उन्हें देखकर माता कुन्ती और पाण्डवों के नेत्रों में जल भर आया । अपनी मातृभूमि के दर्शन करके उन्हें आत्मिक तुष्टि प्राप्त हुई ।

पाण्डवों ने नगर में प्रवेश किया और फिर राजदरबार में पहुँचे । पाण्डवों ने महर्षि भीष्म, द्रोण, विदुर और महाराज धृतराष्ट्र के चरण छुए और उन्होंने उन्हें छाती से लगाकर प्यार किया । इतने दिन के बिछुडे हुए राजकुमारों को देखकर महर्षि भीष्म के नेत्रों से अश्रुओं की वर्षा होने लगी । उन्होंने युधिष्ठिर को छाती से लगाकर कहा, 'बेटा ! तुम लोगों पर बहुत बड़ा अत्याचार हुआ है ।'

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

'भवितव्यता को टाला नहीं जा सकता दादा !' धर्मराज युधिष्ठिर ने दृष्टि झुकाकर उत्तर दिया।

माता कुन्ती पांचाली को लेकर सर्वप्रथम अपनी सास अम्बालिका के पास गईं और दोनों ने उनके चरण छुए। फिर तीनों मिलकर माता सत्यवती के पास पहुँचीं ? माता सत्यवती ने दोनों को अपनी छाती से लगाया। वह गद्-गद् होकर बोलीं, 'बेटी ! आज मेरी वर्षों से दहकती हुई छाती को शीतलता प्राप्त हुई। लाक्षागृह के अशुभ समाचार ने मुझे प्राणरहित कर दिया था।'

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पाण्डवों को हस्तिनापुर आये कई दिन व्यतीत हो गये, परन्तु अभी तक महाराज धृतराष्ट्र ने उन्हें आधा राज्य देने की घोषणा नहीं की उन्होंने इस विषय में परामर्श करने के लिये भी उन्हें अपने पास नहीं बुलाया।

यह देखकर महऋषि भीष्म स्वयं धृतराष्ट्र के पास गये और बोले, 'धृतराष्ट्र ! विलम्ब करने का समय नहीं है। इस समय पाण्डव आ गये हैं। इन्हें तुरन्त आधा राज्य देने की घोषणा होनी चाहिये। इसी आश्वासन पर मैंने इन्हें हस्तिनापुर बुलाया है। इस कार्य को तुम्हें तुरन्त करना चाहिये।'

धृतराष्ट्र ने देखा कि अब आधा राज्य पाण्डवों को न देने का कोई चारा नहीं रहा। उन्होंने तुरन्त युधिष्ठिर को बुलाकर कहा, 'बेटा युधिष्ठिर ! मैं तुम्हें सहर्ष आधा राज्य देता हूँ। तुम अपनी राजधानी खाण्डवप्रस्थ में बनाओ। खाण्डवप्रस्थ भारत का केन्द्रीय स्थान है।'

युधिष्ठिर ने यह बात स्वीकार करली और वह माता कुन्ती तथा अपने पूरे परिवार को साथ लेकर खाण्डवप्रस्थ चले गये। वहाँ के निवासियों ने पाण्डवों का सहर्ष स्वागत किया। उन्हें इनके वहाँ पहुँचने से बहुत प्रसन्नता हुई।

पाण्डवों के खाण्डवप्रस्थ पहुँचने पर हस्तिनापुर के अच्छे-अच्छे कारीगर, व्यापारी, धनाढ्य और विद्वान् धीरे-धीरे खाण्डवप्रस्थ जाने लगे। खाण्डवप्रस्थ की छोटी-सी नगरी कुछ ही दिनों में धन-धान्यपूर्ण विशाल नगर हो गयी। पाण्डवों ने खाण्डवप्रस्थ में विशाल भवनों का निर्माण कराया।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पाण्डवों ने खाण्डप्रस्थ को नये ढंग से बसाया। उन्होंने बीहड़ जंगलों को कटवाकर नये ढंग से उसकी व्यवस्था की। नगर के चारों ओर सुन्दर बागीचों की व्यवस्था की। सरकारी भवनों का निर्माण कराकर उनमें नये कार्यालयों की व्यवस्था की।

खाण्डवप्रस्थ की शोभा दिन दूनी और रात चौगुनी बढ़ने लगी। हस्तिनापुर के सब बड़े-बड़े कारीगर, व्यापारी, दूकानदार, कलाकार इत्यादि के आने से नगर का हर प्रकार का कारोबार बढ़ गया।

माता सत्यवती से महात्मा विदुर ने पाण्डवों के कार्य की बात कही तो वह हर्ष से गद्-गद् हो गई। उन्हें अपनी सन्तान पर गर्व हुआ। खाण्डवप्रस्थ के जंगलों को साफ करना सरल कार्य नहीं था, यह वह जानती थीं। बहुत भयंकर जंगल था।

माता सत्यवती सन्तोष की साँस लेकर बोलीं, 'विदुर! सन्तोष का फल मीठा होता है। मुझे विश्वास है कि पाण्डव कुरु-कुल का नाम उज्जवल करेंगे। मुझे उनसे यही आशा थी।''

महात्मा विदुर बोले, 'करेंगे क्यों नहीं, जब आपका आशीर्वाद और महऋषि भीष्म की मनोकामना उनके साथ है। यदि कौरव-कुल में तनिक भी सद्बुद्धि होती तो ये शासन की व्यवस्था युधिष्ठिर के हाथों में सौंपकर आनन्द करते, परन्तु ये मन्द-बुद्धि निकले। हस्तिनापुर की दशा इन्होंने कितनी खराब कर दी।'

'मन्द-बुद्धि नहीं, कुल-कलंकी। धृतराष्ट्र ने दुर्योधन के हाथों में खेल कर मेरी आकांक्षाओं पर पानी फेर दिया। गांधारी को मैं ऐसी नहीं समझती थी। वह समझदार कुल-वधू नहीं निकली।'

महात्मा विदुर बोले, 'पुत्र माता के प्रतिबिम्ब होते हैं माता सत्यवती! दुर्योधन का स्वभाव गांधारी के द्वेषपूर्ण अन्तर में ढला हैं।'

'इसमें कोई सन्देह नहीं विदुर! गांधारी यूँ पतिव्रता चाहे कैसी भी क्यों न हो, परन्तु वह ऐसी बेल है जिस पर विष-फल ही लगे हैं। ये फल ज्ञात नहीं कुरु-कुल को कहाँ ले जायेंगे।'

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

में से होकर मछली की आँख तक जायेगा। यह बड़ा कठिन कार्य है। इसे अर्जुन ही बींध सकता था, परन्तु उसका कहीं पता नहीं है।'

अर्जुन ने पांचाल में होने वाले पांचाली के स्वयंवर का वृतान्त सुना तो उसके मन में पांचाल जाने की आकांक्षा प्रबल हो उठी। अर्जुन ने पांचाली को कभी देखा नहीं था, परन्तु उसके रूप की प्रतिमा उसके नेत्रों में उतर आई। उसका मन पांचाली के स्वयंवर में अपना कौशल दिखाने के लिये व्यग्र हो गया।

वह रात्रि भर इस बात को अपने मन में लिये लेटा रहा। प्रातः काल होते ही वह माता कुन्ती और अपने भय्या युधिष्ठिर तथा भीम से बोला, 'हम लोग अब यहाँ नहीं रहेंगे भय्या! यह देश नितान्त दरिद्र है। रात्रि में मैंने इस अतिथि से सुना है कि पांचाल देश बहुत सम्पन्न है। हमें वहीं चलना चाहिये। हम अब व्यर्थ यहाँ रह कर समय नष्ट नहीं करेंगे।'

जब ये बातें चल रही थीं तभी व्यास जी वहाँ आ गये। पाँचों भाइयों तथा कुन्ती ने उन्हें सादर प्रणाम करके बैठने के लिये आसन दिया।

व्यासजी बोले, 'क्या बातें चल रही थीं कुन्ती?'

कुन्ती बोलीं, 'बच्चे यहाँ रहते-रहते ऊब गये हैं महामुनि! अर्जुन कह रहा है कि हम लोग पांचाल देश चलें। यह कहता है कि वह देश यहाँ से अधिक सम्पन्न है। क्या यह सच है?'

कुन्ती की बात सुनकर व्यास जी को हँसी आ गई। वह बोले, 'मैं जानता था कि यदि अर्जुन को यह सूचना मिल गई तो तीर उसकी प्रत्यंचा पर चढ़ गया होगा। उसके नेत्र मछली की आँख से बँध गये होंगे और उसके भुजदण्ड उसे बींधने को फड़कने लगे होंगे। उसने धनुष की प्रत्यंचा टंकार दी होगी।"

व्यासजी की बात सुनकर अर्जुन का प्रसन्न मुख नीचे झुक गया।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

गुरुजनों के समक्ष यह बात स्पष्ट नहीं कही जा सकती थी। वह व्यास जी का मंतव्य समझ गया, परन्तु अन्य किसी की समझ में कुछ न आया। वे सब व्यास जी की ओर देखते रहे।

माता कुन्ती ने प्रश्नवाचक दृष्टि से व्यास जी की ओर देखा। व्यास जी समझ गये कि पांचाली के स्वयंवर की सूचना केवल अर्जुन को ही है। वह मुस्कराकर बोले, 'जिसके मतलब की बात थी उस के कानों तक उसका स्वर अनायास ही पहुँच गया कुन्ती! पांचाल देश की राजकुमारी का स्वयंर हो रहा है। उसमें जो शर्त रखी गई है उसे अर्जुन के अतिरिक्त अन्य कोई पूरा नहीं कर सकता। मैं अर्जुन को आशीर्वाद देता हूँ कि वह इस कार्य में सफल होकर पांचाल देश की रूपवती कन्या को वधू स्वरूप ग्रहण करे। तुम लोगों को तुरन्त पांचाल देश के लिये प्रस्थान करना चाहिये।'

व्यास जी का आशीर्वाद प्राप्त कर अर्जुन का दिल खिल गया। कुन्ती और अर्जुन के चारों भाई पांचाल देश की यात्रा के लिये उद्यत हो गये। उन्होंने उसी समय प्रस्थान की तैयारी करनी आरम्भ करदी।

पाण्डवों के नगरी से प्रस्थान की सूचना वहाँ के जन-समुदाय में फैली तो सबको हार्दिक खेद हुआ। कुन्ती ने अपने जाने का कारण किसी पर व्यक्त नहीं किया। नगर-निवासियों ने एक बहुत बड़े समारोह में उन्हें विदा दी और आश्वासन दिया कि वहाँ के लोग सर्वदा उनके भक्त रहेंगे। वे सभी उन्हें अपना प्राण-रक्षक मानते थे। उन्होंने वक को मार कर उनके प्राणों की रक्षा की थी।

चलते समय उनके ऊपर पुष्पों की वर्षा की गई। पाँचों पाण्डव नगर-जनों से गले मिले। सभी के नेत्रों में प्रेमाश्रु उमड़ आये।

माता कुन्ती ने सब को सांत्वना दी और आश्वासन दिया कि उनका स्नेह उनके लिये सर्वदा बना रहेगा। उन्हें जब भी उनकी आवश्यकता होगी वे उनकी सहायता के लिये वहाँ आयेंगे।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पांचों पांडवों ने माता कुन्ती के साथ पांचाल देश के लिये प्रस्थान किया। गंगा किनारे उन्हें एक राज्य मिला, जिसका राजा चित्ररथ था। वह बाहर से आने वाले किसी भी व्यक्ति को गंगा से पार नहीं उतरने देता था। और उससे युद्ध करके गंगा को पार करने का किसी में साहस नहीं था।

पाण्डव वहाँ पहुँचे तो उन्हें गंगा किनारे पर पहरेदारों ने रोक लिया और चित्ररथ को उसकी सूचदा दी।

चित्ररथ के गंगा पार करने की आज्ञा न देने पर अर्जुन और चित्ररथ का युद्ध हुआ जिसमें चित्ररथ ने हार स्वीकार की और वह सर्वदा के लिये पांडवों का मित्र बन गया। दोनों में परस्पर मैत्री सम्बन्ध स्थापित हो गये।

चित्ररथ के कहने से पांडव धौम्य ऋषि के आश्रम पर गये। माता कुन्ती ने उनसे प्रार्थना की कि वह उनके पुरोहित बन कर उनके साथ चलें। उन्होंने सहर्ष यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। और उनके साथ पांचाल देश को चल दिये।

पांडव पांचाल देश में प्रवेश कर द्रुपदनगर पहुँचे। द्रुपदनगर में जाकर देखा तो वहाँ सचमुच स्वयंवर का निराला ही ठाठ था। चारों ओर गुणी नायक और गायिकाओं का संगीत लहरें भर रहा था। वाद्य-यत्रों का स्वर सब ओर सुनाई दे रहा था, नृत्य के घुँघरुओं का स्वर ताल के साथ वायुमण्डल में थिरक रहा था। यात्री और दर्शक उसे सुन कर मंत्र-मुग्ध हो रहे थे। उनके आगे बढ़ते हुए पग रुक जाते थे।

रंगभूमि की शोभा और भी निराली थी। राजे-महाराजाओं का जमघट लगा था। एक-से-एक राजा ठाठ-बाट के साथ स्वयं-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

 Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वर में आया था। प्रत्येक राजा यही सोचता था कि जाने उसके किस गुण पर पांचाली रीझ उठे और उसे जयमाला पहिना दे।

निश्चित दिन और समय पर स्वयंवर की कार्यवाही आरम्भ हुई। कितने ही वीर मछली को बींधने के लिये मैदान में आये, परन्तु सब अपना सा मुँह लेकर वापिस लौट गये। उनमें से एक भी लक्ष को न भेद सका।

यह देख कर पांचाली का भाई धृष्टद्युम्न चिन्तित हो, सभा में खड़ा होकर बोला, 'क्या हम समझें कि भूमि धनुर्धरों से रिक्त हो गई ? क्या इस मण्डप में एक भी ऐसा धनुर्धर नहीं है जो मछली की आँख को बींध सके ?'

धृष्टद्युम्न की चुभती बात सुनकर महाबली कर्ण आगे बढ़े और ललकार कर बोले, 'पृथ्वी वीरों से खाली नहीं हुई है धृष्टद्युम्न ! ऐसे-ऐसे सात चक्रों के छिद्रों के बीच से सात मछलियों की आँखें मैं अपनी आँखों पर पट्टी बाँध कर केवल नाद के आधार पर बींध सकता हूँ।' यह कहकर वह मण्डप के मध्य भाग में आ गया।

कर्ण आगे बढ़ा तो भीड़ में से आवाज आई, 'सारथी अधिरथ द्वारा पालित व्यक्ति, जिसके पिता का पता नहीं, इस प्रतियोगिता में भाग नहीं ले सकता। यह सभा में उपस्थित राजाओं का अपमान है।'

यह आवाज पांचाली के कानों तक पहुँची तो उसने स्वयं मंच पर आकर घोषणा की, 'मैं अविवाहित रहना उचित समझूँगी, परन्तु सारथी-पुत्र से विवाह नहीं कराऊँगी। यह कार्य मेरी प्रतिष्ठा के प्रतिकूल होगा।'

पांचाली की इस घोषणा ने कर्ण को अपमानित कर दिया। वह चुपचाप अपने आसन पर जाकर बैठ गया। सभा में फिर सन्नाटा छा गया। एक क्षण के लिये मौन छाया रहा।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अर्जुन अपने स्थान से उठा और स्तम्भ के पास पहुँचा। कुछ लोग अर्जुन की सूरत देख कर व्यंग से मुस्कुरा दिये। उसके ब्राह्मण-वेश को देख कर कुछ राजाओं ने उस पर व्यंग कसा, परन्तु उसका ध्यान उस ओर नहीं था। उसके नेत्र खम्भे पर घूमती हुई मछली पर टिके थे। उसने धनुष लेकर उसकी प्रत्यंचा को टंकारा और धनुष को संधान कर देखा।

एक वृद्ध ने आगे बढ़कर गम्भीर वाणी में कहा, 'ब्राह्मण-कुमार! प्रतीक्षा क्या है? आगे बढ़ो और मछली की आँख भेद कर पांचाली का वरण करो। मुझे लगता है तुम इस कार्य को कर सकोगे।'

अर्जुन ने उस वृद्ध की वाणी सुनते ही, धनुषबाण संधान लिया और तीर ताना। उसने एक बार उस ब्राह्मण की ओर देखा, जिसने उसका उत्साह बढ़ाया था और फिर अपने लक्ष्य की ओर बढ़े।

सभा सन्नाटे में थी। सब की दृष्टि अर्जुन पर टिकी थी। देखते ही-देखते अर्जुन ने बाण छोड़ा और तीर मछली की आँख में जा घुसी। स्वयम्बर की प्रतिज्ञा पूर्ण हो गई।

ब्राह्मण-कुमार द्वारा लक्ष्य भेद करने से जिन्हें निराशा हुई वे चिल्लाये, 'निशाना ठीक नहीं लगा।'

अर्जुन ने क्रुद्ध होकर दूसरा तीर मारा और मछली को काट कर भूमि पर गिरा दिया। वह सीना उभार कर बोला, 'अब तो ठीक है निशाना या तीसरा बाण छोड़ूँ।'

वृद्ध ब्राह्मण मण्डप के बीच आकर अर्जुन से लिपट गया और गम्भीर वाणी में बोला, 'धन्य हो वीर! तुमने पांचाली के स्वयम्बर को लाज रख ली। तुमने महाराज द्रुपद की प्रतिज्ञा पूर्ण की, अन्यथा बेचारे बड़ी चिन्ता में पड़ गये थे।'

पांचाली ने आगे बढ़कर अर्जुन के गले में जयमाला डाल दी। मण्डप हर्ष-ध्वनि से भर गया।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अर्जुन पांचाली को साथ लेकर चले तो कुछ राजाओं ने उनके सामने आकर धन का लालच दिखा कर कहा, 'ब्राह्मण ! तुम जितना धन चाहो ले लो और पांचाली को हमें दे दो। तुम इसका क्या करोगे ?'

अर्जुन मुस्करा दिया।

यह देख कर सब राजे मिलकर एक हो गये और सोचा कि उस निर्धन ब्राह्मण से पांचाली को बलपूर्वक छीन लें। उन्होंने अपने शस्त्र संभाले और मिलकर अर्जुन को ललकारा।

उनका ललकारना था कि अर्जुन ने धनुषवाण संभाल लिया। फिर क्या था ? भीड़ काई की तरह फट गई। जिधर अर्जुन की दृष्टि पड़ी उधर ही मैदान साफ हो गया।

अर्जुन पांचाली के साथ उस स्थान पर पहुँचे जहाँ कुन्ती और उसके भाई पाण्डव ठहरे हुए थे। दोनों ने माता कुन्ती, युधिष्ठिर और भीम के चरण छुए। पाण्डव-परिवार में माता कुन्ती, युधिष्ठिर भीम और कुन्ती का हृदय हर्ष से फूल गया। उन्हें अपना भविष्य उज्ज्वल दिखाई देने लगा। हस्तिनापुर से प्रस्थान करने के पश्चात् यह प्रथम आशा-किरण उन्हें दिखाई दी। उन्होंने पांचाली को अपनी छाती से लगाया और अर्जुन को आशीर्वाद दिया। युधिष्ठिर और भीम ने अर्जुन को गले लगा लिया।

तभी कृष्ण और बलराम वहाँ आ गये। कृष्ण बलराम को देख कर माता कुन्ती के आनन्द का पारावार न रहा। उन्होंने दोनों को दुलार करके अपने पुत्रों से उनका परिचय कराया।

युधिष्ठिर बोले, 'महाबाहो ? आपने स्वयम्वर में अर्जुन को इस वेष में भी पहिचान लिया।'

कृष्ण हँसकर बोले, 'भाई युधिष्ठिर ! कृत्रिम वेश में क्या कभी पाण्डव छिप सकते हैं ? लाल गुदड़ी में रहने पर भी लाल ही रहता है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

परन्तु भाई ! मेरा प्रयास पूर्ण सफल रहा ।'

"इसमें कोई संदेह नहीं भय्या ! आपके वेश को देख कर किसी को किंचितमात्र भी शंका न हुई कि आप कृष्ण हैं ।' अर्जुन बोला।

माता कुन्ती ने कृष्ण बलराम को अपने संकट-काल की कहानी सुनाई तो कृष्ण ने कहा, 'मुझे सबसे अधिक घृणा कौरवों से तब हुई जब मैंने लाक्षागृह का समाचार सुना । मेरा हृदय उनके प्रति ग्लानि से भर गया । महात्मा विदुर से जब मुझे आपके बच कर निकलने का समाचार मिला तो हार्दिक संतोष हुआ । आप किसी बात की चिंता न करें । अन्तिम विजय सत्य की होगी । सत्य पर असत्य की विजय नहीं हो सकती ।"

कृष्ण की बात सुन कर कुन्ती के नेत्रों में जल भर आया ।

धृष्टद्युम्न अपने पुरोहित को लेकर वहाँ आया । उसने उपस्थित सज्जनों को सादर प्रणाम करके कहा, 'गुरुजनो ! स्वयम्वर में अर्जुन ने मेरी बहिन पांचाली का वरण किया, परन्तु अभी शास्त्रोचित पाणिग्रहण-संस्कार नहीं हुआ है । उसके लिये पिताजी ने आप सब को सादर आमंत्रित किया है ।'

माता कुन्ती ने महाराज द्रुपद का निमंत्रण स्वीकार कर लिया । सब लोगों ने द्रुपदनगर में प्रवेश किया । महाराज द्रुपद और उनकी महारानी ने पाण्डवों का नगर-द्वार पर स्वागत किया । माता कुन्ती और पांचाली को रनिवास में ले जाया गया । कृष्ण, बलराम और पाँचों पाण्डवों ने राजदरबार की ओर प्रस्थान किया ।

रात्रि में पाणिग्रहण-संकार सम्पन्न हुआ ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कृष्ण और बलराम द्रुपदनगर से हस्तिनापुर पहुँचे और महात्मा विदुर को सूचना दी, "महात्मा विदुर ! आपके भतीजे अर्जुन ने पांचाली को स्वयंम्वर में वरण कर कुरु-वंश का नाम उज्जवल कर दिया। स्वयंवर की प्रतियोगिता में उन्होंने भारत के सब राजाओं को परास्त किया है।'

महात्मा विदुर हर्षित होकर बोले, 'यह मैं क्या सुन रहा हूँ कृष्ण? क्या अर्जुन ने पांचाली को वरा है ? मैं सोच तो यही रहा था कि वह ब्राह्मण वेशधारी मेरा अर्जुन ही होगा, परन्तु मन सशंकित-सा हो रहा था। भाभी कुन्ती और पाण्डव सब कुशलपूर्वक तो हैं। इधर जब भीम ने बक का संहार किया था तब से मुझे उनका कोई समाचार नहीं मिला।'

महात्मा विदुर को कुशल-समाचार देकर श्रीकृष्ण और बलराम वहाँ से मथुरा चले गये। वे हस्तिनापुर में अन्य किसी से नहीं मिले।

महात्मा विदुर ने यह समाचार दादा भीष्म और द्रोण को दिया तो भीष्म और द्रोण को आनन्द हुआ। माता सत्यवती इस समाचार को पाकर कमल-पुष्प के समान खिल गईं। उनका मन पाण्डवों के अज्ञात् हो जाने के कारण बहुत दुःखी रहता था।

कुन्ती और पाण्डवों के वारणाव्रत चले जाने पर माता अम्बालिका का महल सूना हो गया था। जब उन्हें यह समाचार मिला कि लाक्षागृह में उनका पूरा परिवार जल कर भस्म हो गया तो उनका जीवन निराधार हो गया था। तब से वह निष्प्राण सी पड़ी रहती थीं। आज महात्मा विदुर ने उन्हें यह समाचार दिया तो उन्हें लगा मानो उनकी सूखी हुई खेती फिर से लहलहा उठी। उस पर अमृत की वर्षा हो गई।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

यह समाचार हस्तिनापुर की जनता को प्राप्त हुआ तो उसके आनन्द का पारावार न रहा। नगर में स्थान-स्थान पर उत्सव होने लगे। जनता की यह स्थिति देखकर दुर्योधन भयभीत हो गया। उसे लगा कि जनता उससे विद्रोह कर रही है। उसने अपने मंत्री को आज्ञा दी, 'नगर में होने वाले उत्सवों को बन्द कर दिया जाये। पाण्डवों के हितैषियों पर कड़ी दृष्टि रखो।'

महात्मा विदुर महाराज धृतराष्ट्र के पास गये तो वह बोले, 'भाई विदुर, कहिये कैसे पधारना हुआ? आपको हमारे राज्य में कोई कष्ट तो नहीं है? मेरे योग्य कोई सेवा हो तो कहिये।'

'आप जैसे धर्मात्मा भाई और सम्राट को प्राप्त कर कष्ट का क्या कारण? मैं आज आप को वह शुभ समाचार देने आया हूँ जिसे सुन कर आप गद्-गद् हो जायेंगे। आपके भतीजे पाण्डव लाक्षागृह के अग्निकाण्ड से बच गये थे। अर्जुन ने द्रुपदनगर में जाकर प्रतियोगिता में पांचाली का वरण किया है। कुरु-कुल की प्रतिष्ठा को उसने बढ़ा दिया।'

महात्मा विदुर की बात सुनकर धृतराष्ट्र बोले, 'करण ने पांचाली को वर लिया। करण बड़ा प्रतापी वीर है। वह तो वर ही लेता। महात्मा विदुर! मुझे इसमें कोई शंका नहीं थी।'

महात्मा विदुर धृतराष्ट्र की कुटिलता को भाँप कर बोले, 'महाराज! करण ने नहीं, अर्जुन ने। कुन्ती और पाण्डव आजकल महाराज द्रुपद के अतिथि हैं। महाराज द्रुपद ने उन्हें हर प्रकार की सहायता देने का वचन दिया है।'

ये बातें चल ही रही थीं कि तभी दुर्योधन वहाँ आ गया। वह बोला, 'पिताजी! मैं आपसे कुछ आवश्यक बातें करना चाहता हूँ। वे बातें मैं विदुरजी के सामने नहीं कर सकता।'

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दुर्योधन का यह कहना था कि महात्मा विदुर खड़े होकर बोले, 'मैं जा रहा हूँ भैय्या ! मैं तो आपको केवल यह समाचार देने आया था। मुझे अन्य कोई काम नहीं है। आप प्रिय पुत्र दुर्योधन से गुप्त मंत्रणा करें।'

महात्मा विदुर के चले जाने पर दुर्योधन बोला, 'पिताजी ! शत्रुओं का प्रभाव बढ़ता जारहा है। आज यह जानकर कि पाण्डव लाक्षागृह से सुरक्षित निकल भागे और अब अर्जुन ने पांचाली को स्वयम्वर में वर लिया है, नगर-निवासियों ने कई सभाएँ आयोजित कीं, उन सभाओं में पाण्डवों का गुणगान किया जाने वाला था। मैंने उन सभाओं पर प्रतिबन्ध लगा दिया। आपको सतर्क होकर इस समस्या पर विचार करना होगा। मैं भी चुप नहीं हूँ। मैंने बड़े-बड़े तांत्रिकों को बुलाया है। मैं उनसे पाण्डवों का विनाश करा दूँगा। मैं उन्हें हस्तिनापुर में नहीं आने दूँगा।'

दुर्योधन की कायरतापूर्ण बात सुनकर महाराज धृतराष्ट्र बोले, 'दुर्योधन ! तू ये बातें न करके यदि मुझसे युद्ध की आज्ञा माँगता तो मुझे प्रसन्न होती। तेरे कामों में मुझे कायरता और कुटिलता की दुर्गन्ध आती है।'

धृतराष्ट्र की बात सुनकर कर्ण, जो पास ही खड़ा था, बोला, 'महाराज ! हम पाण्डवों को युद्ध के लिये ललकारते हैं। पांचाली-स्वयम्वर में अर्जुन ब्राह्मण-वेश में छिपा रहा, वरना मैं उसे वहीं से जीवित न आने देता।'

महाराज धृतराष्ट्र बोले, 'यह बात मानी जा सकती है, परन्तु इसके लिये हमें दादा भीष्म, द्रोण और महात्मा विदुर की अनुमति लेनी होगी। हम अकेले इसका निर्णय नहीं ले सकते। हमें माता सत्यवती का आदेश मानना होगा।'

धृतराष्ट्र ने अपना यह मत भीष्म द्रोण और महात्मा विदुर के

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

समक्ष प्रस्तुत किया तो भीष्म के तन-बदन में ज्वाला प्रज्वलित हो गई। वह गम्भीर वाणी में बोले, 'धृतराष्ट्र ! तुम्हारे मुख से यह बात शोभा नहीं देती। यह तुम्हारे चरित्र को कलंकित करती है। क्या तुम्हारा अपने पाण्डु के पुत्रों के साथ यह व्यवहार होनाचाहिये ?

तुम्हारे पुत्र दुर्योधन की नीचता ने कुरु-वंश को कलंकित कर दिया है। भीम को विष देने और लाक्षाग्रह में पाण्डवों को जला डालने के नारकीय कृत्य करके तुम लोगों का मन शान्त नहीं हुआ ? पाण्डव सत्य और धर्म के मार्ग पर हैं, उनका विनाश तुम नहीं कर सकते। विनाश असत्य का होता है, सत्य का नहीं।

तुम्हें चाहिये कि तुम पाण्डवों को सम्मानपूर्वक पांचाल देश से बुलाओ और राज्य को दो भागों में विभक्त करके आधा राज्य पांण्डवों को दे दो। इसी में तुम्हारा हित है।'

द्रोण और महात्मा विदुर ने भी दादा भीष्म की बात का समर्थन किया। धृतराष्ट्र बात बदल कर बोले, 'मैं कोई कार्य आपकी सहमति के बिना नहीं कर सकता। अपने लड़के की नीचता पर मुझे स्वयं हार्दिक खेद है। मैंने आपके समक्ष युद्ध-प्रस्ताव रख कर अपने लड़कों का मत प्रकट किया था और यह बताया था कि उनकी विचारधारा किस ओर चल रही है। मैं स्वयं यह नहीं चाहता कि गृह-युद्ध हो।

इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि मैं उनका समर्थक हूँ।' यह कह कर धृतराष्ट्र ने परिस्थिति को अपने अनुकूल बनाने की चेष्टा की। वह बोले, 'होगा वही जो आप सब चाहेंगे। मैं पाण्डवों को कौरवों से कम प्रेम नहीं करता। मैं दोनों को समान समझता हूँ। उनके हितों की रक्षा के लिये मैं वही करूँगा जो आप आज्ञा करेंगे।

महात्मा विदुर से पांचाली-स्वयम्वर की सूचना प्राप्त कर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई। मैं शीघ्र ही द्रुपदनगर से कुन्ती पाँचों पाण्डव और पुत्र-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वधू पांचाली को लिवालाने का प्रबन्ध करता हूँ।'

महात्मा विदुर धृतराष्ट्र को भीष्म से अधिक समझते थे। उनका यह केंचुली बदलना देखकर वह मन में हँसे और सरल वाणी में बोले, 'महाराज ! हम जानते हैं कि आपके हाथों से कभी कोई ऐसा कार्य नहीं हो सकता जो कुरु-वंश की प्रतिष्ठा को आघात पहुँचाये।'

इसके पश्चात कुरु-वंश के इन प्रतिष्ठित व्यक्तियों की सभा विसर्जित हो गई।

'पाण्डवों को आधा राज्य देना होगा,' महाराज धृतराष्ट्र से यह समाचार प्राप्त कर दुर्योधन पागल हो गया। इस समाचार से कौरव-कुल में शोक छा गया, परन्तु हस्तिनापुर की प्रजा में उत्साह भर गया। अपने धर्मपरायण राजकुमारों को फिर से अपने मध्य देखने के लिये प्रजा उतावली हो गई। उसका हृदय गद्-गद् हो गया।

प्रजा-जन महात्मा विदुर से पाण्डवों के लाक्षागृह से सकुशल बच आने और अर्जुन की पांचाली-स्वयम्वर में सफलता की सूचना की पुष्टि करके हर्षित मन अपने घरों को लौटे। उन लोगों ने इस समाचार को व्यापक बना दिया। हस्तिनापुर की गली-मुहल्ले में इसी बात की चर्चा थी। जिसे देखो वह इसी बात को कह रहा था। इस विषय के अतिरिक्त मानो अन्य बातें करने के लिये किसी के कोई विषय ही नहीं रह गया था।

माता अम्बालिका ने महात्मा विदुर से पूछा, 'बेटा ! क्या मैं सच सुन रही हूँ कि धृतराष्ट्र की भ्रष्ट मति सुमार्ग पर आ गई है ? क्या सचमुच वह मेरे पोतों को आधा राज्य देने को उद्यत हो गया है ? क्या वह शांतिपूर्वक यह सब कर सकेगा ?'

महात्मा विदुर बोले, 'हाँ माता ! यह सत्य है। राजदूतों को द्रुपदनगर भेज दिया गया है। कुछ ही दिनों में कुन्ती, पाँचों पाण्डव और आपकी पौत्र-वधू पांचाली हस्तिनापुर आ जायेंगे। भगवान् की

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

असीम कृपा से यह दिन आयेगा ।'

धृतराष्ट्र के राज दूतों ने महाराज द्रुपद को धृतराष्ट्र का संदेश देकर कहा, 'महाराज ! हम लोगों को माता कुन्ती, पाँचों पाण्डवों और पुत्र-वधू पांचाली को लेने के लिये भेजा गया है । हस्तिनापुर की प्रजा अपने राजकुमारों को देखने के लिये व्याकुल है । महाराज धृतराष्ट्र ने पाण्डवों को आधा राज्य देने का निश्चय किया है । यह निश्चय सब गुरु-जनों की सभा में किया गया है ।'

महाराज द्रुपद को यह समाचार पाकर हार्दिक प्रसन्नता हुई । वह बोले, 'कुरु-कुल के गुरुजनों में सद्मति जाग्रत हुई, यह जानकर हमें हार्दिक सन्तोष हुआ । हमें ऐसी दशा में पाण्डवों को हस्तिनापुर भेजने में कोई आपति नहीं है ।'

शुभ मुहूर्त्त देखकर पाण्डवों ने हस्तिनापुर के लिये प्रस्थान किया । महाराज द्रुपद ने चलते समय पाण्डवों को बहुत से हाथी, घोड़े, रथ, वस्त्राभूषण और विपुल सम्पत्ति भेंट की और अपने पुत्र धृष्टद्युम्न को सेना के साथ उनकी रक्षा के लिये भेजा । उन्हें धृतराष्ट्र के दूतों पर विश्वास नहीं था । लाक्षागृह में मंत्री पुरोचन ने जो किया था, वह उन्हें विस्मरण नहीं हुआ था । पाण्डव भी अब सचेत थे ।

पाण्डव हस्तिनापुर के निकट आये तो उन्होंने देखा वहाँ की प्रजा उनके स्वागत के लिये उमड़ी पड़ रही थी । उन्हें देखकर माता कुन्ती और पाण्डवों के नेत्रों में जल भर आया । अपनी मातृभूमि के दर्शन करके उन्हें आत्मिक तुष्टि प्राप्त हुई ।

पाण्डवों ने नगर में प्रवेश किया और फिर राजदरबार में पहुँचे । पाण्डवों ने महर्ऋषि भीष्म, द्रोण, विदुर और महाराज धृतराष्ट्र के चरण छुए और उन्होंने उन्हें छाती से लगाकर प्यार किया । इतने दिन के बिछुडे हुए राजकुमारों को देखकर महर्ऋषि भीष्म के नेत्रों से अश्रुओं की वर्षा होने लगी । उन्होंने युधिष्ठिर को छाती से लगाकर कहा, 'बेटा ! तुम लोगों पर बहुत बड़ा अत्याचार हुआ है ।'

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बधू पांचाली को लिवालाने का प्रबन्ध करता हूँ।'

महात्मा विदुर धृतराष्ट्र को भीष्म से अधिक समझते थे। उनका यह केंचुली बदलना देखकर वह मन में हँसे और सरल वाणी में बोले, 'महाराज ! हम जानते हैं कि आपके हाथों से कभी कोई ऐसा कार्य नहीं हो सकता जो कुरु-वंश की प्रतिष्ठा को आघात पहुँचाये।'

इसके पश्चात कुरु-वंश के इन प्रतिष्ठित व्यक्तियों की सभा विसर्जित हो गई।

'पाण्डवों को आधा राज्य देना होगा,' महाराज धृतराष्ट्र से यह समाचार प्राप्त कर दुर्योधन पागल हो गया। इस समाचार से कौरव-कुल में शोक छा गया, परन्तु हस्तिनापुर की प्रजा में उत्साह भर गया। अपने धर्मपरायण राजकुमारों को फिर से अपने मध्य देखने के लिये प्रजा उतावली हो गई। उसका हृदय गद्-गद् हो गया।

प्रजा-जन महात्मा विदुर से पाण्डवों के लाक्षागृह से सकुशल बच आने और अर्जुन की पांचाली-स्वयम्वर में सफलता की सूचना की पुष्टि करके हर्षित मन अपने घरों को लौटे। उन लोगों ने इस समाचार को व्यापक बना दिया। हस्तिनापुर की गली-मुहल्ले में इसी बात की चर्चा थी। जिसे देखो वह इसी बात को कह रहा था। इस विषय के अतिरिक्त मानो अन्य बातें करने के लिये किसी के कोई विषय ही नहीं रह गया था।

माता अम्बालिका ने महात्मा विदुर से पूछा, 'बेटा ! क्या मैं सच सुन रही हूँ कि धृतराष्ट्र की भ्रष्ट मति सुमार्ग पर आ गई है ? क्या सचमुच वह मेरे पोतों को आधा राज्य देने को उद्यत हो गया है ? क्या वह शांतिपूर्वक यह सब कर सकेगा ?'

महात्मा विदुर बोले, 'हाँ माता ! यह सत्य है। राजदूतों को द्रुपदनगर भेज दिया गया है। कुछ ही दिनों में कुन्ती, पाँचों पाण्डव और आपकी पौत्र-वधू पांचाली हस्तिनापुर आ जायेंगे। भगवान् की

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

असीम कृपा से यह दिन आयेगा ।'

धृतराष्ट्र के राज दूतों ने महाराज द्रुपद को धृतराष्ट्र का संदेश देकर कहा, 'महाराज ! हम लोगों को माता कुन्ती, पाँचों पाण्डवों और पुत्र-वधू पांचाली को लेने के लिये भेजा गया है । हस्तिनापुर की प्रजा अपने राजकुमारों को देखने के लिये व्याकुल है । महाराज धृतराष्ट्र ने पाण्डवों को आधा राज्य देने का निश्चय किया है । यह निश्चय सब गुरु-जनों की सभा में किया गया है ।'

महाराज द्रुपद को यह समाचार पाकर हार्दिक प्रसन्नता हुई । वह बोले, 'कुरु-कुल के गुरुजनों में सद्मति जाग्रत हुई, यह जानकर हमें हार्दिक सन्तोष हुआ । हमें ऐसी दशा में पाण्डवों को हस्तिनापुर भेजने में कोई आपति नहीं है ।'

शुभ मुहूर्त्त देखकर पाण्डवों ने हस्तिनापुर के लिये प्रस्थान किया । महाराज द्रुपद ने चलते समय पाण्डवों को बहुत से हाथी, घोड़े, रथ, वस्त्राभूषण और विपुल सम्पत्ति भेंट की और अपने पुत्र धृष्टद्युम को सेना के साथ उनकी रक्षा के लिये भेजा । उन्हें धृतराष्ट्र के दूतों पर विश्वास नहीं था । लाक्षागृह में मंत्री पुरोचन ने जो किया था, वह उन्हें विस्मरण नहीं हुआ था । पाण्डव भी अब सचेत थे ।

पाण्डव हस्तिनापुर के निकट आये तो उन्होंने देखा वहाँ की प्रजा उनके स्वागत के लिये उमड़ी पड़ रही थी । उन्हें देखकर माता कुन्ती और पाण्डवों के नेत्रों में जल भर आया । अपनी मातृभूमि के दर्शन करके उन्हें आत्मिक तुष्टि प्राप्त हुई ।

पाण्डवों ने नगर में प्रवेश किया और फिर राजदरबार में पहुँचे । पाण्डवों ने महर्ऋषि भीष्म, द्रोण, विदुर और महाराज धृतराष्ट्र के चरण छुए और उन्होंने उन्हें छाती से लगाकर प्यार किया । इतने दिन के बिछुडे हुए राजकुमारों को देखकर महर्ऋषि भीष्म के नेत्रों से अश्रुओं की वर्षा होने लगी । उन्होंने युधिष्ठिर को छाती से लगाकर कहा, 'बेटा ! तुम लोगों पर बहुत बड़ा अत्याचार हुआ है ।'

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

'भवितव्यता को टाला नहीं जा सकता दादा !' धर्मराज युधिष्ठिर ने दृष्टि झुकाकर उत्तर दिया।

माता कुन्ती पांचाली को लेकर सर्वप्रथम अपनी सास अम्बालिका के पास गईं और दोनों ने उनके चरण छुए। फिर तीनों मिलकर माता सत्यवती के पास पहुँचीं ? माता सत्यवती ने दोनों को अपनी छाती से लगाया। वह गद्-गद् होकर बोलीं, 'बेटी ! आज मेरी वर्षों से दहकती हुई छाती को शीतलता प्राप्त हुई। लाक्षागृह के अशुभ समाचार ने मुझे प्राणरहित कर दिया था।'

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

२०

पाण्डवों को हस्तिनापुर आये कई दिन व्यतीत हो गये, परन्तु अभी तक महाराज धृतराष्ट्र ने उन्हें आधा राज्य देने की घोषणा नहीं की उन्होंने इस विषय में परामर्श करने के लिये भी उन्हें अपने पास नहीं बुलाया।

यह देखकर महऋषि भीष्म स्वयँ धृतराष्ट्र के पास गये और बोले, 'धृतराष्ट्र ! विलम्ब करने का समय नहीं है। इस समय पाण्डव आ गये हैं। इन्हें तुरन्त आधा राज्य देने की घोषणा होनी चाहिये। इसी आश्वासन पर मैंने इन्हें हस्तिनापुर बुलाया है। इस कार्य को तुम्हें तुरन्त करना चाहिये।'

धृतराष्ट्र ने देखा कि अब आधा राज्य पाण्डवों को न देने का कोई चारा नहीं रहा। उन्होंने तुरन्त युधिष्ठिर को बुलाकर कहा, 'बेटा युधिष्ठिर ! मैं तुम्हें सहर्ष आधा राज्य देता हूँ। तुम अपनी राजधानी खाण्डवप्रस्थ में बनाओ। खाण्डवप्रस्थ भारत का केन्द्रीय स्थान है।'

युधिष्ठिर ने यह बात स्वीकार करली और वह माता कुन्ती तथा अपने पूरे परिवार को साथ लेकर खाण्डवप्रस्थ चले गये। वहाँ के निवासियों ने पाण्डवों का सहर्ष स्वागत किया। उन्हें इनके वहाँ पहुँचने से बहुत प्रसन्नता हुई।

पाण्डवों के खाण्डवप्रस्थ पहुँचने पर हस्तिनापुर के अच्छे-अच्छे कारीगर, व्यापारी, धनाढ्य और विद्वान् धीरे-धीरे खाण्डवप्रस्थ जाने लगे। खाण्डवप्रस्थ की छोटी-सी नगरी कुछ ही दिनों में धन-धान्यपूर्ण विशाल नगर हो गयी। पाण्डवों ने खाण्डवप्रस्थ में विशाल भवनों का निर्माण कराया।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पाण्डवों ने खाण्डप्रस्थ को नये ढंग से बसाया। उन्होंने बीहड़ जंगलों को कटवाकर नये ढंग से उसकी व्यवस्था की। नगर के चारों ओर सुन्दर बागीचों की व्यवस्था की। सरकारी भवनों का निर्माण कराकर उनमें नये कार्यालयों की व्यवस्था की।

खाण्डवप्रस्थ की शोभा दिन दूनी और रात चौगुनी बढ़ने लगी। हस्तिनापुर के सब बड़े-बड़े कारीगर, व्यापारी, दूकानदार, कलाकार इत्यादि के आने से नगर का हर प्रकार का कारोबार बढ़ गया।

माता सत्यवती से महात्मा विदुर ने पाण्डवों के कार्य की बात कही तो वह हर्ष से गद्-गद् हो गई। उन्हें अपनी सन्तान पर गर्व हुआ। खाण्डवप्रस्थ के जंगलों को साफ करना सरल कार्य नहीं था, यह वह जानती थीं। बहुत भयंकर जंगल था।

माता सत्यवती सन्तोष की साँस लेकर बोलीं, 'विदुर! सन्तोष का फल मीठा होता है। मुझे विश्वास है कि पाण्डव कुरु-कुल का नाम उज्जवल करेंगे। मुझे उनसे यही आशा थी।''

महात्मा विदुर बोले, 'करेंगे क्यों नहीं, जब आपका आशीर्वाद और महऋषि भीष्म की मनोकामना उनके साथ है। यदि कौरव-कुल में तनिक भी सद्बुद्धि होती तो ये शासन की व्यवस्था युधिष्ठिर के हाथों में सौंपकर आनन्द करते, परन्तु ये मन्द-बुद्धि निकले। हस्तिनापुर की दशा इन्होंने कितनी खराब कर दी।'

'मन्द-बुद्धि नहीं, कुल-कलंकी। धृतराष्ट्र ने दुर्योधन के हाथों में खेल कर मेरी आकांक्षाओं पर पानी फेर दिया। गांधारी को मैं ऐसी नहीं समझती थी। वह समझदार कुल-वधू नहीं निकली।'

महात्मा विदुर बोले, 'पुत्र माता के प्रतिबिम्ब होते हैं माता सत्यवती! दुर्योधन का स्वभाव गांधारी के द्वेषपूर्ण अन्तर में ढला है।'

'इसमें कोई सन्देह नहीं विदुर! गांधारी यूँ पतिव्रता चाहे कैसी भी क्यों न हो, परन्तु वह ऐसी बेल है जिस पर विष-फल ही लगे हैं। ये फल ज्ञात नहीं कुरु-कुल को कहाँ ले जायेंगे।'

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

खाण्डवप्रस्थ का निर्माण हो जाने पर धर्मराज युधिष्ठिर ने अर्जुन को भारत के विभिन्न राज्यों से मैत्री-सम्बन्ध स्थापित करने के लिये भेजा।

अर्जुन वियाबान जंगलों को पार करके नागलोक पहुँचे। वहाँ की राजधानी गंगा के किनारे पर थी। वह गंगा-किनारे पहुँचे तो उन्होंने कुछ नाग-कन्याओं को गंगा में स्नान करते देखा।

वह बहुत थक गये थे। विश्राम के लिये एक वृक्ष के नीचे बैठ गये और उन कन्याओं की जल-क्रीड़ा देखने लगे। उनमें से कुछ गा रही थीं। वह उनका संगीत सुनने लगे।

कुछ ही क्षण पश्चात् उन्होंने उन कन्याओं को रोते और चिल्लाते सुना तो वह तुरन्त वहाँ जा पहुंचे और उनसे रोने-चिल्लाने का कारण ज्ञात किया।

एक लड़की ने उन्हें स्नान करती हुई राजकन्या उलूपी के बहजाने की सूचना दी तो अर्जुन ने गंगा की धारा पर दृष्टि डाली और तीर-कमान लेकर एक तीर छोड़ा। वह तीर पानी की लहरों पर बल-खाता हुआ उलूपी के जूड़े में जाकर लगा और उसे खींच कर पानी से बाहर ले आया। उलूपी सुरक्षित किनारे पर आ गई। उलूपी के कहीं कोई चोट नहीं आई।

नाग-कन्याएँ अर्जुन के कौशल को देखकर चकित रह गई। उलूपी ने अपने प्राण-रक्षक को विशेष आकर्षण के साथ देखा। अर्जुन की उलूपी के रूप पर दृष्टि गई तो वह उस पर मुग्ध हो गये। दोनों एक-दूसरे की ओर आकर्षित हो गये। दोनों का मन एक दूसरे की ओर अबाध गति से खिंच गये।

नाग-कन्याएँ स्नान करके नगर को लौट गईं। अर्जुन वहीं एक आम्र-वृक्ष की छाया में लेटे रहे। थकान के कारण उन्हें लेटते ही नींद आ गई।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पाण्डवों ने खाण्डप्रस्थ को नये ढंग से बसाया। उन्होंने बीहड़ जंगलों को कटवाकर नये ढंग से उसकी व्यवस्था की। नगर के चारों ओर सुन्दर बागीचों की व्यवस्था की। सरकारी भवनों का निर्माण कराकर उनमें नये कार्यालयों की व्यवस्था की।

खाण्डवप्रस्थ की शोभा दिन दूनी और रात चौगुनी बढ़ने लगी। हस्तिनापुर के सब बड़े-बड़े कारीगर, व्यापारी, दूकानदार, कलाकार इत्यादि के आने से नगर का हर प्रकार का कारोबार बढ़ गया।

माता सत्यवती से महात्मा विदुर ने पाण्डवों के कार्य की बात कही तो वह हर्ष से गद्-गद् हो गई। उन्हें अपनी सन्तान पर गर्व हुआ। खाण्डवप्रस्थ के जंगलों को साफ करना सरल कार्य नहीं था, यह वह जानती थीं। बहुत भयंकर जंगल था।

माता सत्यवती सन्तोष की साँस लेकर बोलीं, 'विदुर! सन्तोष का फल मीठा होता है। मुझे विश्वास है कि पाण्डव कुरु-कुल का नाम उज्जवल करेंगे। मुझे उनसे यही आशा थी।''

महात्मा विदुर बोले, 'करेंगे क्यों नहीं, जब आपका आशीर्वाद और महऋषि भीष्म की मनोकामना उनके साथ है। यदि कौरव-कुल में तनिक भी सद्बुद्धि होती तो ये शासन की व्यवस्था युधिष्ठिर के हाथों में सौंपकर आनन्द करते, परन्तु ये मन्द-बुद्धि निकले। हस्तिनापुर की दशा इन्होंने कितनी खराब कर दी।'

'मन्द-बुद्धि नहीं, कुल-कलंकी। धृतराष्ट्र ने दुर्योधन के हाथों में खेल कर मेरी आकांक्षाओं पर पानी फेर दिया। गांधारी को मैं ऐसी नहीं समझती थी। वह समझदार कुल-वधू नहीं निकली।'

महात्मा विदुर बोले, 'पुत्र माता के प्रतिबिम्ब होते हैं माता सत्यवती! दुर्योधन का स्वभाव गांधारी के द्वेषपूर्ण अन्तर में ढला है।'

'इसमें कोई सन्देह नहीं विदुर! गांधारी यूँ पतिव्रता चाहे कैसी भी क्यों न हो, परन्तु वह ऐसी बेल है जिस पर विष-फल ही लगे हैं। ये फल ज्ञात नहीं कुरु-कुल को कहाँ ले जायेंगे।'

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

खाण्डवप्रस्थ का निर्माण हो जाने पर धर्मराज युधिष्ठिर ने अर्जुन को भारत के विभिन्न राज्यों से मैत्री-सम्बन्ध स्थापित करने के लिये भेजा।

अर्जुन वियावान जंगलों को पार करके नागलोक पहुँचे। वहाँ की राजधानी गंगा के किनारे पर थी। वह गंगा-किनारे पहुँचे तो उन्होंने कुछ नाग-कन्याओं को गंगा में स्नान करते देखा।

वह बहुत थक गये थे। विश्राम के लिये एक वृक्ष के नीचे बैठ गये और उन कन्याओं की जल-क्रीड़ा देखने लगे। उनमें से कुछ गा रही थीं। वह उनका संगीत सुनने लगे।

कुछ ही क्षण पश्चात् उन्होंने उन कन्याओं को रोते और चिल्लाते सुना तो वह तुरन्त वहाँ जा पहुंचे और उनसे रोने-चिल्लाने का कारण ज्ञात किया।

एक लड़की ने उन्हें स्नान करती हुई राजकन्या उलूपी के बहजाने की सूचना दी तो अर्जुन ने गंगा की धारा पर दृष्टि डाली और तीर-कमान लेकर एक तीर छोड़ा। वह तीर पानी की लहरों पर बल-खाता हुआ उलूपी के जूड़े में जाकर लगा और उसे खींच कर पानी से बाहर ले आया। उलूपी सुरक्षित किनारे पर आ गई। उलूपी के कहीं कोई चोट नहीं आई।

नाग-कन्याएँ अर्जुन के कौशल को देखकर चकित रह गई। उलूपी ने अपने प्राण-रक्षक को विशेष आकर्षण के साथ देखा। अर्जुन की उलूपी के रूप पर दृष्टि गई तो वह उस पर मुग्ध हो गये। दोनों एक-दूसरे की ओर आकर्षित हो गये। दोनों का मन एक दूसरे की ओर अबाध गति से खिंच गये।

नाग-कन्याएँ स्नान करके नगर को लौट गईं। अर्जुन वहीं एक आम्र-वृक्ष की छाया में लेटे रहे। थकान के कारण उन्हें लेटते ही नींद आ गई।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कुछ देर पश्चात् जब उनकी आँखें खुलीं तो उन्होंने देखा एक रथ उनके निकट खड़ा था। वह सतर्क होकर उठ बैठे और अपने अस्त्र-शस्त्रों को सँभालने लगे।

एक व्यक्ति रथ से उतर कर बोला, 'मेरा नाम कौरव्य है। मुझे मेरी पुत्री उलूपी ने सूचित किया है कि गंगा-किनारे एक महानुभाव पधारे हैं, जिन्होंने उसके गंगा में बह जाने पर, उसकी प्राण-रक्षा की। मैं उसका हृदय से आभारी हूँ। क्या आप वही व्यक्ति हैं? क्या मैं आपका परिचय प्राप्त कर सकता हूँ?'

अर्जुन बोले, 'मेरा नाम अर्जुन है। मैं पाण्डवों में बीच का भाई हूँ। आजकल मैं देशाटन पर निकला हुआ हूँ। गंगा-किनारे यह वनस्थली देख कर मैं विश्राम करने के लिये इधर चला आया। यहाँ लेटने पर मैंने कुछ शोर सुना तो मैं उधर चला गया। मुझे हार्दिक संतोष है कि मैं आपकी कन्या की प्राणरक्षा कर सका।'

अर्जुन का परिचय प्राप्त कर कौरव्य बहुत प्रसन्न हुए। वह उन्हें सादर अपनी राजधानी में ले गये।

अर्जुन के सम्मान में एक उत्सव का आयोजन किया गया, जिसमें नाग-कन्याओं ने नृत्य और संगीत का प्रदर्शन किया। अर्जुन ने इतना सुन्दर नृत्य और मधुर संगीत अपने जीवन में पहिले नहीं देखा-सुना था।

उलूपी का नृत्य देखकर अर्जुन मंत्र-मुग्ध हो गये। उसके संगीत से उनका मन तरंगित हो गया।

इस उत्सव में अर्जुन का मन भी अपनी कला दिखाने को हो आया। उन्होंने धनुष उठा कर एक तीर छोड़ना चाहा तो कौरव्य भयभीत हो गये। अर्जुन मुस्कराकर बोले, 'आप घबराइये नहीं राजन्! धनुर्विद्या भी एक कला है। आपके राज्य की नृत्य-कला से प्रभावित होकर मेरा मन भी अपनी कला प्रदर्शित करने को हो आया।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मैं उसी का प्रदर्शन कर रहा हूँ।'

अर्जुन ने बाण छोड़ा। बाण उलूपी के तलवे के नीचे पहुँच कर इस प्रकार ऊपर उठा कि उलूपी नृत्य करती हुई आकाश में पहुँच गई और तीर के ऊपर उसी प्रकार नृत्य करती रही जैसा पृथ्वी पर कर रही थी। अर्जुन ने फिर उलूपी के साथ नृत्य करने वाली अन्य सखियों को भी उलूपी के पास पहुंचा दिया। यह देख कर कौरव्य दंग रह गये। वे तीर फिर धीरे-धीरे स्वयं नीचे उतरने लगे और उनके ऊपर नृत्य करती हुई युवतियाँ भी नीचे उतर आईं।

उत्सव के पश्चात् रात्रि को अर्जुन के सम्मान में एक भोज का आयोजन हुआ। उसमें नगर के सभी प्रतिष्ठित व्यक्तियों ने भाग लिया।

रात्रि को जब अर्जुन शयनागार में गये तो उन्होंने देखा उनका महल विविध प्रकार की चित्रकारियों से सजा था। वह उन्हें देख कर मंत्र-मुग्ध हो गये। वह चाहते थे कि उस कला के विषय में किसी से ज्ञान प्राप्त करें। प्रसन्नवदना उलूपी उनके निकट आ गई और उनसे बोली, 'ये सब चित्र मैंने बनाये हैं। पाण्डव-कुमार को पसन्द आये मेरे ये चित्र? इन चित्रों में मैंने अपने मनोभावों को व्यक्त किया है।'

अर्जुन बोले, 'उलूपी! तुम कला की साक्षात देवि हो। तुम्हारा नृत्य, तुम्हारा संगीत, तुम्हारी चित्र-कला सब सराहनीय हैं। जी चाहता इन्हें चूम लूँ। इन्होंने मेरे हृदय में रस की सरिता प्रवाहित कर दी है। बहुत सुन्दर चित्र बनाये हैं तुमने।'

अर्जुन की बात सुन कर उलूपी मुस्कराकर बोली, 'कला को पुरस्कार देने की आवश्यकता नहीं है पाण्डव-कुमार! वह कलाकार को मिलना चाहिए।'

अर्जुन ने उलूपी की ओर देखा। उसके नेत्रों से मादकता

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

छलक रही थी। उसके जीवन में उभार आ गया। उसका बदन रोमांचित हो गया।

अर्जुन ने उलूपी को अपनी बाहुओं में भर लिया। उलूपी मंत्र-मुग्ध हो गई।

उलूपी बोली, 'मैं आपसे विवाह करना चाहती हूँ पाण्डव-कुमार ! मुझे निराश न करना। आप निराश कर देंगे तो मैं जीवित न बचूंगी। यदि फिर कभी आप भूल से इस राज्य में आये तो जहाँ आपकी गंगा-किनारे मुझसे भेंट हुई थी, वहाँ उलूपी की समाधि देखने को मिलेगी। उस समाधि पर लिखा होगा, वहाँ एक राजकुमार आया था, जो उलूपी को प्राणदान देकर फिर अपने ही हाथों से उसकी हत्या कर गया।'

उलूपी की बात सुन कर अर्जुन व्याकुल हो गये। वह उलूपी के विवाह-प्रस्ताव को अस्वीकार न कर सके। उस रात्रि को उलूपी और अर्जुन ने उसी शयनागार में विश्राम किया।

अर्जुन देशाटन पर निकले थे। उन्होंने रात्रि में सोचा कि क्या उनका देशाटन नागलोक में ही समाप्त हो जायेगा ? वह प्रातःकाल बहुत सवेरे उठे और उलूपी को सोती छोड़ कर वहाँ से चुपचाप आगे चल दिये। उन्हें अपनी यात्रा पूर्ण करनी थी। वह उसे स्थगित नहीं कर सकते थे।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

२२

बहुत से तीर्थस्थानों और नगरों से होकर अर्जुन मणिपुर पहुंचे। संध्या-समय मणिपुर की राजकुमारी चित्रांगदा उद्यान-विहार के लिये अपनी सहेलियों के साथ उद्यान् में आई। वह झूला झूलने लगी। उसे प्यास लगी तो। वह झरने पर पानी पीने के लिये गई। उसके पैरों का स्वर सुनकर अर्जुन की नींद खुल गई, परन्तु वह आँखें बन्द किये लेटे रहे और लड़कियों की केलि-क्रीड़ा देखते रहे। वह उनके गीतों में रस ले रहे थे।

चित्रांगदा की एक सहेली की दृष्टि अर्जुन पर गई तो वह चित्रांगदा के कान में जाकर बोली, 'लो आ गये वह भी जिनकी आप प्रतीक्षा में थीं। हैं तो वास्तव में बहुत सुन्दर।'

चित्रांगदा ने अपनी सखी के गाल पर चुटकी भरकर कहा, 'नटखट कहीं की।'

चित्रांगदा की दृष्टि अर्जुन के गौर वर्ण और सुन्दर बदन पर गई तो वह ठगी सी रह गई। इतना सुन्दर युवक उसकी आँखों के सामने पहिले कभी नहीं आया था।

चित्रांगदा की दशा देख कर सखी ने उसकी ठोड़ी के नीचे अँगुली लगा कर कहा, 'कुछ गुदगुदी उठी दिल में ? वही हैं न जिनकी आप प्रतीक्षा में थीं।'

चित्रांगदा कुछ नहीं बोली। वह होठों पर अँगुली रखकर धीरे से अर्जुन के निकट जाकर बोली, 'यात्री ! बड़ी गहरी निद्रा में सो रहे हो। ज्ञात होता है तुम थके हुए हो। क्या किसी लम्बी यात्रा से आ रहे हो ?'

चित्रांगदा की बात सुन कर अर्जुन आँखें मल कर उठ बैठे और

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उसके रूप को देख कर बोले, 'तुम कौन हो देवि ? क्या तुम आकाश से उतर कर भू-लोक पर आई हुई कोई अप्सरा हो ? मैं अभी-अभी एक स्वप्न देख रहा था। मैंने देखा आकाश में एक देव-कन्या नृत्य कर रही है। वह धीरे-धीरे भू-लोक पर उतर रही थी। वही रूप, वही रंग, वही आभा।'

चित्रांगदा लजाकर बोली, 'यात्री ! मैं मणिपुर-नरेश की कन्या चित्रांगदा हूँ, परन्तु नृत्य मैं भी अच्छा जानती हूँ। देखिये, मेरे और आपकी देव-कन्या के नृत्य में कितना अन्तर है ?' यह कह कर वह नृत्य-रत हो गई।

चित्रांगदा का नृत्य देख कर अर्जुन बोले, 'तुम वही हो देवि ! तुम मणिपुर-नरेश की कन्या नहीं हो। मुझे धोखा देने का प्रयासन न करो,। मेरी आँखें मुझे धोखा नहीं दे सकतीं।'

अर्जुन की बात सुनकर चित्रांगदा सरल वाणी में बोली, 'मैं जो हूँ, हूँ तो वही यात्री ! परन्तु वह भी हो सकती हूँ जो आप चाहें।'

चित्रांगदा की बात सुन कर अर्जुन उसके वाक-चातुर्य पर मुग्ध हो गये। वह खड़े होकर बोले, 'देवि ! मैं तुम्हें देव-कन्या के रूप में ही देख रहा हूँ। तुम्हारे रूप ने मुझे अपना बन्दी बना लिया है। समझ नहीं रहा कि तुम मेरे पास किस अभिप्राय से आई हो।'

तब तक मणिपुर-नरेश भी उद्यान-विहार के लिये वहाँ आ गये। चित्रांगदा को एक अपरिचित व्यक्ति के पास खड़ी देख कर वह वहीं पहुँच गये। उन्होंने अर्जुन के प्रभावशाली व्यक्तित्व को देख कर उनसे पूछा, 'अपरिचित व्यक्ति ! क्या मैं तुम्हारा परिचय प्राप्त कर सकता हूँ ? क्या मैं जान सकता हूँ कि तुम यहाँ किस प्रयोजन से आये हो ? मैं मणिपुर-नरेश तुम से यह प्रश्न कर रहा हूँ।'

अर्जुन बोले, 'मणिपुर-नरेश को पाण्डु-कुमार अर्जुन सादर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रणाम करता है। मैं देशाटन करता हुआ इधर आ निकला। मैं चलते-चलते थक गया था। यहाँ इस प्रपात के निकट एक स्वच्छ शिला देख कर इस पर लेट गया और लेटते ही मुझे नींद आ गई। नींद में मैं एक स्वप्न देखने लगा। मैंने देखा कि मेरे सामने देव-कन्याएँ नृत्य कर रही थीं। उनमें से एक कन्या मुझे बहुत प्रिय लगी। मेरा मन हो आया कि मैं उससे विवाह करने का प्रस्ताव करूँ। तभी आपकी पुत्री चित्रांगदा ने मुझे आकर जगा दिया और मेरा स्वप्न भंग कर दिया। मैं उठकर बैठ गया।

चित्रांगदा को देख कर मैंने देखा कि मेरा स्वप्न भंग नहीं हुआ। वह रूपवती देव-कन्या चित्रांगदा के रूप में मेरे समक्ष खड़ी थी। सत्य कह रहा हूँ राजन् ! आपकी पुत्री चित्रांगदा और उस देव-कन्या में तनिक भी अन्तर नहीं है।'

मणिपुर-नरेश पाण्डवों के पराक्रम से पूर्व परिचित थे। उनका यश देश के कोने-कोने में व्याप्त हो चुका था। पांचाली के स्वयम्वर ने अर्जुन की ख्याति को देशव्यापी बना दिया था। अर्जुन का नाम उनके लिये अपरिचित नहीं था।

अर्जुन के साथ अपनी पुत्री का विवाह करने में मणिपुर-नरेश को कोई आपत्ति न हुई। वह बोले, 'पाण्डु-कुमार ! मुझे चित्रांगदा का तुम्हारे साथ विवाह करने में कोई आपत्ति नहीं है, परन्तु तुम्हें वचन देना होगा कि तुम चित्रांगदा को मुझ से दूर नहीं ले जाओगे। यह मेरी अकेली कन्या है। मैं इसके बिना नहीं रह सकता। तुम्हें यह भी वचन देना होगा कि इसका पुत्र मेरे राज्य का राजा होगा। तुम उस पर कोई अधिकार प्रगट करने की चेष्टा नहीं करोगे। यदि तुम्हें मेरी ये बातें स्वीकार हों तो मैं अपनी अनुमति प्रदान कर सकता हूँ।'

मणिपुर-नरेश की दोनों बातें स्वीकार करने पर चित्रांगदा के साथ अर्जुन का विवाह हो गया। अर्जुन अपनी नव-विवाहिता पत्नी के साथ

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आनन्दपूर्वक मणिपुर में रहने लगे और देशाटन की बात भूल गये। वहाँ रहते अर्जुन को तीन वर्ष व्यतीत हो गये। तीन वर्ष पश्चात् उन्हें अपने कर्त्तव्य का ध्यान आया। वह देशाटन के बहाने देश का भ्रमण करने और देश में फैले विभिन्न राज्यों से मैत्री-सम्बन्ध स्थापित करने के लिये निकले थे। यह कार्य बहुत मत्वपूर्ण था।

जिस समय अर्जुन ने मणिपुर से प्रस्थान किया उस समय चित्रांगदा गर्भवती थी। कुछ राज्यों का भ्रमण करके वह फिर मणिपुर लौटे। उस समय तक चित्रांगदा वब्रुवाहन को जन्म दे चुकी थीं। अर्जुन ने अपने पुत्र को गोद में लेकर आशीर्वाद दिया और प्यार से उसका मुख चूमा।

तब तक चित्रांगदा के पिता भी वहाँ आ गये। अर्जुन ने वब्रुवाहन को उनकी गोद में देकर कहा, 'महाराज! मैं युवराज को आपकी सुरक्षा में सौंप रहा हूँ! यह पाण्डव-कुल की आपके पास थाती रहेगी। इसे आप सँभाल कर रखें।'

चित्रांगदा के पिता ने सस्नेह बच्चे को अपनी गोद में लेकर कहा, 'मेरा सर्वस्व इस बच्चे के ऊपर न्यौछावर है अर्जुन! तुम किसी बात की चिन्ता न करो।'

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अर्जुन पूर्व प्रदेश की यात्रा समाप्त कर मध्यप्रदेश में होते हुए पश्चिम-प्रदेश की यात्रा पर जा पहुँचे। जब वह प्रभास तीर्थ के निकट पहुँचे तो उनकी श्रीकृष्ण के राजदूतों से भेंट हुई। उन्होंने अर्जुन को पहिचान लिया और कृष्ण को जाकर उनके आने को सूचना दी।

श्रीकृष्ण ने विशाल जन-समूह को साथ लेकर अर्जुन का नगर-द्वार पर स्वागत किया और सम्मानपूर्वक उन्हें राजधानी में ले गये। राजधानी में कुछ दिन ठहर कर श्रीकृष्ण और अर्जुन रैवतक पर्वत की सैर को गये। वह बहुत ही रमणीक स्थान था। उस स्थान को श्रीकृष्ण ने अर्जुन के स्वागत के लिये विशेष रूप से सजवाया।

वहाँ से श्रीकृष्ण अर्जुन को साथ लेकर द्वारिकापुरी गये। द्वारिका-निवासियों ने भी अर्जुन का हार्दिक स्वागत किया। उनके सम्मान में अनेकों सभायें हुई।

द्वारिका में एक दिन श्रीकृष्ण ने अर्जुन की धनुर्विद्या का प्रदर्शन कराया, जिसे देखने के लिये आस-पास के राज्यों के राजे पधारे। अर्जुन ने वहाँ धनुर्वेद की जो कलाएँ प्रदर्शित कीं उन्हें देख कर दर्शक लोग दंग रह गये। इतनी चमत्कारपूर्ण कलाएँ उन्होंने पहिले कभी नहीं देखी थीं।

उन्ही दिनों रैवतक पर्वत पर उत्सव की तय्यारियाँ हो रहीं थीं। वृक्षों पर मचान बनाये गये थे और उन पर नर्त्तकियाँ नृत्य कर रही थीं। वृक्षों की डालों पर बैठ कर गायक गा रहे थे। ऐसा समय बँधा कि रैवतक पर्वत संगीतमय हो गया। वहाँ का वायुमण्डल संगीत के स्वरों से बँध गया।

अर्जुन को साथ लेकर श्रीकृष्ण उत्सव देखने गये। वहाँ राजघराने

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

की स्त्रियाँ भी आई हुई थीं। उनमें से एक पर अर्जुन की दृष्टि रुक गई। श्रीकृष्ण अर्जुन की दृष्टि को पहिचान कर मुस्कराते हुये बोले, 'ज्ञात होता है धनुर्धर अर्जुन बैठे ही रहे और तीर जिगर के पार हो गया।'

अर्जुन बोले,'कृष्ण ! तुम सच कह रहो हो। मित्र के राज्य में यह कार्य मुझे शोभा नहीं देता, परन्तु अपनी निर्बलता को क्या करूँ ? मैं तो सचमुच बेचैन हो गया।'

श्रीकृष्ण बोले,'अर्जुन ! जानते हो यह कौन है ?'

'कौन हैं कृष्ण?' अर्जुन ने पूछा।

'यह बलराम की बहिन सुभद्रा हैं।'

'मैं इन्हें कैसे प्राप्त कर सकता हूँ ?'

'क्षत्रियों के विवाह या तो कन्या को बलपूर्वक उठा ले जाकर होते हैं या स्वयंवर द्वारा। स्वयंवर में यह भय रहता है कि पता नहीं कन्या किसे वरे। तुम इसे बलपूर्वक उठाकर ले जाओ। बलराम को बाद में मैं समझा लूँगा। तुम उसकी चिन्ता न करो।''

अर्जुन ने श्रीकृष्ण की ओर विशेष दृष्टि से देखा और बोले, 'अच्छा कृष्ण ! प्रस्थान। आगे तुम सँभालना।'

अर्जुन अवसर देख कर सुभद्रा को लेकर वहाँ से भाग निकले।

यह समाचार बलराम को मिला तो उनके क्रोध की सीमा न रही, परन्तु कृष्ण ने उन्हें समझा-बुझाकर शांत कर दिया। वह बोले, 'भय्या बलराम ! तनिक यह भी तो सोचिये कि सुभद्रा के लिए अर्जुन से उपयुक्त वर और कौन मिल सकता है ? यह कार्य मैंने बहुत समझ-बूझकर सम्पन्न कराया है।'

श्रीकृष्ण की बात सुनकर बलराम प्रसन्न हो गये। उन्हें सुभद्रा का अर्जुन के साथ विवाह करने में कोई आपत्ति नहीं थी।

अर्जुन की यात्रा की अवधि समाप्त हो चुकी थी। वह सुभद्रा को

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

साथ लेकर खांडवप्रस्थ लौटे। नगर के द्वार पर उनके चारों भाई, कुन्ती और पांचाली ने उनका स्वागत किया। पांचाली ने सुभद्रा को अपनी बाहुओं में भर कर उसके रूप की प्रशंसा की। वह उसे देख कर मुग्ध हो गईं।

रात्रि को सम्पूर्ण पांडव-परिवार भोजन करने बैठा तो अर्जुन ने अपनी यात्रा का वृतान्त सुनाया।

इस यात्रा में नाग-राज्य, मणिपुर और यादव-राज्य से जो उनके विशेष सम्बन्ध बने वे बहुत महत्त्वपूर्ण थे। परिवार के सभी सदस्यों ने अर्जुन की कार्यकुशलता की मुक्त कण्ठ ले सराहना की।

युधिष्ठिर बोले, 'माताजी! इस यात्रा के द्वारा अर्जुन ने वह कार्य किया है उसे दस अश्वमेध यज्ञ भी पूरा नहीं कर सकते। पांडव-राज्य का प्रभाव व्यापक करने के लिए यह यात्रा बहुत प्रभावशाली रही। अर्जुन जिस-जिस राज्य में गये हैं, वे सब भय से नहीं प्रेम-भाव से हमारे मित्र बने हैं।'

युधिष्ठिर की बात सुनकर माता कुन्ती और परिवार के अन्य सदस्यों को आत्मतुष्टि हुई।

दूसरे दिन बलराम जी और श्री कृष्ण अपनी बहिन सुभद्रा का दहेज लेकर वहाँ आये। पांडवों ने उनका सादर सप्रेम स्वागत किया और उन्हें सम्मानपूर्वक राजमहलों में ले गये।

खांडवप्रस्थ के पास एक विशाल वन था, जो यमुना नदी के दोनों ओर दूर-दूर तक फैला हुआ था। उसमें भयानक जीव-जन्तु रहते थे। उसी के अन्दर अनेकों डाकुओं ने अपने गढ़ बनाये हुए थे, जो नगर में रहने वालों को त्रस्त करते रहते थे।

खांडवप्रस्थ केनिवासियों के पास खेती के करने योग्य भूमि बहुत कम थी। अन्न पैदा करने के लिये नगर-निवासियों को खेती-योग्य भूमि की नितान्त आवश्यकता थी।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

एक दिन श्रीकृष्ण और अर्जुन नौका-विहार के लिए यमुना पर गये। नौका पर बैठ कर उन्होंने दोनों ओर के खांडव-वन का निरीक्षण किया। उसे देखकर दोनों ने निश्चय किया उस वन को जला डालना चाहिये। इससे खेती के लिये बहुत सी जमीन निकल आयेगी।

श्रीकृष्ण द्वारा प्रतिपादित मत को कार्यरूप में परिणित करने के लिये अर्जुन ने नौका में बैठे-बैठे ही अग्नि बाणों की बौछार से वन में अग्नि प्रज्वलित कर दी। वन भवक-भवक करके जलने लगा। अग्नि की लपटें आकाश का चुम्बन करने लगीं।

वन में आग लगनी थी कि उनके बीच आश्रय ग्रहण करने वाले चोर-उचक्के तथा डाकू अपने अस्त्र-शस्त्र तथा अन्य लूटपाट का सामान वहीं छोड़कर भाग खड़े हुए। उनमें से कुछ तो आग में जल कर भस्म हो गये और कुछ खांडवप्रस्थ निवासियों के हाथ लगे।

खांडव वन के जल जाने से खांडवप्रस्थ निवासियों के सब संकट दूर हो गये। उन्हें खेती करने के लिये पर्याप्त भूमि मिल गई। चोर डाकुओं का भय कम हो गया। जंगली जीव-जन्तुओं का भय भी जाता रहा। एक बहुत बड़ा भू-खंड निर्माण-कार्यों के लिये निकल आया।

यह सूचना हस्तिनापुर पहुँची तो दादा भीष्म ने पांडवों के पराक्रम की सराहना की। माता सत्यवती के मन में यह समाचार मिश्री की डली के समान घुल गया। वह गद्-गद् हो गईं। उन्होंने पांडवों की बुद्धिमत्ता की सराहना की।

हस्तिनापुर की प्रजा को यह समाचार मिला तो उनका एक बहुत बड़ा जन-समूह खांडवप्रस्थ के लिये चल दिया। उस जन-समूह का पांडवों तथा खांडवप्रस्थ के निवासियों ने हार्दिक स्वागत किया और उनके वहाँ रहने का समुचित प्रबन्ध किया।

उसी समय शिल्पी मय की श्रीकृष्ण और अर्जुन से भेंट हुई। वे उसे महाराज युधिष्ठिर के पास ले गये।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

महाराज युधिष्ठिर ने कृष्ण का अभिवादन किया और अर्जुन ने उनके चरण छूकर शिल्पी मय का उन्हें परिचय दिया। शिल्पी मय ने खांडवप्रस्थ में एक विशाल सभा-भवन और यज्ञ-मंडप बनाने की इच्छा प्रकट की। ये दोनों भवन वह ऐसे बनाना चाहता था, जैसे भारत में अन्यत्र कहीं न हों।

महाराज युधिष्ठिर शिल्पी मय के नाम से पूर्व परिचित थे। वह सहर्ष बोले, 'भाई कृष्ण ने जिस कार्य को सम्पन्न करने की सहमति प्रकट की हैं उसके लिये मेरी आज्ञा की क्या आवश्यकता है अर्जुन ? निर्माण-कार्य आरम्भ किया जाये।'

महाराज युधिष्ठिर की आज्ञा प्राप्त कर शिल्पी मय ने निर्माण-कार्य आरम्भ किया। पाँच हजार हाथ लम्बे-चौड़े मैदान में नीव खोद कर उस विशाल भवन का शिलान्यास किया गया। उसका शिलान्यास श्री कृष्ण से कराया गया। एक समारोह के साथ यह कार्य आरम्भ हुआ, जिसे देखने खांडवप्रस्थ में सब लोग आये। यह एक विशाल आयोजन था।

सभा-भवन का निर्माण-कार्य बहुत तीव्र गति से हुआ। उसके पूर्ण होने पर एक विराट यज्ञ का आयोजन हुआ। याचकों को मुँह माँगी दक्षिणा दी गई। वेदों की तुमुल-ध्वनि के बीच यज्ञ सम्पन्न हुआ। खांडवप्रस्थ का सम्पूर्ण वायुमंडल गुंजायमान हो गया। इस शुभ अवसर पर संगीत और नृत्य-कला के विशेषज्ञों ने अपनी कला का प्रदर्शन किया। मंगलाचरण-कार्य उन्हीं के द्वारा सम्पन्न हुआ।

अर्जुन के यात्रा से लौटते ही महाराज युधिष्ठिर ने राजसूय-यज्ञ करने का निश्चय कर लिया था। सभा-भवन और यज्ञ मंडप के बन जाने पर उनकी यह इच्छा और भी बलवती हो गई।

नव-निर्मित यज्ञ-मंडप की वेदी पर खड़े होकर महाराज युधिष्ठिर ने राजसूय-यज्ञ की घोषणा की तो खांडवप्रस्थ की जनता ने हर्ष-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ध्वनि के साथ उसका स्वागत किया। यज्ञ में उपस्थित आचार्यों और ऋषियों ने भी महाराज युधिष्ठिर के बिचार की सराहना की। महाराज युधिष्ठिर बोले, 'इस कार्य को सम्पन्न करने के लिये मैं चाहूँगा कि पहिले महाराज श्री कृष्ण से इस विषय में परामर्श किया जाये।'

महाराज युधिष्ठर की इस बात का सभी उपस्थित सज्जनों ने समर्थन किया और उसी समय राजदूत द्वारिकपुरी भेज दिया गया।

महाराज युधिष्ठिर का संदेश प्राप्त कर श्री कृष्ण तुरन्त खांडव-प्रस्थ पधारे। उनके समक्ष राजसूय-यज्ञ का प्रस्ताव रखा गया तो वह बोले, 'मैं आपको इस अनुष्ठान को सफल बनाने का अधिकारी मानता हूँ महाराज युधिष्ठिर! आपके अन्दर वे सभी गुण वर्त्तमान हैं जो एक चक्रवर्ती सम्राट में होने चाहिएँ। मेरी इस शुभ कार्य में सहर्ष अनुमति है, परन्तु इस कार्य को आरम्भ करने से पूर्व आपको अपनी स्थिति का सही अध्ययन कर लेना आवश्यक है। आपको यह समझ कर नहीं चलना होगा कि आपका कोई शत्रु नहीं है। जरासंध आपके इस शुभ कार्य में विघ्न डालने का प्रयास करेगा। उसके पास आपसे बड़ी सेना है। सेना के अतिरिक्त वह स्वयं भी महापराक्रमी है। उसे परास्त करने के लिये शारीरिक बल की अपेक्षा बुद्धि-बल का अधिक प्रयोग करना होगा। उसको केवल सैन्य-बल से हराना सरल नहीं हैं।'

कृष्ण की बात सुनकर पहिले तो युधिष्ठिर जरासंध की शक्ति से कुछ भयभीत हुए परन्तु तुरन्त ही साहसपूर्ण स्वर में बोले, 'जिस कार्य के नीति-संचालक श्री कृष्ण हों उसकी सफलता में युधिष्ठिर को किंचितमात्र भी शंका करने का कोई कारण नहीं है। क्या जरासंध द्वारा हम पर आक्रमण किये जाने और उसे स्वयं को हमारा शत्रु घोषित करने से पूर्व उसके विनाश की बात सोचना अधर्म न होगा?'

धर्मराज युधिष्ठिर की धर्मभीरुता को देखकर श्रीकृष्ण के मुख-मंडल

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पर हास्य की रेखाएँ खिंच गईं। वह मुस्कराकर बोले, 'राजा केवल अपने ही शत्रु का विनाश करने के लिये नहीं होता है, बल्कि जनता के शत्रु का विनाश करना भी उसका धर्म है। मदान्ध जरासंध जनता का महान् शत्रु है। उसके करागार में बहुत से राजा बन्द पड़े हैं। उसने निश्चय किया है कि वह उन राजाओं की नरमेध-यज्ञ में बलि देगा। क्या यह जघन्य अपराध नहीं है? क्या धर्म को इस भीषण नर-हत्या के विरुद्ध नहीं उठना चाहिए? क्या आप यह सब देख सकेंगे? क्या आप का धर्म आपको यह सब सहन करने की आज्ञा देगा?'

युधिष्ठिर बोले, 'तो क्या आप ऐसे राजा को छल-बल से मारना धर्म-नीति के अनुकुल नहीं है? मैं छल प्रयोग से सहमत नहीं हूँ। यह धर्म-नीति के अनुकुल समझते हैं? मैं छल प्रयोग से सहमत नहीं हूं। यह मेरी धर्म-नीति के विरुद्ध कर्म होगा?'

कृष्ण मुस्कराकर बोले, 'आपकी धर्म-नीति की मैं सराहना करता हूँ महाराज! परन्तु यह न भूलिये कि आप धर्मात्मा होने के साथ-साथ राजा भी हैं और राजनीति को भुला कर आप नहीं चल सकते। क्या आपको स्मरण नहीं है कि आचार्य बृहस्पति ने आचार्य कच को शुक्राचार्य के पास इसी लिये भेजा था। यदि केवल धर्म-नीति ही पर्याप्त होती तो बृहस्पति से बड़ा धर्म-नीति का आचार्य उस समय अन्य कौन था? जरासंध को मल्ल-युद्ध के लिये ललकारा जाये। भीम के समक्ष वह विजयी नहीं हो सकता। जरासंध पर विजय प्राप्त करना आपकी विजय-दुन्दभी बजना होगा। आप मेरे साथ केवल अर्जुन और भीम को भेज दीजिये और देखिये मैं क्या करता हूँ। मुझे सेना की आवश्यकता नहीं है।'

युधिष्ठिर ने सहर्ष अर्जुन और भीम को श्री कृष्ण के साथ जाने की अनुमति दी। श्रीकृष्ण, अर्जुन और भीम स्नातक वेष-धारण कर मगध की ओर चल दिये। मगध की राजधानी में पहुँच कर नगर से बाहर तीनों देव-मन्दिर में ठहर गये तथा रात्रि में वहाँ विश्राम किया।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उन्होंने प्रातःकाल उठकर नगर में उपद्रव कपना आरम्भ कर दिया, देव-मंदिर के कलश को गिरा दिया और फिर नगर की दीवार फाँद कर नगर में प्रवेश किया। वे सीधे जरासंध के दरबार में जा पहुँचे और सभा में विघ्न कर दिया। उनके मार्ग में जो भी आया उन्होंने उसी से मार-पीट की।

उन्हें विप्र वेष में देखकर जरासंध उनके अभिवादन को उठा परन्तु उन्होंने जरासंध का अभिवादन अस्वीकार कर दिया। यह देख-कर जरासंध चकित रह गया। उसकी समझ में कुछ न आया।

उसने पूछा, 'आप लोग कौन हैं? आपने हमारा अभिवादन स्वीकार क्यों नहीं किया? आप क्या चाहते हैं?'

ये बातें चल रही थीं कि तभी द्वारपाल ने इन विप्रों द्वारा मचाये गये उत्पात की सूचना दरबार में आकर दी और बताया कि उन्होंने देव-मंदिर का कलश गिरा दिया तथा वे नगर की दीवार फाँदकर अन्दर आये हैं।

यह सुनकर जरासंध बोला, 'तुम लोग अपना परिचय दो कि तुम कौन हो? तुमने अकारण मन्दिर के कलश को गिराने का अपराध क्यों किया? तुमने हमारे नगर में उत्पात क्यों मचाया? तुमने दीवारों को फाँद कर नगर में प्रवेश क्यों किया?'

महाराज श्रीकृष्ण बोले, 'हम लोग ब्राह्मण नहीं हैं। इसी लिये हमने तुम्हारा अभिवादन स्वीकार नहीं किया। हम तुम्हारे पुराने शत्रु हैं। इस लिये हमने तुम्हारी नगरी में प्रवेश-द्वार से प्रवेश नहीं किया। हम लोग शत्रु को परास्त किये बिना उसका अभिवादन स्वीकार नहीं करते। शत्रु होने के नाते ही हमने तुम्हारी नगरी में उत्पात मचाया है।'

जरासंध ने आश्चर्यचकित होकर पूछा, 'हमारी तुम्हारी कब की और कैसी शत्रुता है? हमने तुम्हारी क्या हानि की है? हम तो

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तुम्हें पहिचानते भी नहीं।'

कृष्ण ने जरासंध को अपना, भीम तथा अर्जुन का परिचय दिया और उसे मल्ल-युद्ध के लिये ललकार कर कहा, 'तुम में यदि पराक्रम है तो हमारे साथ मल्ल-युद्ध करो।'

जरासंध क्रोध में बौखला कर बोला, 'भगोड़े कृष्ण ! तू मेरा सामना करने आया है। मैं तेरे साथ मल्ल-युद्ध स्वीकार करना अपना अपमान समझता हूँ। हाँ भीम से मल्ल-युद्ध करने को मैं उद्यत हूँ। भीम वीर है। मैं उसके साथ युद्ध कर सकता हूँ।'

कृष्ण मुस्करा कर बोले, 'तू भीम से मल्ल-युद्ध करना चाहता है तो भीम से ही युद्ध कर। हमें इसमें कोई आपत्ति नहीं है। हम तुझे मार कर तेरे कारागार में बन्दी राजाओं का अभिवादन ग्रहण करने आये हैं। तू उनकी नरमेध-यज्ञ में बलि देना चाहता है। हम यह पाप कदापि नहीं होने देगें। हमारे यहाँ आने का अभिप्राय समझा ?'

कृष्ण की ललकार सुन कर जरासंध क्रोध से आग हो गया। वह खुम ठोक कर सामने आगया। भीम को भी मैदान में उतरते देर न लगी।

दोनों वीर मल्लशाला में पहुँच गये और दो हाथियों के समान आपस में भिड़ गये। भीम ने जरासंध को उठा कर भूमि पर पटक दिया, परन्तु जरासंध भूमि पर पड़ा-पड़ा भी भीम के वश में नहीं आरहा था।

यह स्थिति देख कर कृष्ण ने करतल-ध्वनि की और संकेत द्वारा भीम को बताया कि वह जरासंध के एक पैर को अपने पैर के नीचे दबाकर दूसरे को हाथ से चीर डाले। भीम ने इस युक्ति को समझ कर वैसा ही किया और जरासंध के दो टुकड़े करके मल्लशाला में इधर-उधर फेंक दिये। जरासंध का इस प्रकार अन्त हुआ।

जरासंध को समाप्त कर कृष्ण ने उसके सिंहासन पर अधिकार

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कर लिया और कारागृह के बंदी राजाओं को मुक्त करने का आदेश दिया। सब राजाओं को मुक्त करा कर कृष्ण ने जरासंध के पुत्र सहदेव को उसकी जगह गद्दी पर बिठाया। मुक्त राजाओं ने श्रीकृष्ण का अभिवादन किया और उन सभी ने सहदेव के साथ महाराज युधिष्ठिर को चक्रवर्ती राजा मान लिया। कृष्ण ने उन सब को राजसूय-यज्ञ का निमंत्रण दिया और निश्चित तिथि पर खाण्डवप्रस्थ बुलाया।

यह कार्य सम्पन्न कर कृष्ण भीम और अर्जुन को अपने साथ लेकर खाण्डवप्रस्थ लौट आये। जरासंध उनके मार्ग का एक भयंकर काँटा था। उसके समाप्त होने से बहुत से राजे उनके अनुयाई हो गये।

जरासंध के वध ने पाण्डवों के राजसूय-यज्ञ का मार्ग निष्कंटक कर दिया। महाराज युधिष्ठिर ने अपने चारों भाइयों को चारों दिशाओं में दिग्विजय के लिये भेजा। चारों भाइयों ने चारों दिशाओं में पाण्डव-राज्य की पताका फहराई और यथा समय चारों राजधानी में वापस लौट आये। भारत के किसी राजा में उन्हें रोकने का साहस न हुआ। उनका घोड़ा सभी राज्यों में होता हुआ खाण्डवप्रस्थ आगया।

महाराज युधिष्ठिर श्रीकृष्ण का अभिवादन करके बोले, 'महाराज! यह सब आपकी ही कृपा है। आपके ही दिशा-दर्शन ने इस महान् कार्य को सफलता प्रदान की है। मेरे चारों भाई दिग्विजय करके राजधानी में लौट आये हैं। अब राजसूय-यज्ञ की तैयारी कराइये।'

श्रीकृष्ण हर्षित होकर बोले, 'अब विलम्ब की आवश्यकता नहीं है महाराज! शुभ कार्य जितना शीघ्र आरम्भ हो, उतना ही अच्छा होता है। आप तुरन्त सब राजाओं को निमंत्रण भेज दीजिये और राजसूय-यज्ञ की घोषणा कर दीजिये।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

राजसूय-यज्ञ के लिये नगर की सजावट का कार्य शिल्पकार मय को सौंपा गया। सभा-भवन और यज्ञ-मण्डप को विशेष रूप से सजाया गया। नकुल को हस्तिनापुर भेज कर माता सत्यवती, अम्बालिका, दादा भीष्म, आचार्य द्रोण, कृपाचार्य, विदुर और कौरव-परिवार को आमंत्रित किया गया। वे सब पाण्डवों का निमन्त्रण प्राप्त कर खाण्डवप्रस्थ पधारे।

भारत के सब राजाओं ने इस उत्सव में भाग लिया। महाराज युधिष्ठिर ने उनका समुचित सम्मान किया। इन राजाओं ने भी इस शुभ अवसर पर अपनी-अपनी भेंट दीं।

माता सत्यवती और दादा भीष्म ने यथा समय पहुँच कर अपने आसन ग्रहण किये। उन्होंने महाराज युधिष्ठिर को यज्ञ में आने वाले राजाओं का पूजन करने की आज्ञा दी और सर्वप्रथम श्रीकृष्ण का पूजन करने को कहा।

महाराजा युधिष्ठिर ने दादा भीष्म की आज्ञा का पालन किया। राजसूय-यज्ञ आरम्भ हुआ। वेदव्यास, भारद्वाज, पराशर, विश्वामित्र इत्यादि ऋषियों ने तुमल ध्वनि से वेद-मन्त्रों का पाठ आरम्भ किया।

इधर यज्ञ हो रहा था और उधर दुर्योधन अपने कुचक्रों पर जुटा था। वह यज्ञ में बाधा उपस्थित करना चाहता था। वह यह नहीं चाहता था कि यज्ञ शान्तिपूर्वक सम्पन्न हो।

कृपाचार्य रत्नाभूषणों के संरक्षक थे। श्रीकृष्ण विप्रों के चरण धो का कार्य कर रहे थे। सब कार्य विधिवत सम्पन्न हो रहे थे। तभी एक ओर कुछ कोलाहल सुनाई दिया।

सब की दृष्टि उस ओर गई। शिशुपाल सभा के मध्य खड़ा होकर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उच्च-स्वर में चिल्ला रहा था । वह युधिष्ठिर से बोला, 'युधिष्ठिर ! तूने सर्वप्रथम कृष्ण का पूजन करके हमारा अपमान किया है । बुढ़ापे ने यदि भीष्म का मस्तिष्क विचार करने योग्य नहीं छोड़ा है तो तुझे तो उचित-अनुचित का ध्यान रखना चाहिये था । हम इस यज्ञ में भाग नहीं लेंगे ।'

दादा भीष्म के लिये अपमानजनक शब्द सुन कर भीम का रक्त उबाल खागया । वह गदा लेकर उसकी ओर लपके तो महाराज युधिष्ठिर ने उन्हें रोक दिया । शिशुपाल को दुर्योधन ने यज्ञ में विघ्न डालने को भेजा था । वह बोला, 'भीष्म ! तुम ब्रह्मचारी नहीं, अनाचारी और कापुरुष हो । वृद्धावस्था में तुम्हारी मति भ्रष्ट हो गई है । यह सब दोष तुम्हारा ही है । तुमने सर्वप्रथम कृष्ण का पूजन करने की युधिष्ठिर को आज्ञा देकर हमारा अपमान कराया है । हम इस अपमान को कदापि सहन नहीं करेंगे ।'

रंग में भंग न हो, इसलिये दादा भीष्म शिशुपाल की बन्दर-घुड़कियाँ सुन कर भी मुस्करा दिये परन्तु शिशुपाल फिर भी अनर्गल बातें करता रहा । वह शान्त नहीं हुआ ।

भीम के धैर्य का बाँध टूट गया । वह गदा उठा कर बोले, 'शिशुपाल ! जबान बन्द कर, वरना अभी तेरा शव भूमि पर पड़ा दिखाई देगा । तू हमारा अतिथि है, इसलिये मैं अब तक मौन बना रहा ।'

कृष्ण गम्भीर वाणी में बोले, 'शिशुपाल ! सभ्यता की सीमा का उल्लंघन न कर । दादा भीष्म क्या तेरे दादा के समान नहीं हैं, जो तूने भरी सभा में उनके लिये ऐसे अपशब्दों का प्रयोग किया ?'

कृष्ण की बात सुनकर शिशुपाल कृष्ण की ओर मुँह करके बोला, 'दूसरों के टुकड़ों पर पलने वाले ग्वाले ! तू सभ्यता को क्या जाने ? तुझे इतने बड़े-बड़े विद्वानों और राजाओं के मध्य सर्वप्रथम अपना अभिवादन कराते लज्जा नहीं आई। अपने बड़े भाई बलराम के रहते

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तूने अपना पूजन कराया। तूने उसका भी ध्यान नहीं रखा। तूने कंस का नमक खाया और उसे ही मृत्यु के घाट उतारा। अधर्मी कहीं के, मेरी आँखों के सामने से दूर हट जा। यदि नहीं हटता तो युद्धि के लिये तय्यार हो जा। मैं तुझे युद्ध की चुनौती देता हूँ।'

शिशुपाल ने जब सीधा कृष्ण को ही अपने क्रोध का लक्ष्य बनाया और उन पर अपशब्दों की बौछार करनी आरम्भ की तो श्री कृष्ण मुस्करा कर कुछ देर शान्त रहे, परन्तु फिर उनका रूप बदलने लगा। उनके नेत्र लाल हो गये। यादव-वंशियों के क्रोध का भी पारावार न रहा। वे सब क्रोध से काँप रहे थे।

शिशुपाल तलवार खींच कर श्रीकृष्ण की ओर बढ़ा तो वह बोले, 'शिशुपाल ! तेरा काल तेरे सिर पर मँडरा रहा है। अब तुझे कोई नहीं बचा सकता।' यह कहकर उन्होंने उस पर सुदर्शन चक्र का प्रहार किया। चक्र कौंधती हुई विद्युत के समान बल खाता हुआ शिशुपाल का वध करके फिर श्री कृष्ण के पास आ गया। शिशुपाल का सिर कट कर भूमि पर गिर गया।

सभा-भवन में हर्षध्वनि हुई और शिशुपाल के सब साथी वहाँ से भाग खड़े हुए। धर्मराज युधिष्ठर ने शिशुपाल के पुत्र महिपाल को राजा घोषित कर अपने मित्र राजाओं में सम्मिलित कर लिया। इस प्रकार दुर्योधन का यह षड़यंत्र विफल हो गया। फिर किसी अन्य राजा में दुःसाहस करने का साहस न हुआ।

राजसूय-यज्ञ का कार्य अबाध गति से चलता रहा। यज्ञ की पूर्णाहूति गायत्री-मन्त्र के साथ दी गई। उपस्थित राजाओं ने महाराज युधिष्ठिर को चक्रवर्ती राजा स्वीकार किया और विधिवत उनका भारद्वाज ऋषि ने अभिषेक किया। सब कार्य निर्विघ्न समाप्त हो गया।

दुर्योधन को शिशुपाल के वध का समाचार मिला तो उसे हार्दिक खेद हुआ। यह कुचक्र फलीभूत न हुआ तो उसने दुश्शासन से कहा,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

'तुम पांण्डवों के कोष को इस प्रकार लुटवाओ कि याचक रह जायें और कोष रिक्त हो जाये। पांडवों की यश-वृद्धि नहीं होनी चाहिये।'

दुश्शासन बोला, 'यही होगा महाराज! आप निश्चित रहें। सभा-भवन में कृष्ण ने पांडवों के सम्मान की रक्षा करली, परन्तु मैं यहाँ देखूँगा कि कृष्ण क्या करता है। देखता हूँ वह पांडवों के कोष की पूर्ति किस प्रकार करेगा।''

यज्ञ के पश्चात् याचकों को दान-दक्षिणा देने का कार्य आरम्भ हुआ। अभी आधे याचकों ने भी दक्षिणा प्राप्त नहीं की थी कि भंडार रिक्त हो गया। दुर्योधन ने महराज युधिष्ठिर, दादा भीष्म, द्रोण और अन्य गुरुजनों के सामने भडार की सामग्री समाप्त होने पर गम्भीर चिंता व्यक्त की।

युधिष्ठिर बहुत चिंतित हुये। श्री कृष्ण मुस्करा कर बोले, 'धर्मराज युधिष्ठिर का कोष रिक्त हो गया, इसे मैं उपहासपूर्ण समझता हूँ। भय्या दुर्योधन ने सम्भवतः उस कोठरी को ही धर्मराज युधिष्ठिर का कोष समझ लिया है, जिसका प्रबन्ध दुश्शासन के पास है। ऐसी हजारों कोठरियाँ अभी धन से भरी पड़ी हैं। भाई दुर्योधन और दुश्शासन इस शुभ अवसर पर विप्रों को जी खोल कर धन लुटायें फिर भी धर्मराज युधिष्ठिर के कोष में कमी आने वाली नहीं है।'

श्री कृष्ण की यह बात सुनकर महाराज युधिष्ठिर का बुझा हुआ दिल खिल गया। दुर्योधन का दिमाग चकरा गया। उसकी आँखें लज्जा से नीचे झुक गईं। माता सत्यवती और दादा भीष्म परिस्थिति का अध्ययन कर रहे थे। दुर्योधन की नीचता का उन्हें उसकी प्रत्येक कार्यवाही से परिचय प्राप्त हो रहा था। शिशुपाल के काण्ड को देखकर वे समझ गये थे कि वह दुर्योधन का ही कुचक्र था। इस घटना ने उसे और भी स्पष्ट कर दिया। वह कुरु-कुल की मर्यादा, ख्याति और सम्मान के साथ खेल खेल रहा था।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

श्री कृष्ण दादा भीष्म और माता सत्यवती को साथ लेकर खांडव-प्रस्थ की सैर के लिये चले गये। श्री कृष्ण ने उन्हें अपने रथ पर बिठाकर सम्पूर्ण नगर की सैर कराई। वहाँ से वह यमुना-किनारे गये और नौका पर बैठ कर जल-विहार के लिये निकल गये।

यमुना के दोनों किनारों की लहलहाती हुई खेती को देख कर माता सत्यवती और दादा भीष्म प्रफुल्लित हो गये।

माता सत्यवती एक तटवर्ती बगिया को देखकर नाविक से बोलीं, 'नाविक ! नौका को उस बगिया के निकट ले चलो।'

श्री कृष्ण कुछ समझ न सके, परन्तु भीष्म के मानस-पटल पर अतीत की रेखाएँ अंकित हो गईं। रजनीगंधा की सुगन्धि से युक्त उस वातावरण में पहुँच कर माता सत्यवती को अपने बचपन का स्मरण हो आया। उनकी प्राचीन स्मृतियाँ सजग हो उठीं।

नौका उस बगिया में बनी कुटिया के किनारे के निकट पर जाकर लगी। श्रीकृष्ण, माता सत्यवती और भीष्म नौका से उतर कर उस बगिया में पहुँचे, जिसमें रजनीगंधा के पौधे लहलहाकर अपनी सुगन्धि पवन पर बिखरा रहे थे।

माता सत्यवती का मन आनन्दविभोर हो गया। उन्होंने नाविक से पूछा, 'यह कुटिया किस की है ?'

नाविक सिर नीचा करके बोला, 'यह झोंपड़ी इसी सेवक की है राज माता !'

'तुम्हारी !' यह कह कर विशेष आकर्षण के साथ माता सत्यवती ! अपनी दृष्टि धीरे से भीष्म की ओर घुमाकर बोलीं, 'देवव्रत ! याद है तुम्हें वह रजनीगंधा, जो ऐसी ही बगिया को सींचा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

करती थी। वह कितनी प्रसन्न थी उस समय? तुमने उसका सुख छीन कर उसके पैरों में बेड़ियाँ डाल दीं।' कहते-कहते वह मौन हो गईं। उनके नेत्र सजल हो गये।

दादा भीष्म मुस्कराकर बोले, 'माता रजनीगंधा! यह स्थान सचमुच वैसा ही है। इस की हर चीज उससे मिलती है।'

श्री कृष्ण बोले, 'माता सत्यवती! आपको बचपन से बगिया लगाने का शौक रहा है। जब गंगा किनारे की कुटिया में रहती थीं तो रजनीगंधा के पौधे उगाती थीं और जब कुरु-वंश के महलों में पदार्पण किया तो कुरु-वंश की उजड़ती हुई बगिया को हरा-भरा किया। आप के अतिरिक्त अन्य कोई स्त्री इतने साहस का परिचय नहीं दे सकती थी।'

माता सत्यवती बोलीं, 'यह तो ठीक है कृष्ण! परन्तु इस बगिया को उजाड़ने का दोष भी तो मेरे ही सिर पर है। मेरी आँखों ने अपनी प्रेम की वेदी पर अपने पुत्र का बलिदान दिया है। मैं कुरु-वंश के धाराप्रवाह में एक दीवार बन कर आ खड़ी हुई। मैंने प्राचीन वृक्ष को काट कर नया पौधा लगाने का प्रयास किया। महानता मेरी नहीं, महानता उस कटे हुए वृक्ष की है जिसने उन नन्हें पौधों को अपने रक्त से सींचा और पाल-पोस कर इतना बड़ा किया।

यह पांडवों का राजसूय-यज्ञ.....' कहते कहते उनका कंठ सूख गया। उनके नेत्र भीष्म के चेहरे पर टिके थे। कृष्ण उन दोनों की ओर देख रहे थे। मन्द पवन बह रही थी। रजनीगंधा की भीनी-भीनी सुगन्धि वायुमंडल में भर रही थी।

श्री कृष्ण माता सत्यवती के मनोभावों को समझ रहे थे। उनके मन की शंकाओं के पृष्ठ उनके समक्ष खुले हुए थे। पांडवों का यह राजसूय-यज्ञ कुरु-कुल की प्रतिष्ठा को चार चाँद लगाने वाला था।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

माता सत्यवती गम्भीरतापूर्वक बोलीं, 'बेटा कृष्ण ! मेरा साहस कहो, या दुःसाहस, परन्तु इस राजसूय-यज्ञ का फल शुभ नहीं होगा। मुझे कुरु-कुल के ऊपर विपत्ति और विनाश के काले बादल मँडराते दिखाई दे रहे हैं। एक भयंकर तूफान आ रहा है। कह नहीं सकती इसका परिणाम क्या निकलने वाला है। मुझे इस कुल का भविष्य अंधकारपूर्ण दिखाई दे रहा है। मेरा मन शंकाओं से काँप रहा है।'

'मैं इस बाढ़ को रोकने का प्रयास करूँगा माँ ! कुरु-कुल पर मँडराने वाले तूफान के सामने भीष्म की अडिग छाती फौलादी दीवार बन कर खड़ी हो जायेगी। वह तूफान कुरू-कुल को उखाड़ कर नहीं फेंक सकता।' दादा भीष्म ने कहा।

श्री कृष्ण दादा भीष्म की ओर देख कर मुस्कराते हुए बोले, 'दादा भीष्म ! आपकी दृष्टि उस विघटन के निकट अभी नहीं पहुंच पाई है जिसे माता सत्यवती स्पष्ट देख रही हैं। निश्चय ही इस राजसूय-यज्ञ ने कुरु-कुल में वह ज्वाला प्रज्वलित करदी है जो स्वर्ण को कुन्दन बना देगी और खोट को जला कर भस्म कर देगी। इस स्वर्ण की अग्नि परीक्षा आवश्यक है।

महाराज ययाति, आचार्य कच और देवयानी के स्त्रोतों से प्रवाहित होकर आनेवाली इस निर्मल धारा में जो गंदगी मिल गई है उसे दादा भीष्म के त्याग और तपस्या की गरिमा शुद्ध नहीं कर सकेगी। दादा के त्याग और तपस्या का अब उसके निकट कोई मूल्य नहीं रह गया है। उस त्याग पर लोभ और स्वार्थ का परदा पड़ता जा रहा है। उसे हटाना आपकी सामर्थ से बाहर की चीज बन गया है।'

श्रीकृष्ण की बात सुनकर भीष्म ने गम्भीर श्वाँस ली और कातर वाणी में बोले, 'आप ठीक कह रहे हैं श्रीकृष्ण ! मेरी विचार-शक्ति क्षीण होती जा रही है। धृतराष्ट्र निकम्मा निकल गया। दुर्योधन कुल-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कलंकी सिद्ध हुआ। ऐसी स्थिति में मैं कर भी क्या सकता हूँ ? मैंने इस राज्य से उसी दिन सम्बन्ध विच्छेद कर लिया था जिस दिन आदित्य ब्रह्मचारी रहने का प्रण किया था। मेरा राजसत्ता से कोई सम्बन्ध नहीं है। मैं आज तक माता सत्यवती की आज्ञा का पालन करता आ रहा हूँ। इसी लिये इस जंजाल में फँसा हूँ। अब देख रहा हूँ कि इनका भी सत्ता में कोई महत्व नहीं रहा।'

श्रीकृष्ण ने दादा भीष्म की ओर देख कर कहा, 'दुर्योधन ने बहुत भयंकर स्थिति पैदा कर दी है। वह कुरु-कुल की प्रतिष्ठा को पैरों से रौंदने पर उतारू है।'

माता सत्यवती की आँखों में आँसू आ गये। उन्होंने श्रीकृष्ण की ओर देखकर कहा, 'बेटा कृष्ण ! फूल और काँटे एक ही डाल पर लगते हैं। वृक्ष उन दोनों को अपने बदन पर लगा कर मुस्कराता है। मेरे अन्तर में चाहे जितनी भी पीड़ा क्यों न हो, मैं मुस्कराती ही रहूँगी। काँटे मेरे बदन में चुभेंगे तो क्या पुष्प अपनी सुगन्धि से मेरे मानस को भर कर सांत्वना प्रदान नहीं करेंगे ? संसार इसी सुख-दुःख की विभीषिका है।'

'क्यों नहीं भरेंगे ? यह राजसूय-यज्ञ, जो पाण्डवों ने किया है, इस की सुगन्धि क्या देश-देशान्तरों में नहीं फैलेगी ? पुष्प तो अपनी सुगन्धि फैलायेगें ही। यह कुरु-वंश की ही तो सुगन्धि है।' श्रीकृष्ण के इन शब्दों से माता सत्यवती के उद्भ्रांत मन को सान्तवना प्राप्त हुई। तीनों वहाँ से चलकर नौका के निकट आये और उस पर बैठ गये।

दुर्योधन की सब चालें असफल सिद्ध हुईं। उसने यज्ञ में विघ्न डालने के जो-जाल रचे उस सब को श्रीकृष्ण ने काट दिया। उसकी इच्छा पूर्ण न हो सकी। उसके हृदय में जो द्वेष की ज्वाला सुलग रही थी वह अन्दर ही सुलगती रह गई।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पांचाली और भीम सभा-भवन की छत के ऊपर खड़े भवन में प्रवेश करने वाले राजाओं को देख रहे थे। उनमें से कुछ जहाँ सूखा था वहाँ अपने वस्त्र सँवार-संभाल कर पग बढ़ाते थे और जहाँ पानी था वहाँ सूखा समझ कर वस्त्र छोड़कर अपनी मूर्खता पर लज्जित होते थे।

सभा-भवन को पार कर जब वे राज-भवन में प्रवेश करना चाहते थे तो दीवार को द्वार समझ कर उससे टकरा जाते और फिर दीवार पकड़ कर उसके सहारे-सहारे द्वार खोजते थे। उन्हें द्वार खोजने में पर्याप्त कठिनाई होती थी।

भीम और पांचाली इस दृश्य को देख कर आनन्द लाभ कर रहे थे। उनकी दृष्टि दुर्योधन पर गई। दुर्योधन ने सभा-भवन के मैदान में प्रवेश किया। उन्हें अपने सामने लगा मानो पानी भरा था। वह उससे बचकर बराबर में सड़क के किनारे जलाशय पर आ गये। जलायश उन्हें मैदान प्रतीत हुआ। वह आगे बढ़े गये उनका पैर पानी में चला गया और जूते, धोती तथा कुर्ता सब पानी में भीग गये।

पांचाली मुस्करा कर बोली, 'देख रहें हैं अपने भाई साहब को। पानी में डुबकियाँ लगा रहे हैं।'

भीम बोले, 'यह तो बहुत बुरा हुआ।'

पांचाली हँसकर बोलीं, 'आँखें तो दीं हैं भगवान् ने, परन्तु अन्धे पिता की सन्तान के पास आँखें कहाँ से आईं?'

तब तक दुर्योधन सभा-भवन के निकट आ चुका था। उसके कानों में पांचाली के ये शब्द पड़े तो तन-बदन में ज्वाला प्रज्वलित हो गई। उसने अपने मन में ठान ली कि जिस पांचाली ने उसके लिये

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इन शब्दों का प्रयोग किया है उसे उसने भी भरी सभा में अपमानित न किया तो उसका नाम दुर्योधन नहीं। उसने पांचाली से बदला लेने का दृढ़ संकल्प कर लिया।

पांचाली के शब्द उसके कलेजे में विष के बुझे तीर के समान चुभ गये। वह वहीं से अपने डेरे को लौट गये और बिना किसी से कुछ कहे हस्तिनापुर चले गये। वह एक क्षण के लिये भी वहाँ ठहरना उसके लिये कठिन हो गया।

इस बात पर किसी का ध्यान नहीं गया। किसी को उसका कुछ ज्ञान भी नहीं था। पांचाली को यह ज्ञात हुआ कि दुर्योधन ने उनकी बातें सुन ली।

यज्ञ में आये सब अतिथि विदा हुए। धर्मराज युधिष्ठिर ने सबको आदरपूर्वक यज्ञोपहार देकर विदा किया।

सब कार्य पूर्ण हो जाने पर श्रीकृष्ण महाराज युधिष्ठिर के पास आकर बोले, 'आप दुर्योधन को भविष्य में कभी भूल से भी अपना भाई न समझना। आप जब भी उसे भाई समझ बैठेंगे तभी धोखा होगा, मेरी यह बात याद रखना।'

चलते समय श्रीकृष्ण पांचाली से मिलने के लिये गये और बोले, 'बहिन पांचाली ! तुमने महाराज दुर्योधन को रुष्ट कर दिया।'

पांचाली को ध्यान भी नहीं था अपने उन शब्दों का। पांचाली बोलीं, 'मेरा तो उनसे साक्षातकार भी नहीं हुआ भय्या !'

श्रीकृष्ण मुस्कराकर बोले, 'साक्षातकार नहीं हुआ तो इससे क्या ? तुमने अन्धे पिता की अन्धी संतान तो उन्हें कहा।'

श्रीकृष्ण के इन शब्दों को सुन कर पांचाली को अपने शब्द स्मरण हो आये। वह बोलीं, 'ये शब्द तो मेरे मुख से अनायास ही निकल गये थे।'

श्रीकृष्ण बोले, 'दुर्योधन बहुत संकुचित विचारों का व्यक्ति है।'

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पांचाली को अपने शब्दों पर पश्चाताप हुआ ।

श्री कृष्ण बोले, 'तुम चिंता न करो ! तुम्हारा भाई तुम्हारे सम्मान की रक्षा के लिये सर्वथा समर्थ है ।"

जिस समय ये बातें चल रहीं थीं उसी समय वेदव्यास वहाँ आ गये। वह मुस्करा कर श्री कृष्ण से बोले, 'कृष्ण ! क्या बातें चल रही हैं ? बेचारे दुर्योधन को तो आप लोगों ने रुष्ठ करके भेज दिया ।'

श्री कृष्ण हँसकर बोले, 'दुर्योधन को प्रसन्न करना बड़ी कठिन समस्या है व्यास जी ! जो वह चाहता है वह उसे मिलना असम्भव है। धर्म पर अधर्म की विजय कभी सम्भव नहीं है । लाख काले बादल मँडरायें, परन्तु अन्त में उन्हें रुख कर बरसना ही होगा। सूर्य की किरणें उसे वेध डालेंगी ।' यह कहकर श्री कृष्ण मुस्कराकर बोले, "जरा यह भी तो बताइये कि अब आप का कौन सा पर्व चल रहा है, बदलते युग का ?

श्री कृष्ण की बात सुनकर सब लोग चकित रह गये । युधिष्ठिर ने पूछा, क्या व्यास जी किसी ग्रंथ की रचना कर रहे हैं ?"

श्री कृष्ण मुस्करा कर बोले, 'आप ग्रंथ की भूमिका अभिनीत कर रहे हैं ? व्यास जी महान् युग-दृष्टा हैं । यह इस युग की वाणी हैं, भाषा हैं ।"

व्यास जी मुस्करा कर बोले, 'कृष्ण ! इस ग्रंथ की रचना में सचमुच बड़ा श्रम करना पड़ रहा है । यह ग्रंथ केवल इस युग का ही प्रतीक न होकर अतीत का दर्पण भी सिद्ध होगा । माता देवयानी और आचार्य कच ने अपने प्रेम की बलि देकर जिन सिद्धातों का प्रतिपादन किया । उनमें जीवन की वास्तविक शांति निहित थी । कितनी महान् अनुभूति थी शाश्वत प्रेम की । मानवीय प्रेम में दैविक अनुकम्पा का साक्षातकार था । विमाता-पुत्र होकर वीर पुरु ने माता देवयानी और

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वीर भ्राता यदु के लिये जो पराक्रम दिखाया वही आज तुम कुरु-वंश के धर्म-पक्ष के लिये कर रहे हो। अन्तर केवल इतना ही है कि वह संघर्ष राष्ट्र की दानव प्रवृतियों के विरुद्ध था और यह पारस्परिक कलह का रूप धारण कर चुका है। परन्तु दानव-प्रवृति चाहे किसी की भी क्यों न हो उसका विनाश धर्म की रक्षा है। ऐसा न होता तो आप अपने मामा कंस का वध क्यों करते ? युग कितना बदल गया है कृष्ण ! त्याग और तपस्या का स्थान लोभ और दुराचार ने ले लिया।''

श्रीकृष्ण मुस्कराकर बोले, 'आचार्य व्यास ! आप शास्त्र-प्रणेता हैं, जो चाहें अर्थ लगायें। अपना कार्य तो कर्म करते चले जाना है। अपना विश्वास केवल कर्म में हैं, फल संसार देखेगा। उसके लिये रुकन नहीं है हमें। समय चलता जायेगा। उसके साथ धर्म भी आगे बढ़ेगा।''

श्रीकृष्ण की बात सुनकर व्यास जी खिलखिलाकर हँस दिये वह कुछ ठहर कर बोले, 'कर्म-योग का प्रणेता ऐसी बातें न करे तो फिर कौन करेगा कृष्ण !' वह पांचाली की ओर देख कर बोले, 'पांचाली ! तुम्हें कुरु-कुल के खोट मिले स्वर्ण को तपा कर कुन्दन बनाने के लिये प्रखर ज्वाला का रूप धारण करना होगा। तुम्हारे मुख से निकले शब्दों का बहाना बनाकर दुर्योधन चला गया, परन्तु उसके जाने का मूल कारण और ही है। पांडवों की बढ़ती हुई प्रतिष्ठा को वह देख नहीं सका। इस मन्द-बुद्धि मूर्ख ने यह सोचा ही नहीं कि पांडव-प्रतिष्ठा उसकी अपनी प्रतिष्ठा है, उसके अपने कुल का गौरव है।'

व्यासजी की गम्भीर वाणी सुनकर माता सत्यवती और दादा भीष्म के नेत्रों में जल भर आया। उनके हृदय व्याकुल हो गये। उन्हें लगा कि वे एक ऐसे कगार पर खड़े हैं, जिसे पानी का रेला कभी भी विनाश के गर्त में गिरा सकता है। वह कागार बे बुनियाद हो चुका है। उसकी जड़ों की मिट्टी को दुर्योधन खोद चुका है।'

पांचाली कातर वाणी में बोली, 'आचार्य' प्रवर ! महाराज दुर्यो-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

धन ने मेरे लिये जिन अपशब्दों का प्रयोग किया है यदि उनकी भूमिका में आप मेरे इन शब्दों को देखें तो आपको लगेगा कि मेरे शब्द बवंडर के वेग में उड़कर खड़खड़ाने वाले पत्तों के शब्द के अतिरिक्त और कुछ नहीं हैं। तूफान उठे और पत्ते न खड़खड़ायें, यह भला कभी सम्भव है।

महाबली कर्ण का मैंने अपने स्वयंवर की प्रतियोगिता में भाग लेना स्वीकार नहीं किया, यह उनके दिल की पहिली जलन है। धनुर्धर पांडव-पुत्र का वरण उनकी कुढ़न का दूसरा कारण बना। महाराज दुर्योधन सोचते हैं कि यदि पांडवों को मैं प्राप्त न होती और मेरे पिता का सहयोग मिलता तो ये दहदते हुये अंगारे कभी उभरकर न उठते। कितनी उपहासपूर्ण बात है ?''

पांचाली की बात सुनकर वेदव्यास पांचाली के जाज्वल्यमान प्रखर रूप की ओर टकटकी बाँध कर देख कर बोले, 'इन अंगारों पर तुम ही तो वह घृताहूति थीं, जिसके फलस्वरूप यह प्रखर ज्वाला प्रज्वलित हुई। मैं नत-मस्तक होकर उस ज्वाला को प्रणाम करता हूँ देवि ! मुझे विश्वास है कि वह ज्वाला कुरु-कुल-कलंक को भस्म करने में सफल होगी और संसार के सामने पारिवारिक कलह के कुपरिणामों का ज्वलन्त उदाहरण प्रस्तुत करेगी।'

भीष्म बोले, 'तो क्या महाविनाश होगा वेदव्यास ?'

वेदव्यास गम्भीर निश्वास छोड़ कर बोले, 'इसके अतिरिक्त और हो ही क्या सकता है ब्रह्मचारी भीष्म ? दुर्योधन अपने कुचक्रों से बाज आने वाला नहीं है। वह युधिष्ठिर को अपने जाल में फँसा लेगा। कृष्ण हर समय पाण्डवों से सटकर नहीं बैठ सकते। आप दुर्योधन को कुमार्ग पर जाने से रोकने में असमर्थ हो चुके हैं। क्या सामार्थ है आप में उसे रोकने की ? यदि सामर्थ है तो आप इस भयंकर तूफान को रोक सकते हैं। आपके अधिकार को नष्ट किये माता सत्यवती को एक युग बीत चुका है। दुर्योधन के अन्न पर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पल कर आप केवल भावना मात्र से कर्म के प्रवाह को नहीं रोक सकते।' व्यास ने जो कठोर सत्य दादा भीष्म के सामने प्रस्तुत किया उसे सुनकर वह मौन खड़े रह गये। माता सत्यवती भी चुप थीं। पाँचों पाण्डव भी मौन रहे। केवल पांचाली बोलीं, 'सामर्थ्य दादा में नहीं है, यह मैं नहीं मान सकती। परन्तु ये अपनी सामर्थ्य का सदुपयोग न करके आपके ग्रन्थ की भूमिका को ज्यों-का-त्यों पूर्ण कराना चाहें तो मुझे कुछ नहीं कहना है।

यही वह समय है जब दादा और दादी जी को कुरु-कुल के गौरव की रक्षा के लिये राज्य-व्यवस्था अपने हाथों में ले लेनी चाहिये। वह बागडोर उस व्यक्ति को सौंपनी चाहिये जो कुरु-कुल के गौरव की रक्षा के लिये अपनी योग्यता का प्रमाण-पत्र प्रस्तुत कर चुका है। निर्णय लेना गुरुजनों का काम है।'

वेदव्यास बोले, 'यह यह सत्य है पांचाली! परन्तु बुझते हुए दीपक को तूफान से बचाने की सामर्थ्य माता सत्यवती और भीष्म में नहीं है।' यह कहकर वह वहाँ से चले गये। अन्य सब लोग मौन खड़े रहे।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पांचाली

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पाण्डवों के राजसूय-यज्ञ की प्रतिष्ठा को देखकर जहाँ भीष्म, विदुर और द्रोणाचार्य को हार्दिक प्रसन्नता हुई वहाँ कौरव-कुल पर आंतक के बादल छा गये। उनके दिलों में द्वेष की ज्वाला भयंकर रूप से प्रज्ज्वलित हो गई।

ये लोग खाण्डवप्रस्थ से हस्तिनापुर पहुँचे तो दुर्योधन ने अपने मित्रों तथा भाइयों की एक सभा बुलाई और उसके बीच खड़े होकर कहा, 'देखा आपने पाण्डवों का शक्ति-संचालन! यह सब हमारे विनाश का सूचक है। ये लोग अब किसी भी समय हम पर आक्रमण कर सकते हैं।'

दुर्योधन के निरुत्साहपूर्ण शब्द सुनकर महाबली कर्ण ललकार कर बोले, 'क्या कायरों जैसी बातें कर रहे हो दुर्योधन? पाँचों पाण्डवों को मैं कीट-पतंगों के समान समझता हूँ। राजसूय-यज्ञ को देखकर तुम लोग इतने आतंकित हो गये कि उसे अपने विनाश का सूचक मान बैठे।'

दुर्योधन कर्ण की वीरतापूर्ण बात सुनकर चतुराई के साथ बोला, 'तुम्हारी वीरता से मैं अपरिचित नहीं हूँ मित्र कर्ण! परन्तु नीति यही कहती है कि जो गाँठ हाथ से खुल सके उस पर दांतों का प्रयोग करना व्यर्थ है।'

"मैं तुम्हारा मंतव्य नहीं समझा दुर्योधन!" कर्ण बोला।

दुर्योधन ने मुस्कराकर कहा, 'पाण्डवों ने राजसूय-यज्ञ किया है। मैं द्यूत-सभा का आयोजन करूँगा। तुम देखना मैं पाण्डवों

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

को किस प्रकार बिना युद्ध के परास्त करता हूँ। मैं उन्हें अपने एक दाव पर चारों खाने चित्त न लाया तो मेरा नाम दुर्योधन नहीं।''

शकुनि अपने भानजे दुर्योधन के कुचक्रों से भली भाँति परिचित था। वह हर्षित होकर बोला, 'दुर्योधन ! यह बात तुमने खूब सोची। हमें द्यूत-सभा का आयोजन करके पाण्डवों को उसमें आमंत्रित करना चाहिये और जुए की बाज़ी पर युधिष्ठिर को हराकर उनका राज-पाट हड़प लेना चाहिये।'

महाबली कर्ण बोले, 'परन्तु क्या तुम्हें यह आशा है कि महाराज धृतराष्ट्र द्यूत-सभा आयोजित करने की आज्ञा देंगे ?'

दुर्योधन बोला, 'उसकी तुम चिन्ता न करो कर्ण ! पिताजी को मैं इसके लिये मना लूँगा।'

दुर्योधन के मित्रों और बन्धुओं में दुर्योधन की बात सुनकर हर्ष छा गया। सब ने एक स्वर में कहा, 'द्यूत-सभा में निश्चित रूप से हमारी विजय होगी। हम युधिष्ठिर को उल्लू बनाकर उसे हरा देंगे।'

दुर्योधन द्यूत-सभा की आज्ञा लेने के लिये अपने पिता धृतराष्ट्र के पास पहुँचा और विनम्र वाणी में बोला, 'पिताजी ! मुझे विश्वस्त सूत्र से ज्ञात हुआ है कि पाण्डव बहुत शीघ्र हस्तिनापुर पर आक्रमण करने का विचार कर रहे हैं। मुझे अभी-अभी इस बात की सूचना मिली है।'

दुर्योधन की बात सुनकर महाराज धृतराष्ट्र हँसकर बोले, 'क्या बच्चों जैसी बातें करते हो दुर्योधन ? भीष्म और द्रोण के संरक्षण में जिस राज्य का संचालन हो रहा है, क्या पाण्डव कभी स्वप्न में भी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उस पर आक्रमण करने की मूर्खता कर सकते हैं ?'

दुर्योधन बोला, 'पाण्डव सीधा आक्रमण नहीं करेंगे पिताजी ! वे छल-बल से हमें ध्वस्त करने की बात सोच रहे हैं। छलिया कृष्ण उनके साथ है। उसके छल को परास्त करने के लिये मैंने द्यूत-सभा आयोजित करने का विचार किया है।'

'द्यूत-सभा !'' आश्चर्यचकित होकर धृतराष्ट्र बोले। 'नहीं, मैं इस घृणित कार्य की तुम्हें आज्ञा नहीं दे सकता दुर्योधन ! इससे हमारी प्रतिष्ठा को बट्टा लगेगा। कुरु-वंश में यह नीच कार्य कभी नहीं होगा।'

दुर्योधन आवेश में आकर बोला, 'आपकी प्रतिष्ठा को बट्टा तब नहीं लगा जब पांचाली ने मुझे 'अंधे का अंधा' पुत्र कहा था। आपकी प्रतिष्ठा को तब बट्टा नहीं लगेगा, जब आप कृष्ण के छल-बल से परास्त होकर हमें भिखारियों के समान साथ लेकर वन-वन भटकते फिरेंगे।

द्यूत-सभा से आपकी प्रतिष्ठा को बट्टा लगेगा तो आप जैसा उचित समझें, करें। हमारे भाग्य में जो लिखा है हम उसे भुगत लेंगे।'

पुत्र-मोह में ग्रस्त होकर महाराज धृतराष्ट्र बोले, 'तो करो द्यूत-सभा का आयोजन, मैं इसके बीच में नहीं पड़ूँगा।'

यह सुनकर दुर्योधन का चेहरा खिल गया। उसने प्रफुल्लित होकर अपने भाइयों और मित्रों को जाकर यह समाचार दिया तो वे सब हर्ष से नाच उठे।

दुर्योधन ने द्यूत-सभा का आयोजन किया और उसमें पाण्डवों को आमंत्रित किया। वे सब हस्तिनापुर आगये।

सभा आरम्भ हुई तो शकुनि महाराज युधिष्ठिर से बोले, 'युधिष्ठिर ! आओ दो-दो हाथ हो जायें।'

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

महाराज युधिष्ठिर बोले, 'जुआ खेलना सब पापों की जड़ है। मैं जुआ नहीं खेल सकता।'

शकुनि बोला, 'रहने दो युधिष्ठिर इन पाप-पुण्य की बातों को। राजसूय-यज्ञ करने के लिये आपने कितने ही निरपराध राजाओं का वध कराया। क्या वह पाप नहीं था ? आपकी दृष्टि में यह साधारण-ल पाप हो गया।'

शकुनि के सामने युधिष्ठिर को मौन रह जाना पड़ा। वह जुआ खेलने को उद्यत हो गये और जुए में अपना राज-पाट सब हार गये। अन्तिम दाव पर उन्होंने पांचाली को भी लगा दिया और उस दाव पर भी उनकी हार हुई।

खेल-खेल में इतना अनर्थ हो जायेगा इसकी उन्हें स्वप्न में भी आशंका नहीं थी। वह इसे खेल-मात्र समझ रहे थे, परन्तु दुर्योधन चाल चल रहा था। वह सब कुछ जीतकर शकुनि से बोला, 'मामा देखते क्या हो ? हमारा अपमान करने वाली पांचाली को खींचकर सभा में ले आओ और उसे नग्न करके हमारी जंघा पर बिठा दो।'

दुर्योधन के वचन सुनकर सभा में सन्नाटा छा गया। शकुनि राजमहल से पांचाली को लाने के लिये चला तो भीम के नेत्र अंगारों के समान जल उठे। वह क्रोधित होकर बोले, 'दुर्योधन ! होश में आकर बातें कर। पांचाली की ओर किसी ने कुदृष्टि से देखा तो सभा में विनाश के बादल मँडरा उठेंगे।'

भीम का गर्जन सुनकर दुर्योधन मुस्कराकर बोला, 'धर्मराज युधिष्ठिर के छोटे भाई भीम ! तुम्हें विदित् होना चाहिये कि तुम इस समय हमारे दास हो। तुम्हारी स्वाधीनता पर भी हम विजय प्राप्त कर चुके हैं।'

भीम दुर्योधन की बात सुनकर आग-बगूला हो या। वह क्रोधपूर्ण

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वाणी में बोला, 'दुष्ट दुर्योधन ! जिस जंघा पर तूने पांचाली को बिठाने की बात की है, उसे भीम अपनी गदा से तोड़ कर उसका रक्त पान करेगा।'

परिस्थिति को समझकर अर्जुन ने भीम को शान्त किया, परन्तु ज्वाला उनके हृदय भी में बहुत भयंकर रूप से जल रही थी।

शकुनि राजमहल में पहुँचा और उसने पांचाली को सभा में चलने के लिये कहा। पांचाली इस वृत्तांत को सुनकर भयभीत हो गई। वह धैर्य धारण करके बोली, 'मामा ! क्या सचमुच कौरवों के विनाश का समय निकट आ गया ? क्या तुम्हें संसार में रहना नहीं है जो इस प्रकार के नीच कर्मों पर उतर आये हो ? इस समय मैं रजस्वला हूँ। यदि मैं इस दशा में न होती तो निश्चय ही तुम्हारे साथ चलती। ऐसी दशा में मैं कैसे चल सकती हूँ ?'

जब शकुनि ने देखा कि वह चलने को उद्यत नहीं है तो उसने बल प्रयोग करने का निश्चय किया। पांचाली ने भयातुर होकर गांधारी के महल की ओर भागना चाहा, परन्तु शकुनि ने उसे पकड़ लिया। पांचाली रोई, चिल्लाई, परन्तु वहाँ उनकी करुण-पुकार को कोई सुनने वाला नहीं था।

शकुनि ने पांचाली के केश पकड़ लिये और उन्हें राजसभा की ओर घसीटने लगा। वह उन्हें इसी प्रकार घसीटता हुआ, राजसभा में ले गया। पांचाली ने सभा में पहुँचकर वहाँ उपस्थित वीरों को ललकारा, पाँचों पाण्डवों की वीरता को ललकारा, कुरु-वंश के गौरव को ललकारा, परन्तु उसने देखा वहाँ का समस्त वायुमण्डल शान्त था। पांचाली की दशा पर किसी के भुजदण्ड नहीं फड़के, किसी में मानवता जाग्रत नहीं हुई।

यह देखकर पांचाली का हृदय विदीर्ण हो गया। उसके नेत्रों से अश्रुओं की धारा बह चली। भीम की गदा मौन थी, अर्जुन के

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

 Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

गाण्डीव को जंग लग गया था, नकुल, सहदेव की वीरता कायरता में परिणित हो गई थी, महाराज युधिष्ठिर की धर्मपरायणता उन्हें छोड़ चुकी थी।

पांचाली के नेत्र भयभीत होकर आकाश की ओर उठ गये। उसे लगा कि भूमि धर्मविहीन हो चुकी है। कौरवों का पाप भूमि को निगल जाना चाहता है।

पांचाली की यह दशा देखकर कौरव-पक्ष खिलखिलाकर हँस पड़ा। उनका अट्ठाहास वहाँ के वायुमण्डल में भर गया। पाण्डवों के मस्तक भूमि की दिशा में झुक गये। सभा में सन्नाटा छा गया।

शकुनि पांचाली को उसके केश पकड़ कर खींचता हुआ दुर्योधन के निकट ले गया।

भीष्मपितामह भावी उत्पात की आशंका से भयभीत हो गये, परन्तु बोले एक शब्द नहीं।

महात्मा विदुर ने इसका विरोध किया, परन्तु मदोन्मत्त दुर्योधन ने उनकी बात पर कोई ध्यान नहीं दिया। वह उपहासपूर्ण ध्वनि में हँस दिया।

दुर्योधन शकुनि से बोला, 'देखते क्या हो मामा! हमारा अपमान करने वाली इस अभिमानिनी का अभिमान चूर्ण करो। इसे नंगी करके हमारी जंघा पर बिठा दो।'

दुश्शासन ने पांचाली का चीर उतारने के लिये हाथ बढ़ाया तो पांचाली ने निराश दृष्टि से पाँचों पाण्डवों और भीष्मपितामह की ओर देखकर कहा, 'एक स्त्री पर भरी सभा में यह अत्याचार होते देखकर, कुरु-वंश के वीरों और विशेष रूप से पितामह को मौन देख कर, मैं सोचती हूँ कि यह वंश रसातल को चला जायेगा। इसके सामने न्याय के लिये गिड़गिड़ाना मैं अपना अपमान समझती हूँ।' यह कह

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कर उसने अपने नेत्र बन्द करके कहा, 'भैया कृष्ण ! क्या तुम भी कुरु-वंश के साथ रसातल को चले गये ?'

कृष्ण गुप्त वेश में सभा के मध्य बैठे यह सब देख रहे थे। अभी तक वह मौन थे, परन्तु ज्यों ही दुश्शासन ने पांचाली का चीर उतारने के लिये हाथ बढ़ाया तो वह अपने स्थान से उठकर सभा के बीच आ गये। वह घन-गर्जन के समान गम्भीर वाणी में बोले, 'दुर्योधन ! नीचता की पराकाष्ठा हो चुकी। मैं देख रहा था कि तुम्हारे अन्दर मानवता जाग्रत होती है अथवा नहीं। परन्तु देख रहा हूँ तुम मानवीय धरातल से बहुत नीचे गिर चुके हो। तुम्हारी आत्मा मर चुकी है।

पांचाली की ओर किसी ने हाथ बढ़ाया या कुदृष्टि से देखा तो यहाँ अभी प्रलय के काले बादल मँडरा उठेंगे। पांचाली के सतीत्व का नहीं, आज यहाँ कुरु-वंश का विनाश होगा।'

कृष्ण की बात सुनकर सभा भयभीत हो गई। धृतराष्ट्र और भीष्म थर-थर काँपने लगे। दुर्योधन का मुख स्वेदपूर्ण हो गया। दुश्शासन अचेत होकर भूमि पर गिर पड़ा।

कृष्ण उतनी ही गम्भीर वाणी में बोले, 'अन्याय और अधर्म सीमा का उल्लंघन कर चुका है। दादा भीष्म और आचार्य द्रोण की आँखें इस अधर्म को देखती रहीं। महाराज युधिष्ठिर को द्रोपदी को दाव पर रखने का कोई अधिकार नहीं था और वह भी तब जब वह स्वयं को भी हार चुके थे।'

कृष्ण की न्यायपूर्ण बात सुनकर सभा का वातावरण एक स्वर से उनके पक्ष में हो गया।

कृष्ण बोले, 'पांचाली का चीर-हरण करने के लिये अब वह व्यक्ति सामने आये जिसे अपने प्राणों का मोह न हो।'

स्थिति की गम्भीरता को समझकर धृतराष्ट्र सभा में आकर बोले,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

'यादव-कुल शिरोमणि ! बच्चों के खिलवाड़ पर इतने क्रुद्ध न हों। मेरे रहते क्या पांचाली का चीरहरण कभी सम्भव था ? मैं पाण्डवों को इनका राज्य वापिस देता हूँ।'

धृतराष्ट्र ने परिस्थिति को संभाल लिया, परन्तु इससे दुर्योधन के हृदय की द्वेषाग्नि और भड़क उठी। वह कृष्ण के सामने कुछ न बोल सका, अन्दर ही अन्दर घुट कर रह गया।

स्थिति ठीक कर कृष्ण अपनी राजधानी को लौट गये।

कृष्ण के चले जाने पर दुर्योधन ने फिर अपनी चाल खेली और शकुनि ने युधिष्ठिर को फिर जुआ खेलने के लिये ललकारा।

युधिष्ठिर अपनी पहिली हार का बदला लेने के लिये फिर जुआ खेलने लगे। इस बार निश्चय हुआ कि हारने वाले पक्ष को बारह वर्ष के लिये वन जाना होगा और एक वर्ष गुप्त वास करना होगा। यदि उस एक वर्ष में उनका पता चल गया तो उन्हें फिर बारह वर्ष के लिये वन जाना होगा। युधिष्ठिर ने जुए में शकुनि से फिर मात खाई और परिणामस्वरूप पाण्डवों को वनवास के लिये प्रस्थान करना पड़ा। पाण्डव अपना राज-पाट छोड़कर वन को चले गये।

कौरवों की प्रसन्नता का पारावार न रहा। उनके कुल में आनन्द की लहर दौड़ गई। दुर्योधन की नीति-कुशलता पर उसके सब साथी तथा भाई मुग्ध हो गये, परन्तु प्रजा-जनों में शोक छा गया। उनकी आशा निराशा में परिणित हो गई।

यह समाचार जब खांडवप्रस्थ पहुँचा तो वहाँ की जनता हताश हो गई। उन्होंने स्वयं को अनाथ अनुभव किया। राज्य में शोक का वातावरण छा गया।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पाण्डव, सुभद्रा, तथा पांचाली तापस-वेश धारण कर वन को चल दिये। माता कुन्ती को पाण्डवों ने महात्मा विदुर के पास छोड़ दिया। उन्हें इस प्रकार वन जाते देखकर कौरव-पक्ष की प्रसन्नता का पारावार न रहा, परन्तु प्रजा रो रही थी। प्रजा को लग रहा था कि अब राज्य में अन्याय के अतिरिक्त और कुछ दिखाई नहीं देगा।

कौरवों ने पाण्डवों का लाख उपहास किया और व्यंग्य-वाण छोड़े, परन्तु पाण्डव मौन बने रहे। उनकी जबान पर एक शब्द उनके उत्तर में न आया। वे अपने मार्ग पर आगे बढ़ते चले जा रहे थे।

पाण्डवों के हृदय क्षोभ से भरे थे। पांचाली के अपमान को स्मरण कर उनके हृदयों में ज्वाला सुलग रही थी। उनके नेत्र अंगारों के समान दहक रहे थे, परन्तु अपने क्रोध को वे उस समय कालकूट के समान शिव बनकर पी गये।

महात्मा विदुर बहुत दूर तक पाण्डवों को छोड़ने के लिये गये। उनके साथ बहुत से पुर-वासी थे। अन्त में विदीर्ण हृदय लेकर वे सब वापिस लौट आये।

महात्मा विदुर ने वापिस हस्तिनापुर लौटकर महाराज धृतराष्ट्र से भेंट की और सकरुण वाणी में कहा, 'महाराज! यह जो कुछ हुआ, उचित नहीं हुआ। तेरह वर्ष पलक मारते निकल जायेंगे। जब ये लोग वापिस लौटेंगे तो अपने अपमान का बदला लिये बिना नहीं रहेंगे। पारस्परिक कलह का यह बीज जो दुर्योधन ने बो दिया है, इसका फल अच्छा नहीं होगा। दुर्योधन ने यह कार्य बहुत ही संकीर्ण दृष्टि से किया है।'

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मुझे दिखाई दे रहा है कि वह समय दूर नहीं है जब हस्तिनापुर एक विशाल श्मशान-भूमि में परिणित होगा और इसमें कुरु-वंश के प्रतापी वीरों की चिताएँ जलती दिखाई देंगी। पाण्डवों की यह वन-यात्रा कुरू-कुल के विनाश की पूर्व-सूचना है।

दुर्योधन की प्रवृत्ति यदि इसी प्रकार अधर्म की ओर रही तो यह एक दिन महाविनाश का कारण बनेगी। मैं दोनों परिवारों के समान शुभ चिंतक के नाते आपको चेतावनी दे रहा हूँ। आप समय रहते इस गम्भीर स्थिति को संभाललें, मैं यही चाहता हूँ।'

धृतराष्ट्र को विदुर की नीतिपूर्ण बात भली नहीं लगी। उन्हें उनकी बात में पाण्डवों के पक्षपात की बू आई। वह मुस्कारा कर बो ले, 'महात्मा विदुर ! तेरह वर्ष का लम्बा समय बहुत बड़ा है। आप अभी से इतने चिंताग्रस्थ न हों। समय आने पर सब देख लिया जायेगा। इस समय इस विषय पर चर्चा चलाने से कोई लाभ न होगा।'

महात्मा विदुर को धृतराष्ट्र का यह उत्तर अपने बच्चों के मोह में लिप्त प्रतीत हुआ। वह चुपचाप वहाँ से उठकर चले आये। उन्होंने बात को आगे बढ़ाना उचित नहीं समझा।

महात्मा विदुर के नेत्रों के सामने रण-चण्डी नृत्य कर रही थी। वह अपने विचारों को दबाकर मौन न रह सके।

इसी विषय को लेकर महात्मा विदुर ने एक दिन धृतराष्ट्र की भरी सभा में भर्त्सना की। महराज धृतराष्ट्र को उनपर क्रोध आ गया। वह बोले, 'विदुर ! तुम हमारे राज्य में रहते हो, हमारा अन्न खाकर हमारे ही विरुद्ध बोलते हो, यह कृतघ्नता है। राजनीति में यह क्षम्य नहीं है। प्रातःकाल होते ही तुम यहाँ से चले जाओ और वहीं जाकर रहो जहाँ पाण्डव गये हैं।''

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

महात्मा विदुर बोले, 'मैं महाराज धृतराष्ट्र की आज्ञा का पालन करूँगा। चाटुकारिता करके आपको कुमार्ग की राह बताऊँ, यह मुझसे नहीं होगा। मैं कल प्रातःकाल हस्तिनापुर छोड़ दूँगा।'

महात्मा विदुर दूसरे दिन प्रातःकाल अपनी पत्नी और कुन्ती को समझाकर काम्यक वन की ओर चल दिये। पाण्डव उस समय वहीं थे। कई दिन की यात्रा के पश्चात् उन्होंने पाण्डवों से जाकर भेंट की।

महात्मा विदुर का पाण्डवों ने पिता-तुल्य स्वागत किया। उन्हें महाराज धृतराष्ट्र द्वारा उनकी भर्त्सना की सूचना प्राप्त कर हार्दिक कष्ट हुआ। धर्मराज युधिष्ठिर बोले, 'आप हमारे चाचा हैं। नीति परांगत होने के नाते आप पमारे गुरू तुल्य पूज्य हैं। आपकी सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त कर हम स्वयं को धन्य समझते हैं। आज्ञा करें तो चाची जी और माता जी को भी यहीं ले आयें।'

महात्मा विदुर बोले, 'शीघ्रता न करो बेटा! मेरे गुप्तचर मुझे यहीं आकर क्षण-क्षण की सूचना देगें। समय आने पर उन्हें भी बुला लिया जायेगा। पहिले मैं देखना चाहता हूँ कि मेरे निकालने का द्रोण और दादा भीष्म पर क्या प्रभाव पड़ता है?'

धृतराष्ट्र द्वारा महात्मा विदुर के हस्तिनापुर से निकाले जाने का समाचार जब भीष्म और द्रोण के कानों में पड़ा तो वे चिंतित हो गये। उन्हें धृतराष्ट्र की अदूरदर्शिता पर बहुत क्षोभ हुआ।

धृतराष्ट्र ने भी यह कार्य बच्चों के मोह और दुर्योधन की कुमंत्रणा स्वरूप कर तो दिया था परन्तु बाद में उन्हें बहुत खेद हुआ। इतने बड़े नीतिज्ञ को शत्रु-पक्ष में भेज कर, उन्हें लगा कि उन्होंने अपने को बहुत अशक्त कर लिया।

धृतराष्ट्र ने भयभीत होकर अपने दूतों को बुलाया और आदेश दिया, 'महात्मा विदुर जहाँ भी हों उन्हें तुरन्त वापिस ले आओ। उनसे

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

 Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कहना कि आपके प्रति किये गये व्यवहार से महाराज धृतराष्ट्र बहुत लज्जित हैं। उन्होंने अन्न-जल ग्रहण करना बन्द कर दिया है। वह उस समय तक भोजन नहीं करेंगे, जब तक आप हस्तिनापुर नहीं लौट आयेंगे।'

महाराज धृतराष्ट्र की आज्ञा प्राप्त कर दूत विदुर जी की खोज में चल दिये।

कौरवों के दूत जब पाण्डवों के आश्रम में पहुंचे तो देखा यज्ञ हो रहा था। वहाँ का वायुमण्डल यज्ञ की सुगंधि से पूर्ण था और तुमुल ध्वनि से वेद-मंत्रों का उच्चारण हो रहा था।

आश्रम की शोभा देखकर कौरवों के दूत चकित रह गये। उन्होंने विदुर और पाण्डवों को प्रणाम करके महाराज धृतराष्ट्र का संदेश दिया और धृतराष्ट्र के भोजन न करने की बात कहीं।

महात्मा विदुर ने परिस्थिति का गम्भीरतापूर्वक अध्ययन कर पाण्डवों को समझाया और हस्तिनापुर लौट गये।

धृतराष्ट्र को महात्मा विदुर के लौटने का समाचार मिला तो उन्होंने उनसे गले लगाकर भेंट की और अपने दुर्व्यवहार पर क्षमा याचना की।

कृष्ण के पास जब कौरवों के इस कुचक्र का समाचार पहुंचा तो उनकी आत्मा खिन्न हो गई। वह महाराज द्रुपद के पास पहुँचे। कृष्ण को देखकर महाराज द्रुपद के खिन्न मन को सान्तवना मिली। दूसरे दिन कृष्ण और धृष्टद्युम्न काम्यक वन में पाण्डवों के आश्रम पर पहुंचे। उस समय पाण्डव वहाँ से प्रस्थान कर द्वैत वन की ओर चले गये थे।

कृष्ण और धृष्टद्युम्न ने द्वैत-वन में जाकर पाण्डवों को तापस वेश में देखा तो उनका हृदय विदीर्ण हो गया। कृष्ण और धृष्टद्युम्न को देखकर पाण्डव प्रेम से गद्-गद् हो गये। उन्होंने उनका सादर अभिवादन किया।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पांचाली को तपस्विनी वेष में देखकर धृष्टद्युम्न अधीर हो गया। पांचाली के भी धैर्य का बाँध टूट गया। उनके नेत्र अश्रु-जल से पूर्ण हो गये।

कृष्ण पांचाली को व्याकुल देखकर बोले, 'विह्वल न हो बहिन! तुम्हारा पक्ष सत्य पर आधारित है। विजय अन्त में तुम्हारी ही होगी। वह दिन दूर नहीं है, जब तुम पाण्डवों के पराक्रम को देखकर मुग्ध होगी। तुम्हारा राज-पाट कौरवों को लौटाना होगा और विजय-श्री तुम्हारी दासी बनकर तुम्हारे पास लौटेगी।'

कृष्ण की वाणी सुनकर पांचाली को धैर्य बँधा।

कृष्ण गम्भीर वाणी में बोले, 'उस दिन द्यूत-सभा में धृतराष्ट्र तनिक चालबाज़ी खेल गये, वरना उसी दिन मैं उन्हें आनन्द चखा देता। दुर्योधन मौन हो गया, वरना मैं उसकी सब मक्कारी निकाल देता। मुझे तुरन्त वापिस न लौटना होता तो यह जो कुछ हुआ, कभी न हो पाता। तुम लोगों के वन से लौटने पर यदि दुर्योधन ने राज्य लौटाने में आनाकानी की तो रण-चण्डी का आह्वान करना होगा।'

धृष्टधुम्न ने पांचाली को अपने साथ चलने को कहा, परन्तु वह उद्यत नहीं हुईं। कृष्ण सुभद्रा को अपने साथ द्वारिका ले गये।

एक दिन पांचाली धर्मराज युधिष्ठिर से बोलीं, 'महाराज! आप लोग अत्याचार को सहन कर, इस प्रकार वन-वन भटक रहे हैं, क्या यह पाप नहीं है? क्या अधर्म को सहन करना धर्म है?'

महाराज युधिष्ठिर ने उत्तर दिया, 'देवि! तुम्हारी बात तर्क-संगत है, परन्तु मैं धर्म बन्धन में आबद्ध हूँ। धर्म से विचलित होना कायरता है, धर्म-रक्षक की सर्वदा विजय होती है। तुम क्षमा की शक्ति को पहिचानो। क्षमा से बड़ी शक्ति अन्य किसी वस्तु में नहीं है।'

पांचाली मार्मिक वेदनापूर्ण स्वर में बोलीं, 'तब तो विधाता ही

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कुटिल हैं। वह सच्चे लोगों को कष्ट देते हैं और उन्हें भटकाने में उन्हें आनन्द आता है।''

युधिष्ठिर दुःखी मन से बोले, 'यह तुमने क्या कहा देवि! तुम जो कुछ कहना चाहती हो मुझसे कहो। विधाता को दोष न दो। विधाता कभी अन्याय नहीं करते। वह परम दयालु हैं। यह सब विपत्ति मेरे अपने कुकृत्यों का परिणाम है। मैं जुआ न खेलता तो यह स्थिति कभी पैदा न होती। पाप मैंने किया है और परिणाम तुम सब को सहन करना पड़ रहा है।'

पांचाली मौन हो गई।

भीम पांचाली की बात का समर्थन करके बोले, 'महाराज! भरत-खण्ड का राज्य आज तक कभी अन्यायियों के हाथों में नहीं रहा। आप आज्ञा करें तो मैं अकेला दुर्योधन को यमपुरी पहुँचाकर आपको राजसिंहासन पर बिठा सकता हूँ। जुए की हार कोई हार नहीं होती।'

धर्मराज युधिष्ठिर बोले, 'वह समय दूर नहीं है भीम जब तुम्हें अपने पराक्रम का जौहर दिखाना होगा। इस समय हम वचन-बद्ध हैं। मैं जानता हूँ कि हमारे वन से लौटने पर दुर्योधन हमें हमारा राज्य वापिस नहीं देगा। तब हमें युद्ध करना होगा। वह धर्म-युद्ध होगा और मैं तुम्हें सहर्ष आज्ञा दूंगा कि तुम दुर्योधन से उसकी नीचता का बदला लो। उसने पांचाली का जो अपमान किया है उसकी जलन मेरे दिल में भी कम नहीं है।'

ये बातें चल ही रही थीं कि तभी उन्हें व्यास आते दिखाई दिये। व्यास के दर्शन करके पाण्डव प्रसन्न हो गये। सभी ने व्यास का अभिनंदन किया।

जो बातें अभी तक चल रही थीं, उन्हें व्यास के समक्ष रखा तो उन्होंने युधिष्ठिर के मत का समर्थन करते हुए कहा, ''आप लोगों को वन में रहकर मौन तपस्वी बन जाना उचित नहीं है। आपको आज

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

से तेरह वर्ष पश्चात् आनेवाली परिस्थिति के लिये सतर्क रहना चाहिये और अर्जुन दिव्यास्त्र प्राप्त करने का प्रयास करें।

यह आदेश देकर व्यास वहाँ से विदा हो गये।

व्यास के गुरु-मंत्र को प्राप्त कर अर्जुन दिव्यास्त्र प्राप्त करने के लिये हिमालय की ओर चल दिये।

चलते समय पांचाली ने उनकी आरती उतारी और मस्तक पर तिलक करके अश्रुपूर्ण नेत्रों से सकरुण वाणी में कहा, 'हृदयवल्लभ वीर-शिरोमणि ! जाइये और अपने व्रत में सफलता प्राप्त कीजिये। भरत-खण्ड आपकी वीरता का पराक्रम देखने के लिये अपने आशापूर्ण नेत्रों को पसारे, उत्सुखता से प्रतीक्षा कर रहा है। विधाता आपकी मनोकामना पूर्ण करें।'

पांचाली से विदा लेकर अर्जुन अपने पुरोहित धौम्य जी तथा महाराज युधिष्ठिर के पास पहुँचे। उन दोनों ने अर्जुन को गले लगा-कर अपनी शुभकामनाएँ प्रकट कीं और आशीर्वाद देकर विदा किया। उसके पश्चात् उन्होंने अपने अन्य भाइयों से विदा ली।

अर्जुन ने हिमालय-प्रदेश की यात्रा करते हुए वहाँ के सभी राज्यों से मैत्री-सम्बन्ध स्थापित किये और अनेकों नवीन विद्याओं का ज्ञान प्राप्त किया। उनसे उन्होंने नये अस्त्र-शस्त्र प्राप्त किये।

युधिष्ठिर ने भी अपने अन्य तीन भाइयों और पुरोहित धौम्यजी को साथ लेकर देशाटन किया और देश के विभिन्न राज्यों में जाकर अपने अनुकूल वातावरण बनाया। यात्रा करते-करते वे गंधमादन पर्वत पर पहुँच गये। यह पर्वत यक्षों का स्थान था।

पाण्डवों की यक्षों से मुठभेड़ हुई। भीम ने यक्षों को मार कर भगा दिया। वे अपने राजकुमार के पास पहुंचे और उन्हें सारा वृतान्त सुनाया।

महाराज कुवेर को जब पाण्डवों के वहाँ आने की सूचना मिली तो

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उन्होंने सम्मानपूर्वक उनका स्वागत किया। अर्जुन ने उत्तर-पथ की यात्रा समाप्त कर गंधमादन पर्वत पर ही आकर अपने भाइयों से भेंट की।

अर्जुन ने नये अस्त्र-शस्त्र अपने भाइयों और पांचाली को दिखाये तथा नई विद्याओं का प्रदर्शन किया तो पाडव आनन्दविभोर हो गये। उनके भाइयों ने उन्हें अपनी छाती से लगा लिया।

इसी पर्वत पर कृष्ण ने आकर पाण्डवों से भेंट की। कृष्ण से भेंट करके पाण्डवों को असीम शान्ति प्राप्त हुई। पाण्डवों ने उनका प्रेमाभिवादन किया। कृष्ण ने सब की कुशल-क्षेम पूछी और उनके पुत्र तथा सुभद्रा की कुशल-क्षेम देकर, उनके मन को सांत्वना प्रदान की।

अर्जुन ने कृष्ण को अपनी लम्बी यात्र का वर्णन सुनाया तो उन्हें अत्यन्त आनन्द प्राप्त हुआ। उन्होंने अर्जुन के कार्य की मुक्त कंठ से सराहना की।

कृष्ण कुछ दिन वहाँ रहे और पाण्डवों से मंत्रणा कर द्वारिकापुरी लौट गये। कृष्ण के लौटने पर पाण्डव वहाँ से द्वैतवन में चले गये।

उसी समय दुर्योधन ने अपने मित्रों तथा भाइयों के साथ पाण्डवों को चिढ़ाने व अपने वैभव का प्रदर्शन करने के लिये द्वैत-वन में जाने की बात सोची। वह महाराज धृतराष्ट्र के पास पहुँचा और द्वैत-वन में जाकर शिकार खेलने की आज्ञा माँगी।

धृतराष्ट्र बोले, 'शिकार खेलना बुरी बात नहीं है दुर्योधन! परन्तु जहाँ पाण्डव निवास करते हैं वहाँ जाकर शिकार खेलना उचित नहीं है। तुम्हारे ठाट-बाट को देखकर उनके मन में जलन पैदा होगी। तुम्हारे ऐश्वर्य को देखकर उन्हें क्रोध आया तो व्यर्थ उत्पात खड़ा हो जायेगा। इस लिये मैं तुम्हारा वहाँ जाना उचित नहीं समझता।'

शकुनि बोला, 'महाराज युधिष्ठिर अपनी प्रतिज्ञा भंग कर हमसे

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

युद्ध नहीं करेंगे। उनके भाई उनकी इच्छा के विरुद्ध अस्त्र-शस्त्र नहीं उठा सकते। फिर वन इतना बड़ा है कि हमें उनके निकट जाने की आवश्यकता ही क्या है ? हम लोग उनसे पृथक रहकर शिकार खेलेंगे।'

धृतराष्ट्र ने आज्ञा दे दी। वे ठाट-बाट के साथ सुसज्जित हाथी-घोड़ों पर सवार होकर द्वैत-वन की ओर चल दिये। वे अपने साथ अपनी रानियों को भी ले गये, जिससे उन्हें देखकर पांचाली का मन विदीर्ण हो गये।

ये सब उसी स्थान पर शिकार खेलने पहुंचे जहाँ पाण्डवों का आश्रम था और राज्य-मद् में आज्ञा दी कि वहीं पर एक नगर बसाया जाये।

दुर्योधन के शिल्पकारों ने कार्य आरम्भ कर दिया। वे महल का निर्माण करने लगे।

गंधर्वराज चित्ररथ भी उस समय उसी वन के सरोवर पर अपनी रानियों और दासियों के साथ ठहरे हुए थे। उनके अनुचरों ने दुर्योधन के अनुचरों को सरोवर पर जाने से रोक दिया।

दुर्योधन को यह समाचार मिला तो उसने क्रोधित होकर आज्ञा दी कि गंधर्वों को वन से निकाल कर बाहर भगा दिया जाये और बल-पूर्वक सरोवर पर अधिकार कर लिया जाये।

दुर्योधन के सेवकों ने गंधर्वों को जाकर दुर्योधन की आज्ञा सुनाई तो वे कुपित होकर बोले, 'तुम्हें पता है कि तुम किससे बातें कर रहे हो ? मूर्खो ! क्या तुम्हें ज्ञात नहीं है कि गंधर्व दुष्ट दुर्योधन की आज्ञा का पालन नहीं करते ? भाग जाओ यहाँ से, नहीं तो तुम सबको बन्दी बना लिया जायेगा।'

दुर्योधन के सेवक वहाँ से भाग खड़े हुए और दुर्योधन के पास जाकर वे बातें और नमक-मिर्च लगाकर कहीं, जो गन्धर्वों ने उनसे कही थीं।

दुर्योधन क्रोध से पागल हो गया। उसने अपने सेवकों को गन्धर्वों

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पर आक्रमण करने की आज्ञा दी, परन्तु गंधर्वों ने उन्हें हरा दिया। उनकी सहायता के लिए कर्ण वहाँ पहूँचा तो उसकी भी पराजय हुई। उसे भी वहाँ से पीठ दिखा कर भागना पड़ा। वह उनके सामने एक क्षण न ठहर सका।

दुर्योधन यह देखकर क्रोधावेष में स्वयं उनसे लड़ने के लिये उद्यत हो गया। उसने अपनी सेना लेकर उन पर धावा बोल दिया।

गंधर्वों ने वीरतापूर्वक युद्ध किया और दुर्योधन को बन्दी बना लिया। सैनिक उसकी मुश्कें कस कर उसे अपने महाराज चित्रथ के पास ले गये और उनके चरणों पर ले जाकर पटक दिया।

दुर्योधन के सेवकों ने जब दुर्योधन की यह दशा देखी तो वे दौड़कर महाराज युधिष्ठिर की शरण में गये।

भीम को दुर्योधन की दुर्दशा का पता चला तो उनके आनन्द का पारावार न रहा। उन्होंने पांचाली से कहा, 'पांचाली! चलो तुम्हें दुर्योधन की मुश्कें बँधी हुई दिखा लाऊँ। गंधर्वों ने उसे बन्दी बनाकर, चित्रथ के पैरों पर लेजाकर पटक दिया है और कर्ण, जिसकी वीरता पर उसे गर्व है, मैदान छोड़कर भाग गया।'

महाराज युधिष्ठिर दुर्योधन के दूतों से यह समाचार प्राप्त कर अर्जुन और भीम से बोले, 'भीम! यह हमारे कुल की प्रतिष्ठा का प्रश्न है, उपहास की बात नहीं। भविष्य में चाहे जो भी क्यों न हो, इस समय तुम जाओ और दुर्योधन को चित्रथ के बन्दी-गृह से मुक्त कराओ। राजनीति कहती है कि शत्रु को मुक्त कराना उसका सबसे बड़ा अपमान है। यदि शत्रु में तनिक भी लज्जा है तो उसे चुल्लू भर जल में डूब मरना चाहिए।'

भीम और अर्जुन को महाराज युधिष्ठिर का यह आदेश तनिक भी रुचिकर नहीं लगा, परन्तु उनके आदेश को वे टाल नहीं सकते थे। वे दोनों वीर गंधर्वों से युद्ध करने के लिये चल दिये। उनके प्रहारों के

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

समक्ष गंधर्वों का ठहरना कठिन हो गया।

जब यक्षराज को अर्जुन और भीम के युद्ध-क्षेत्र में उतर आने का समाचार मिला तो उन्होंने अपने अस्त्र-शस्त्र भूमि पर रख दिये और कहा, 'भाई अर्जुन ! आप किससे लड़ रहे हैं? हमारी आपकी तो पुरानी मित्रता है। हमने आपका कोई अपकार नहीं किया।'

अर्जुन ने भी बाण-वर्षा बन्द कर गाण्डीव को कंधे पर रख लिया और दोनों मित्र आपस में गले मिले। अर्जुन बोले, 'मित्र ! धर्मराज की आज्ञा पालन करने के लिये मुझे आना पड़ा। उन्होंने मुझे दुर्योधन को छुड़ाने की आज्ञा दी है। कृपया इस समय आप इसे छोड़ दें।'

युद्ध समाप्त हो जाने पर पांचाली भी वहीं पहुँच गईं। वह दुर्योधन की मुश्कें बँधी देखना चाहती थीं और उसे जता देना चाहती थीं कि भरी सभा में एक नारी को अपमानित करने वाले कुरु-कुल-कलंकी में कितनी शक्ति है।

भीम पांचाली को देखकर बोले, 'तुम भी आ गईं पांचाली ! चलो आज तुम ही इस नीच को मुक्त कराना। लज्जा तो इसमें लेश मात्र है नहीं, परन्तु फिर भी देखते हैं लजाता है या नहीं।'

चित्रथ बोला, 'अर्जुन ! क्या तुम्हें दुर्योधन के यहाँ आने का उद्देश्य ज्ञात है ? तुम इसे छुड़ाने की बात कर रहे हो और यह अपना ऐश्वर्य दिखाकर तुम्हें चिढ़ाने के लिये आया था। इसी लिये इसने इस वन में आखेट खेलने की धृतराष्ट्र से आज्ञा ली।'

चित्रथ की बात सुनकर भीम और पांचाली मुस्करा दिये। पांचाली अपने चेहरे पर बनावटी गाम्भीर्य और नेत्रों में बनावटी जल भरकर बोलीं, 'महाबली भीम, प्रतापी धनंजय ! क्या आप देख नहीं रहे कि हमारे जेठ जी की यक्षराज ने कैसी दुर्दशा कर डाली ? बेचारों की मुश्कें बाँधकर देखिये इन्हें कितना कष्ट दिया है। कुरु-कुल के प्रतापी युवराज की यह दुर्दशा देखकर क्या आपको दया नहीं आ

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

रही ? इन पर दया कीजिये। इन्हें शीघ्र मुक्त कराइये। इनकी यह दुर्दशा मुझसे देखी नहीं जा रही।'

पांचाली की व्यंग्य और उपहासपूर्ण बात सुनकर भी निर्लज्ज दुर्योधन को लज्जा न आई। उसके हृदय में जलने वाली द्वेषाग्नि में घृताहूति पड़ गई।

यक्षराज चित्रथ बोले, 'कुमार्गी दुर्योधन ! सुने तूने देवि पांचाली के शब्द। यह वही देवि है जिनको केशों से पकड़वाकर तूने घसीटते हुए द्यूत-सभा में लाने की आज्ञा दी थी। तूने दुश्शासन से इन्हें नग्न करके अपनी जंघा पर बिठाने को कहा था। पापी, इस देवि की कुल-मर्यादा देख और अपने कुकृत्यों पर दृष्टि डाल। यदि तेरे अन्दर लेश मात्र भी लज्जा है तो इस देवि के चरण धोकर पी।

तुझे अपनी जिस सम्पदा पर गर्व है, वह सम्पदा इस देवि के समक्ष तुच्छ है। तेरे दुष्ट कार्य का बदला महाबली भीम को लेना शेष है। इनकी प्रतिज्ञा भंग न हो, इस लिये तुझे मुक्त किया जाता है, वरना यहाँ से तेरी मुक्ति सम्भव नहीं थी।'

यक्षराज चित्रथ, अर्जुन, भीम और पांचाली के साथ चित्रथ दुर्योधन को ठेलते हुए धर्मराज युधिष्ठिर के समक्ष ले गये और उनके चरणों में उसे पटक कर बोले, 'धर्मराज ! यह दुष्ट आपके समक्ष है। आप इसे छोड़ें या दण्ड दें।'

धर्मराज युधिष्ठिर बोले, 'भाई चित्रिथ ! आपने हम पर जो उपकार किया है उसके लिये हम आपके हृदय से कृतज्ञ हैं। आपने दुर्योधन को मुक्त करके कुरु-वंश को कलंकित होने से बचा लिया।'

यक्षराज दुर्योधन को मुक्त करके वहाँ से चले गये। पांचाली बोलीं, 'जेठ जी ! अपनी शक्ति को देखकर किसी से युद्ध करना चाहिये। यह सौभाग्य की बात समझिये कि हम लोग यहाँ थे; वरना कौन जाने आज आपकी क्या दुर्दशा होती ? हम लोग हर समय और हर स्थान पर आपकी रक्षा के लिये तो पहुँच नहीं सकते।'

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दुर्योधन सिर झुकाए हुए अपने शिविर को चला गया। पाण्डवों को अपना ऐश्वर्य दिखाने का उसका उत्साह भंग हो गया। आत्म-ग्लानि से उसका हृदय विदीर्ण हुआ जा रहा था। पांचाली के दयावरण में लिपटे व्यंग्य-वाणों ने उसके हृदय को छलनी बना दिया। उसे अपनी पराजय पर रह-रहकर पश्चाताप हो रहा था। आज उसके सामने से उसकी अपनी तथा कर्ण की वीरता का आवरण हट चुका था। उसका मन भयभीत हो गया था। वह अब अपना यह मुँह लेकर हस्तिनापुर में प्रवेश करने योग्य नहीं रहा।

दुर्योधन ने अपने शिविर में जाकर अपने अंगों पर भभूत मली और बोला, 'दुश्शासन ! तुम जाकर राज्य-भार सम्भालो। मैं तुम्हें युवराज बनाता हूँ। मैं यहीं भूखा रहकर प्राण त्याग कर दूँगा। अपना यह पराजित मुख लेकर मैं हस्तिनापुर नहीं जा सकता।'

दुर्योधन की निरुत्साहपूर्ण बातें सुनकर कौरव अधीर हो गये। दुश्शासन बोला, 'भैय्या ! आज की इस तनिक सी घटना से आप इतने व्याकुल हो गये। क्या आपके ऊपर पाण्डवों का आतंक छा गया ? हमारे साथ कृप, द्रोण, कर्ण, भीष्म, शकुनि और विदुर जैसे महारथी हैं। ये पाँच पाण्डव क्या उनके सामने ठहर सकेंगे ? हमारी पाण्डवों पर निश्चित रूप से विजय होगी।'

कर्ण बोला, 'भाई दुर्योधन ! आप अधीर न हों। मेरा रथ टूट-गया था और सेना भाग खड़ी हुई थी। अकेला रह जाने के कारण मुझे रण से भागना पड़ा, नहीं तो आज सब यक्षों को यमपुरी पहुँचा देता।

पाण्डवों ने तुम्हें अपमानित कराने के लिये ही आज यहाँ यक्षराज चित्रथ को बुलाया था। हमें अपने इस अपमान का इनसे बदला लेना होगा। हम अपने इस अपमान को कभी नहीं भूल सकते।'

पाण्डवों से बदला लेने की उत्कट इच्छा ने दुर्योधन के हृदय में फिर आशा का संचार किया और वह हस्तिनापुर लौट गया।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

३

महात्मा विदुर को दुर्योधन की द्वैत-वन-यात्रा का समाचार प्राप्त कर हार्दिक खेद हुआ। उसके दुष्टतापूर्ण आचरणों से उनका मन खिन्न हो गया था।

अपने ऐश्वर्य का प्रदर्शन करने के लिये दुर्योधन के द्वैत-वन में जाने को महात्मा विदुर ने नीचता की पराकाष्ठा समझा। उन्हें उनके दूतों ने वहाँ का समाचार लाकर दिया। जब उन्हें यह सूचना मिली कि यक्षराज चित्रथ ने दुर्योधन को बन्दी बना लिया था और महाराज युधिष्ठिर ने उसकी प्राण-रक्षा की, तो उन्होंने पाण्डवों के इस विशेष प्रतिष्ठापूर्ण कार्य की प्रशंसा की। वह मुक्त कंठ से पाण्डवों की प्रशंसा करके दादा भीष्म से बोले, 'पितामह! देखी आपने दुर्योधन और कर्ण की नीचता। ये लोग पाण्डवों के सामने अपने ऐश्वर्य का प्रदर्शन करके उन्हें चिढ़ाने के लिये द्वैत-वन में आखेट खेलने गये। मतिमन्द धृतराष्ट्र ने भी इन्हें नहीं रोका।'

भीष्म आश्चर्यचकित होकर बोले, 'द्वैत-वन में! द्वैत-वन में जाने की इन्हें धृतराष्ट्र ने क्यों आज्ञा दी? ज्ञात होता है धृतराष्ट्र अपने बच्चों के मोह में फँसकर निपट अन्धा हो गया है। इसे दैहिक नेत्र तो विधाता ने ही नहीं दिये और अपने अन्तर्चक्षुओं को इसने स्वयं बन्द कर लिया।' भीष्म का हृदय ग्लानि से भर गया। उन्होंने दुर्योधन के इस द्वेशपूर्ण कार्य की निन्दा की।

महात्मा विदुर बोले, 'ये लोग द्वैत-वन में पहुँचे तो इनका यक्षराज चित्रथ से युद्ध छिड़ गया। जहाँ सरोवर पर उनकी स्त्रियाँ स्नान कर रही थीं। ये निर्लज्ज वहीं जा पहुँचे। उन्होंने इन्हें वहाँ से मारकर भगा दिया। यक्षों ने इन्हें बुरी तरह पराजित किया। कर्ण मैदान से

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भाग खड़ा हुआ ।'

भीष्म मुस्कराकर बोले, 'यह बहुत अच्छा हुआ विदुर ! कर्ण की वीरता की कलई खुल गई । अब दुर्योधन को उसकी वीरता पर गर्व करने का अवसर नहीं रहेगा । उसके बाहुबल के भरोसे यह कोई बड़ा उत्पात खड़ा नहीं कर सकेगा ।'

'केवल इतना ही नहीं हुआ पितामह ! कर्ण के भाग आने पर दुर्योधन ने स्वयं यक्षों पर आक्रमण किया । यक्षों ने इन्हें परास्त कर दुर्योधन की मुश्कें बाँधलीं और यक्षराज के चरणों पर ले जाकर पटक दिया । इसकी सब बहादुरी मिट्टी में मिल गई ।'

यह सुनकर भीष्म भयभीत हो गये । उन्हें यक्षराज पर क्रोध आया । वह आवेशपूर्ण स्वर में बोले, 'इस नीच ने कुरु-कुल को कलंकित कर दिया । जो अपमान कुरु-कुल ने आज तक कभी सहन नहीं किया, वह आज सहन करना पड़ा ।' फिर प्रश्नवाचक दृष्टि से महात्मा विदुर की ओर देखकर पूछा, 'क्या दुर्योधन अभी भी यक्षराज के बन्दी-गृह में पड़ा है? उसकी रक्षा के लिये मुझे जाना होगा ?'

महात्मा विदुर बोले, 'नहीं पितामह ! युधिष्ठिर को दुर्योधन के बन्दी होने की सूचना मिली तो उसने अर्जुन और भीम को उसकी रक्षा के लिये भेजा । अर्जुन और भीम ने यक्षों की सेना को परास्त कर दुर्योधन को लेजाकर युधिष्ठिर के चरणों में डाल दिया ।'

यह समाचार प्राप्त कर भीष्म गद्-गद् हो गये । वह मुक्त कंठ से बोले, 'विदुर ! पाण्डवों के आचरण प्रशंसनीय हैं । उनके कृत्यों को सुनकर हृदय गर्व से फूल उठता है । वे लोग कुल-मर्यादा के रक्षक हैं ।'

तभी उन्हें दुर्योधन अपने मित्रों और भाइयों के साथ आता दिखाई दिया । दुर्योधन की सूरत देखकर भीष्म बोले, 'विदुर इस कुल-कलंकी दुर्योधन ने कुरु-कुल में जन्म न लिया होता तो अच्छा था । जिस कुल

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

 Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

की मर्यादा को मैंने अपना जीवन देकर सींचा, उसका यह विध्वंस करने पर उतारू है। इसकी सूरत आँखों के सामने आती है तो हृदय अथाह पीड़ा से भर जाता है। मेरे नेत्रों के सामने महाकाल के काले बादल मँडराते दिखाई देने लगते हैं। लगता है जैसे विनाश मेरे सामने खड़ा है।

अपने पूर्वजों के त्याग और बलिदानों पर मेरी दृष्टि जाती है तो हृदय गर्व से फूल जाता है। जब मैं इस चाण्डाल की सूरत देखता हूँ तो लगता है कि इस वंश का गौरव अपने अन्तिम श्वाँस गिन रहा है। सच जानो विदुर! इस नीच की सूरत देखने को मन नहीं होता। परन्तु क्या करूँ...।'

महात्मा विदुर गम्भीर वाणी में बोले, 'आपका अनुमान ठीक है पितामह! युद्ध के काले बादल आकाश पर मँडरा रहे हैं। पाण्डवों के वनवास के बारह वर्ष व्यतीत हो चुके। अज्ञातवास का एक वर्ष शेष है। वह भी पलक मारते समाप्त हो जायेगा।

इधर मैं देख रहा हूँ दुर्योधन बेईमानी पर उतारू है। यह पाण्डवों को उनका आधा राज्य लौटाने के लिये उद्यत नहीं है। आप स्वयं विचार कर लें इसका परिणाम क्या होने वाला है।'

'परिणाम वही होगा विदुर! जो तुम सोच रहे हो, जो मैं देख रहा हूँ। कुरु-कुल का विनाश होगा और कुरु-कुल की भयंकर ज्वाला में देश-देशान्तर के वीर जलकर भस्म हो जायेंगे। मानव-संस्कृति का घोर विनाश-काल सामने दिखाई दे रहा है। कुछ नहीं बचेगा विदुर! सर्वनाश की काली छाया भू-मण्डल पर छा जायेगी।'' भीष्म गम्भीरता-पूर्वक बोले।

'यही होगा पितामह! इसके अतिरिक्त और कुछ दिखाई नहीं दे रहा। दुर्योधन के चारों ओर जो मन्दमति परामर्शदाता एकत्रित हैं, ये यही कराकर दम लेंगे। कुरु-वंश ने एक लम्बे काल तक परिश्रम करके जो निर्माण किया है वह ध्वस्त हो जायेया। कुछ नहीं बचेगा पितामह! कुछ नहीं बचेगा।' गम्भीरतापूर्वक महात्मा विदुर बोले।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कुरु-कुल के इन दो महान् कर्णधरों के हृदय संताप से विदग्ध हो गये। कुरु-कुल के विनाश की काली छाया को अपने नेत्रों के सामने नृत्य करती देख कर दोनों के नेत्र सजल हो गये।

उस दिन भरी सभा में भीष्मपितामस ने दुर्योधन से कहा, 'दुर्योधन ! तुमने द्वैत-वन में जाकर कुरु-कुल को कलंकित किया। युधिष्ठिर वहाँ न होते तो तुमने कुरु-कुल-गौरव को सर्वदा के लिये नष्ट कर दिया होता। अच्छा यही हुआ कि तुम्हें अपने मित्र कर्ण की वीरता का ज्ञान हो गया। यक्ष-सेना के समक्ष पीठ दिखाकर भाग आने वाले कर्ण पर आज से तुम्हें गर्व करना छोड़ देना चाहिये। यदि मेरा कहा मानो तो अपने पाण्डव-भाईयों के साथ विशुद्ध हृदये से मेल कर लो और दोनों आधा-आधा राज बाँटकर सुख-चैन से राज करो। कुरु-कुल की प्रतिष्ठा पारस्परिक कलह में नहीं, पारस्परिक-प्रेम में है।'

भीष्म की बात सुनकर दुर्योधन को उसमें पाण्डवों के हित की गंध आई। उसने अश्रद्धा के साथ पितामह भीष्म की ओर देखा और सभा से उठ कर चला गया। उसके पीछे-पीछे कर्ण, शकुनि और दुःशासन भी चले गये।

भीष्म महाराज धृतराष्ट्र से बोले, 'धृतराष्ट्र ! अपने हृदय-चक्षुओं को खोल। बेटों के मोह में अंधा न बन। क्या आखेट के लिये एक द्वैत-वन ही था जहाँ जाने की तुमने दुर्योधन को आज्ञा दी ?'

धृतराष्ट्र लज्जित होकर बोले, 'मैंने मना किया था इन लोगों को द्वैत-वन में जाने के लिये, परन्तु जब इन्होंने वचन दिया कि पाण्डवों के साथ कोई उत्पात नहीं करेंगे और दूसरी दिशा में जायेंगे तो मैंने आज्ञा देदी।'

कर्ण सभा-भवन से बाहर निकल कर बोला, 'दुर्योधन ! सुनीं तुमने

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दादा भीष्म की बातें ? कितनी छलपूर्ण थीं ? यह पाण्डवों को पता नहीं क्या समझते हैं ? यह अन्न आपका खाते हैं और गुण पाण्डवों के गाते हैं। यह मेरे और तुम्हारे अन्दर द्वेष पैदा करना चाहते हैं, जिससे तुम अशक्त हो जाओ और पाण्डव तुम्हें हरा दें। मैं इनकी चालों को भली भाँति समझता हूँ।'

'क्यों मामा शकुनि ! आपका क्या विचार है दादा भीष्म के विषय में ?' गम्भीरतपूर्वक दुर्योधन ने पूछा।

शकुनि बोला, 'कर्ण ठीक कह रहा है दुर्योधन ! तुम्हें इनकी चालों में आकर अपनी शक्ति का विघटन नहीं करना चाहिए। कर्ण जैसा वीर साथी तुम्हें संसार में खोजे नहीं मिलेगा।'

शकुनि के मुख से अपनी प्रशंसा सुनकर कर्ण गर्व से फूल गया वह सीना उभार कर बोला, 'दुर्योधन ! मैं भीष्म को दिखा देना चाहता हूँ कि कर्ण क्या है ? तुम तैयारी करो। मैं दिग्विजय के लिये प्रस्थान करूँगा और सब राजाओं के मस्तक झुका कर उनसे चौथ वसूल करूँगा। इससे जो धन प्राप्त होगा उससे तुम राजसूय-यज्ञ करना।'

कर्ण की यह वीरतापूर्ण बात सुनकर दुर्योधन बोला, 'यह बात तुमने बहुत ठीक सोची कर्ण ! तुम दिग्विजय करके लौटोगे तो दादा भीष्म पर भी तुम्हारी वीरता की छाप पड़ेगी और फिर वह तुम्हें कायर नहीं कह सकेंगे।'

कर्ण दिग्विजय के लिये चल दिया। कर्ण जिस दिशा में गया, उसने कुरु-कुल की विजय-पताका फहराई। कोई राजा उसके समक्ष सिर न उठा सका। जिसने सिर उठाया, उसे पराजित होना पड़ा।

कर्ण दिग्विजय करके लौटा तो दुर्योधन ने उसकी पीठ ठोंक कर कहा, 'प्रतापी कर्ण ! जिस कार्य को बड़े-बड़े महारथी नहीं कर सकते थे, वह तुमने करके दिखा दिया। अब दादा को तुम्हारा लोहा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मानना होगा ।'

कर्ण के इस वीरतापूर्ण कार्य की माता गांधारी और धृतराष्ट्र ने मुक्त कण्ठ से सराहना की ।

दुर्योधन ने राजसूय यज्ञ करने का निश्चय किया और ब्राह्मणों को बुलाया, परन्तु ब्राह्मणों ने उन्हें रासूय-यज्ञ की अनुमति नहीं दी । वे बोले, 'महाराज ! अपने पिता के जीवित रहते आप राजसूय-यज्ञ करने के अधिकारी नहीं हैं । फिर आपके कुल के महाराज युधिष्ठिर सफल राजसूय-यज्ञ कर चुके हैं । ऐसी दशा में आपको विष्णु-महायज्ञ का अनुष्ठान करना चाहिये ।''

दुर्योधन ने विष्णु-महायज्ञ का अनुष्ठान किया । पाण्डवों के पास भी यज्ञ का निमन्त्रण भेजा गया, परन्तु उन्होंने यह कह कर टाल दिया कि वे लोग वनवास की स्थिति में नगर में प्रवेश नहीं कर सकते ।

दुर्योधन ने धूम-धाम के साथ यज्ञ सम्पन्न किया और ब्राह्मणों को दान-दक्षिणाएँ दीं ।

यज्ञ समाप्ति पर कर्ण दुर्योधन का अभिवादन करके बोला, 'यह यज्ञ सम्पन्न हुआ दुर्योधन ! परन्तु मेरे मन को प्रसन्नता तभी होगी, जब तुम पाण्डवों पर विजय प्राप्त कर राजसूय-यज्ञ करोगे । मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि जब तक अर्जुन को युद्ध-भूमि में परास्त कर उसका वध नहीं कर दूँगा तब तक मांस और मदिरा का सेवन नहीं करुंगा ।'

कर्ण की प्रतिज्ञा को सुनकर दुर्योधन ने उसे छाती से लगा लिया और गद्-गद् वाणी में बोला, 'वीर कर्ण ? इस यज्ञ की पूर्ति का श्रेय तुम्हीं को है । मुझे विश्वास है कि राजसूर्य-यज्ञ की सफलता भी तुमही प्राप्त करोगे । तुम्हारी प्रतिज्ञा निश्चित रूप से सफल होगी । यूँ तो हमारे पक्ष में कृप, द्रोण और भीष्म जैसे वीर हैं, परन्तु मेरा विश्वास एक मात्र तुम पर है ।'

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दुर्योधन के मुख से अपनी वीरता की प्रशंसा सुनकर कर्ण की छाती फूल कर चौड़ी हो गई।

पाण्डवों को दुर्योधन के यज्ञ की सफलता का समाचार मिला तो भीम उत्तेजित होकर बोला, 'यह यज्ञ बच्चों का खिलवाड़ मात्र है। वास्तनिक यज्ञ होना अभी शेष है। वह यज्ञ समर-भूमि में होगा।'

अर्जुन उत्साहपुर्ण स्वर में बोले, 'सुना है कर्ण ने युद्ध-भूमि में मुझे परास्त करके मेरा संहार करने का व्रत लिया है।' यह कह कर वह हँस दिये।

दूसरे दिन पाँचों भाई प्रातःकाल आखेट के लिये निकल गये।

पांचाली आश्रम में अकेली घूम रही थीं। पांचाली के रूप से वन-स्थली खिल रही थी। वह जिधर जाती थीं, उधर के बेल-वितान पुष्पित हो जाते थे, पक्षी-गण कलरव करके मधुर स्वर में राग अलापते थे। पांचाली उनके निकट जाकर उनकी डालियाँ पकड़ कर झूलने लगती थीं। पत्ते ताल देते थे और शीतल पवन संगीत स्वर को सम्पूर्ण वन में बिखरा देता था।

पांचाली ने देखा उनके पालित मृगों के छौनों की कतार उनके सामने खड़ी थी। उन्होंने उन सब को कन्द-मूल-फल खिलाये और उनके साथ खेलती हुई आश्रम की झोंपड़ी के निकट आ गईं। यह वन पांचाली का सम्राज्य था।

दुर्योधन का बहनोई जयद्रथ अपनी विशाल सेना के साथ शाल्व देश जा रहा था। वह आश्रम के निकट पहुँचा तो उसकी दृष्टि पांचाली पर गई।

जयद्रथ पांचाली के रूप को देख कर ठगा-सा रह गया। उसने रथ रोक दिया और अपने दूत को उनके पास उनका परिचय प्राप्त करने के लिये भेजा।

जयद्रथ के दूत ने पांचाली के निकट जाकर पूछा, 'सुन्दरी! आप कौन

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हैं ? वन देवी हैं अथवा स्वर्ग से उतरी हुई कोई अप्सरा है ? मैं सिंधुराज श्री जयद्रथ का दूत हूँ। वह सामने सरोवर के निकट रथ पर विराजते हैं। मुझे उन्होंने आपका परिचय प्राप्त करने के लिये भेजा है। आप अपना परिचय दें तो मैं उनकी जिज्ञासा शान्त करूं।'

पांचाली ने उत्तर दिया, 'मेरा नाम पांचाली है। श्री जयद्रथ के लिये मेरा इतना ही परिचय पर्याप्त होगा। वह इस नाम से परिचित हैं। मेरे पति अर्जुन अपने भाईयों के साथ आखेट खेलने के लिये गये हैं। श्री जयद्रथ से कहिये कि पतिदेव के लौटने पर उनका समुचित सत्कार किया जायेगा। तब तक वह सरोवर के तट पर विश्राम करें।'

दूत ने सिंधुराज जयद्रथ को जाकर पांचाली का परिचय दिया। जयद्रथ उनके रूप पर बुरी तरह आसक्त हो चुका था। वह वहाँ खड़ा न रह सका और आश्रम के निकट चला आया।

पांचाली ने जयद्रथ को आसन दिया और बोलीं, 'सिंधुराज ! आसन पर विराजें। धृतराष्ट हमारे पूज्य हैं। उनके जामाता का समुचित सम्मान करना हमारा धर्म है। आप कंद-मूल-फलों का आहार करें, तब तक पाण्डव भी आ जायेंगे।' यह कहकर उन्होंने एक कमल-पत्र पर कुछ कंद-मूल-फल रखकर उसके सामने रख दिये।

लोलुप जयद्रथ वहाँ कंद-मूल-फल खाने नहीं गया था। वह बोला, 'अपूर्व सुन्दरी ! मुझे तुम्हारे इन फलों की आवश्यकता नहीं है। मैं तुम्हारे रूप का पिपासू हो गया हूँ। तुम व्यर्थ इन कायर पाण्डवों के पास रहकर अपने अनुपम रूप को नष्ट कर रही हो। मेरे साथ रथ पर बैठ कर चलो और मेरे राज्य की साम्राज्ञी बनो। संसार में मनुष्य सुख भोग करने के लिये आता है, व्यर्थ कष्ट सहन करने के लिये नहीं ?'

जयद्रथ की वासनापूर्ण बातें सुनकर पांचाली का रक्त उबाल खा गया। उनके नेत्र अंगारों के समान दहकने लगे। वह क्रुद्ध वाणी में बोलीं, 'दुष्ट ! मेरी दृष्टि के समाने से दूर हो। मुझे आश्रम में

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अकेली देख कर तेरा इतना साहस कि तूने इस प्रकार के शब्द उच्चारण किये ?'

पांचाली के क्रोधपूर्ण शब्दों का निर्लज्ज जयद्रथ पर कोई प्रभाव न हुआ। उसने पांचाली का वस्त्र पकड़ कर उसे अपनी ओर खींचना चाहा तो पांचाली ने पास में पड़े एक पाषाण से जयद्रथ पर प्रहार किया। जयद्रथ पृथ्वी पर गिर गया। वह फिर सँभल कर उठा तो पांचाली ने उस पर दूसरा प्रहार किया और वह फिर पीछे जा गिरा। वह हतप्रभ हो गया कि क्या करे।

तब तक जयद्रथ के सैनिक वहाँ आ गये। उन्हें देख कर पांचाली भयभीत हो गई। उनके पास उनसे बचने का कोई मार्ग न रहा।

जयद्रथ अपने सैनिकों से बोला, 'इसे उठाकर मेरे रथ पर ले चलो।'

सैनिकों ने झपट कर पांचाली को उठा लिया और जयद्रथ के रथ पर जाकर उन्हें रथ पर डाल दिया।

पांचाली आर्तनाद कर उठीं। वह जोर-जोर से पाण्डवों को पुकारने लगीं।

धौम्य जी ने पांचाली का आर्तनाद सुना तो वह दौड़कर घटना-स्थल पर पहुँचे और क्रोधावेष में बोले, 'कायर जयद्रथ ! तेरा इतना दुस्साहस ? यदि अपने प्राणों की रक्षा चाहता है तो पांचली को अपने रथ से नीचे उतार दे, वरना समझ ले आज मृत्यु तेरे शीर्ष पर मँडरा रही है। पाण्डव आ गये तो तेरे प्राणों की कोई रक्षा न कर सकेगा।'

जयद्रथ ने धौम्य जी की बात पर कोई ध्यान नहीं दिया। वह अपने सारथी से बोला, 'रथ आगे बढ़ाओ।' वह पवन-वेग से अपने रथ को अपनी राजधानी की ओर ले चला।

सारथी ने रथ हांक दिया। पांचली चिल्ला रही थी। धौम्यजी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पागलों की तरह रथ के पीछे दौड़।

रथ अभी कुछ ही दूर गया था कि पाण्डव आश्रम पर आ गये। आश्रम की एक वन-कन्या ने उनसे पांचाली के हरण की बात कही तो वे क्रोध में पागल हो गये।

अर्जुन ने गांडीव सँभालकर देखा कि रथ दक्षिण-पथ की ओर जा रहा था। उन्होंने रथ पर एक बाण संधान कर प्रहार किया। रथ खील-खील होकर बिखर गया। उनके दूसरे तीर ने रथ के दोनों घोड़ों को मृत्यु-लोक में पहुंचा दिया और तुरंत वह अपने भाई भीम को साथ लेकर उस दिशा में दौड़े। वे रथ के निकट पहुंचे तो देखा वहाँ जयद्रथ की विशाल सेना उनके सामने खड़ी थी।

दोनों भाई शत्रु-सेना का संहार करते हुए जयद्रथ के निकट जा पहुंचे और भीम ने लपक कर उसके केश पकड़ लिये। अर्जुन के बाणों की तीव्र वर्षा के सामने जयद्रथ की सेना भाग खड़ी हुई। उसे भागते देखकर भीम बोले, 'भय्या! अब भागते हुए सैनिकों का संहार न करो। इस पापी को भय्या के पास ले चलो।'

भीम जयद्रथ को घसीटते हुए महाराज युधिष्ठिर के पास ले गये। पांचाली उनके साथ आश्रम को लौट आई। उसका बदन क्रोध से थर-थर काँप रहा था।

भीम क्रोध से पागल हो रहे थे। वह अपने बड़े भाई युधिष्ठिर से बोले, 'भय्या! आज्ञा करें तो इस पापी को यमपुरी पहुंचा दूँ। पांचाली का अपमान करने वाले की लोक लीला समाप्त करने को मेरे भुजदण्ड फड़क रहे हैं। इस नीच का इतना साहस कि यह हमारा इस प्रकार अपमान करे।'

स्थिति की गम्भीरता को समझकर युधिष्ठिर बोले, 'भीम! यह जयद्रथ ने सचमुच ऐसा ही कार्य किया है कि इसे प्राण-दण्ड मिलना चाहिए, परन्तु हमारे सामने बहिन दुःशला के सुहाग का प्रश्न है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हम यह सहन नहीं कर सकते कि हम अपने ही हाथों उसे विधवा बना दें। इस समय इसे शिक्षा देकर छोड़ देना ही उचित है।''

पांचाली के दिल में अपने अपमान की भीषण ज्वाला सुलग रही थी, परन्तु उन्होंने महाराज युधिष्ठिर की गम्भीर बात पर ध्यान देकर कहा, 'मैं ननदोई जी का स्वागत कर रही थी। इन्हें आसन देकर मैंने पत्तल पर कन्द-मूल-फल रख कर इन्हें खाने को दिये थे, परन्तु इन्हें अपनी यह दुर्दशा करानी अभीष्ट थी। इन्होंने अपनी कुबुद्धि का परिचय दिया, परन्तु हम अपनी सभ्यता को हाथों से नहीं जाने देंगे। यह सानन्द अपने घर वापिस जा सकते हैं। मैं धर्मराज के मत से सहमत हूँ।'

जयद्रथ को बन्धन-मुक्त कर दिया गया। धर्मराज युधिष्ठिर बोले, 'जयद्रथ! अपनी बुद्धि का सदुपयोग करो। भविष्य में कभी ऐसा दुस्साहस करने की चेष्टा न करना, वरना उसका गम्भीर परिणाम होगा।'

जयद्रथ ग्लानिपूर्ण मन लेकर सिर नीचा किये वहाँ से चल दिया। उसके ऊपर पाण्डवों के सद्व्यवहार का कोई प्रभाव न हुआ। उसके दिल में पाण्डवों के प्रति द्वेष की ज्वाला और भी तीव्र वेग के साथ भड़क उठी। उसने अपने मन में यही कहा कि वह कभी अवसर मिलने पर अर्जुन से अपने अपमान का बदला लेगा। वह अपने अपमान पर कुढ़ता हुआ वहाँ से चला गया।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

४

पाण्डवों के वनवास के बारह वर्ष समाप्त हो गये। अब केवल एक वर्ष अज्ञात-वास का शेष था। इसे निर्विघ्न समाप्त करना एक कठिन समस्या थी, क्योंकि यदि इस बीच में कौरवों को उनका पता चल जाता तो उन्हें फिर बारह वर्ष के लिये वन जाना होता।

दुर्योधन के गुप्तचर उनके चारों ओर बिछे हुए थे और वे उनकी गतिविधियों पर दृष्टि रखे थे। ये जिधर जाते थे वे उसकी सूचना दुर्योधन के पास पहुंचा देते थे।

एक दिन रात्रि को पाण्डव धौम्यजी को अपने आगामी पड़ाव की सूचना देकर आश्रम से चल दिये। किसी को कानों कान भी उनके प्रस्थान की सूचना न मिली। धौम्यजी के वहाँ रहने से दुर्योधन के दूत यही समझते रहे कि पाण्डव अभी वहीं हैं।

प्रात:काल सब लोग सोकर उठे तो धौम्यजी ने आश्रमवासी ब्राह्मणों को द्वारिका जाने का परामर्श दिया और उन्हें विदा करके धौम्यजी ने पाण्डवों से उनके आगामी पड़ाव पर जाकर भेंट की।

रात्रि को सब ने मिलकर विचार किया कि उन्हें यह एक वर्ष कहाँ बिताना चाहिये। धौम्यजी बोले, 'आपका मत्स्य-देश के राजा विराट के यहाँ रहना उचित होगा, परन्तु यदि आप अपने इसी वेष में वहाँ गये तो रहस्य प्रकट हुए बिना न रहेगा। महाराज युधिष्ठिर चौपड़ खेलने में प्रवीण हैं और विराट को चौपड़ खेलने का बहुत शौक है। इसलिये इन्हें उनका मनोविनोद-कार्य करना चाहिये। यह अपना नाम कंक रख लें और इसी नाम से आप सब इन्हें पुकारें। भीम भोजन बनाने में दक्ष हैं। इन्हें उनकी भोजनशाला में स्थान मिल जायेगा। इन्हें आप लोग वल्लभ नाम से पुकारें। अर्जुन संगीत-विद्या में दक्ष हैं। यह संगीत

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बनकर उनके दरबार में रहें और आप लोग इन्हें वृहन्नला कहकर पुकारें। नकुल को ग्रन्थिक के नाम से उनकी अश्वशाला में नौकरी करनी चाहिये। सहदेव को तंत्रिपाल नाम से उनके यहां पशु-चिकित्सा का कार्य सम्भालना चाहिये। पांचाली को सौरिन्ध्री नाम से रानी के शृंगार का कार्य करना चाहिये।'

धौम्यजी की यह बात सब ने स्वीकार कर ली और वे मत्स्य-देश की ओर चल दिये। उन्होंने अज्ञात-वास का एक वर्ष विराट-नगरी में व्यतीत करने का निश्चय किया।

कौरवों के दूतों को जब पाण्डवों के चले जाने का कोई समाचार न मिला तो वे निराश होकर हस्तिनापुर लौट गये। उन्होंने पाण्डवों के रात्रि में लापता होने का समाचार दुर्योधन को दिया तो वह क्रोध से पागल हो गया। उसे अपने दूतों पर बहुत क्रोध आया, परन्तु अब क्रोध करना निरर्थक था। उसने तुरन्त अपने बहुत से दूत देश-विदेशों में पाण्डवों की खोज करने के लिये भेजे।

पाण्डवों ने अपने वेश बदल लिये और गुप्त वेश में मत्स्य राज्य के अन्दर प्रवेश किया। जब राजधानी निकट आ गई तो अस्त्राशस्त्रों को छिपाने की समस्या उनके सामने आई, क्योंकि यदि वे अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित नगर में प्रवेश करते तो उनका भेद खुल जाता।

अर्जुन बोले, 'सामने पर्वत-शिखर के पास जो श्यमशानभूमि दिखाई देती है, उसा के किसी वृक्ष पर हमें अपने अस्त्र-शस्त्र छिपा देने चाहिएँ। हम लोग समय-बे-समय इनकी देख-भाल कर जाया करेंगे।

अर्जुन का यह मत सब ने स्वीकार कर लिया और एक वृक्ष के झुरमुट में बर्गद के पेड़ की खरकोडल के अन्दर अस्त्र-शस्त्र छिपा कर रख दिये।

सर्व प्रथम युधिष्ठिर ने एक दीन ब्राह्मण का रूप धारण कर नगरी में प्रवेश किया। वह महाराज विराट की सभा में पहुंचे तो

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

विराट ने उनका परिचय प्राप्त किया।

युधिष्ठिर बोले, 'महाराज ! मेरा नाम कंक है। मुझे चौपड़ खेलने का शौक था। मैं युधिष्ठिर के साथ चौपड़ खेला करता था। इधर जब से वह वनवास को चले गये तब से मेरा कोई ठिकाना नहीं रहा। मैंने सुना है कि आपको भी चौपड़ में बहुत रुचि है।'

महाराज विराट ने उन्हें आदरपूर्वक अपने पास बिठा कर कहा, 'आज से आप हमारे संखा हुए कंक जी ! आप सम्मानपूर्वक हमारे यहाँ रहें और हमारे साथ चौपड़ खेला करें। आपको यहाँ कोई कष्ट न होगा।'

युधिष्ठिर के पश्चात् भीम ने नगरी में प्रवेश किया और महाराज विराट से भेंट की। महाराज ने उनका परिचय पूछा तो वह बोले, 'महाराज ! मेरा नाम वल्लभ है। मैं पाक-विद्या में प्रवीण हूँ। मैं पाण्डवों की पाकशाला का प्रधान अधिकारी था। मुझे मल्ल-विद्या का भी शौक है। अवसर पड़ने पर मैं आपको अपना कौशल दिखाऊँगा।'

महाराज विराट ने उन्हें अपनी पाकशाला का प्रधान अधिकारी नियुक्त किया। उनके पुष्ट बदन को देखकर महाराज ने सोचा कि ऐसा बलवान व्यक्ति यदि राज्य में रहेगा तो कभी समय पड़ने पर काम आयेगा।

उनके पश्चात् पांचाली ने नगर में प्रवेश किया। पांचाली को महाराज ने अपनी रानी की सेवा में भेज दिया।

फिर अर्जुन ने नगर में प्रवेश किया और संगीतज्ञ के रूप में अपना परिचय दिया। उन्हें भी महाराज विराट के दरबार में प्रतिष्ठा मिली। नकुल और सहदेव को भी उनके उपयुक्त कार्यों पर रख लिया गया।

पांचों पाण्डवों को उनकी इच्छा के अनुकूल कार्य मिल गया। चपय

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भाई तथा पांचाली समय-समय पर आपस में मिल कर अपने हर्ष-विशाद की बातें कर लेते थे। इस प्रकार रहते-रहते चार माह व्यतीत हो गये।

विराट-नगरी में एक मेला लगता था। मेले की तय्यारियाँ होने लगीं। उस मेले में बड़े-बड़े पहलवान् आते थे और अपने पराक्रम दिखाकर महाराज से पुरस्कार प्राप्त करते थे।

इस वर्ष मेले में जीवमृत नामक एक विख्यात् पहलवान् आया था। वह अपने सामने किसी को कुछ नहीं समझता था। अखाड़े में उतर कर उसने सब पहलवानों को ललकारा और जो भी उससे लड़ने आया उसी को उसने हरा दिया। महाराज विराट को उस समय अपनी पाक-शाला के अधिकारी वल्लभ का ध्यान हो आया। उन्होंने उसे बुलाकर कहा, 'वल्लभ ! जीवमृत पहलवान् ने सब पहलवानों को पछाड़ दिया है। क्या तुम इससे कुश्ती कर सकते हो ?'

महाराज की बात सुनकर उपस्थित जन-समूह खिलखिलाकर हंस दिया। वल्लभ की दृष्टि उन सब पर गई तो वह उस हास्य को संवरण न कर सके और लँगोट कसकर अखाड़े में उतर गये। उन्होंने पहले ही दाव पर जीवमृत को चारोखाने चित्त मारा। उनकी हड्डी-पसलियाँ ढीली पड़ गईं। उसमें उठ कर खड़ा होने की भी शक्ति न रही।

महाराज विराट ने खड़े होकर वल्लभ को अपनी छाती से लगा लिया। महाराज ने उसी दिन से वल्लभ का वेतन दुगना कर दिया।

समय धीरे-धीरे और आगे बढ़ गया। सात महीने व्यतीत हो चुके थे। एक दिन विराट के सेनापति कीचक की दृष्टि पांचाली पर पड़ गई। कीचक महाराज की पत्नी का भाई था। उसके अन्य सम्बन्धी भी राज्य में बड़े-बड़े पदों पर आरूढ़ थे। शासन की बागड़ोर उन्हीं के हाथों में थी। महाराज विराट स्वयं भी कीचक की इच्छा के विरुद्ध

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कुछ नहीं कर सकते थे। उसने अपनी शक्ति से महाराज विराट को अपना दास बना लिया था। मत्स्य-देश का उस समय वास्तविक राजा वही था। महाराज विराट उसकी इच्छा के विरुद्ध कुछ नहीं कर सकते थे।

कीचक ने एक दिन अपनी बहिन महारानी सुदेष्णा से कहा, 'बहिन ! तुम्हारी यह परम सुन्दर दासी कौन है ? इसके रूप को देखकर मैं अधीर हो रहा हूँ। मैं इसके साथ विवाह करना चाहता हूँ। इस कार्य में तुम मेरी सहायता करो।'

महारानी का उत्तर प्राप्त किये बिना ही वह सीधा पांचाली के सामने जा पहुंचा और अपना प्रेम-प्रस्ताव उसके सामने रख दिया।

पांचाली संयम के साथ बोलीं, 'सेनापति ! आपको यह सब शोभा नहीं देता। मैं छोटी जाति की स्त्री हूँ। फिर मैं विवाहित हूँ। मैं आपका प्रेम-प्रस्ताव स्वीकार करने के सर्वथा अयोग्य हूँ।'

कीचक को पांचाली के इस उत्तर से संतोष न हुआ। वह बोला, 'सुन्दरी ! रूप की कोई जाति नहीं होती। रूप वर्ण-मुक्त होता है। रूप को जाति के बंधन में बाँधना रूप का अपमान करना है। रही बात तुम्हारे विवाहित होने की, सो ऐसे व्यक्ति को तुम्हारा पति बनने का कोई अधिकार नहीं जो तुम सरीखी सुन्दरी से दासी-कार्य कराये। उस पति को त्यागकर तुम मेरी हृदयेश्वरी बनो। मैं तुम्हें अपनी साम्राज्ञी बनाऊंगा। मैं तुम्हें अपने हृदय में स्थान दूंगा।'

कीचक की बातें सुनकर पांचाली का मुख क्रोध से लाल हो गया। वह बोलीं, 'पतिव्रता स्त्री के सामने उसके पति की निन्दा आपको नहीं करनी चाहिये सेनापति ! मेरे पति गुप्त रूप में हर समय मेरे साथ रहते हैं। आप व्यर्थ उनके क्रोध के भोजन न बनें। वह बहुत क्रोधी स्वभाव के हैं। आप उनसे व्यर्थ वैर न बढ़ायें।'

दासी के मुख से ये शब्द सुनकर सेनापति कीचक धैर्य खो बैठा।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वह अपनी बहिन के पास जाकर बोला, 'बहिन ! मैं सौरन्ध्री के बिना जीवित नहीं रह सकता। मैं इसे बल-प्रयोग से भी अपने वश में कर सकता हूँ, परन्तु बल-प्रयोग से प्राप्त स्त्री के हृदय पर अधिकार नहीं किया जा सकता। तुम इस कार्य में मेरी सहायता करो।'

महारानी बोलीं, 'कीचक ! मैं तुम्हारे विचारों से सहमत नहीं हूँ, परन्तु क्यों कि तुम मेरे भाई हो इसलिये एक उपाय बनाती हूं। तुम अपने महल में भोज का आयोजन करो। मैं वहाँ से भोजन लाने के लिये सौरिन्ध्री को भेजूंगी। तब तुम इसे अपनी वाक-चातुरी से अपने वश में करने का प्रयास करना। यदि यह प्रसन्नतापूर्वक तय्यार हो गई तो मैं अनुमति दे दूंगी।'

संध्या समय कीचक ने दावत का प्रबन्ध किया। महारानी ने सौरिन्ध्री से कहा, 'सौरिन्ध्री ! मुझे भूख लगी है। तुम भाई के महल से जाकर मेरा भोजन ले आओ।'

सौरिन्ध्री महारानी की बात सुनकर भयभीत हो गईं। वह बोलीं, 'महारानी जी ! मुझसे आप अन्य जो सेवा चाहें ले लें, परन्तु एकांत में सेनापति जी के महल में जाने का आदेश न दें। वह मेरा सतीत्व नष्ट करना चाहते हैं। मेरे वहाँ जाने पर अनर्थ होने की आशंका है।'

महारानी आश्वासन देकर बोलीं, 'सौरिन्ध्री ! मेरे रहते तुम्हारा अपमान करने का साहस किसी में नहीं है। तुम निर्भय होकर वहाँ जाओ और मेरा भोजन ले आओ।'

पांचाली को विवश होकर वहाँ जाना पड़ा। कीचक उसकी प्रतीक्षा में बैठा था। पांचाली जैसे ही कीचक के महल में पहुंची तो उसने बल प्रयोग करना चाहा। पांचाली चिल्ला कर बोली, 'सेनापति कीचक ! मेरे साथ बल-प्रयोग न करो। मेरे पति आ गये तो तुम्हारी कोई रक्षा न कर सकेगा। बहुत बड़ा अनर्थ हो जायेगा। मैं आपसे अपने सतीत्व की भिक्षा माँगती हूं।'

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कीचक अधा हो गया था। उसने कहा, 'सुन्दरी ! मैं तुम्हारे पति से भयभीत होने वाला नही हूँ। मैं तुम्हारी कृपा प्राप्त करना चाहता हूँ। तुम्हारा एक संकेत मात्र तुम्हें दासी से रानी बना सकता है। समझदारी से काम लो सौरिन्ध्री ! मूर्खता न करो। ऐसा अवसर जीवन में बार-बार हाथ नहीं आता।'

पांचाली का हृदय कीचक के शब्द सुनकर विदीर्ण हो गया। कीचक ने उन्हें अपनी बाहुओं में आबद्ध करना चाहा तो उन्होंने उसे धक्का दे दिया। कीचक पलंग पर गिर पड़ा और वह दरबार की दिशा में भाग खड़ी हुईं।

कीचक पांचाली को भागती देखकर उसके पीछे हो लिया। उसने दरबार में जाकर पांचाली के केश पकड़ लिये और उन पर लात-घूंसों का प्रहार किया।

सौरिन्ध्री महाराज विराट के सामने रोकर सकरुण वाणी में बोली, 'महाराज ! क्या आपका न्याय यही है कि आपके दरबार में एक अबला पर इस प्रकार अत्याचार हो ?'

कीचक का विरोध करने का साहस विराट में भी नहीं था। वह बातें बनाकर बोले, 'सौरिन्ध्री ! जब तक मुझे यह न ज्ञात हो कि दोष किसका है, मैं क्या न्याय कर सकता हूँ ?'

इस दृश्य को देखकर भीम का रक्त उबाल खाने लगा, परन्तु धर्मराज युधिष्ठिर ने आंख के संकेत से उन्हें शान्त कर दिया। वह गम्भीर वाणी में बोले, 'सौरिन्ध्री ! तुम्हें इस प्रकार दरबार में नहीं आना चाहिये था। तुम महारानी जी के पास जाओ।'

सौरिन्ध्री ने रनिवास में जाकर महारानी को यह समाचार दिया तो उन्हें अपने भाई की नीचता पर बहुत पश्चाताप हुआ। वह उसको धैर्य बंधाकर बोलीं, 'सौरिन्ध्री ! तुम जो दण्ड कहोगी मैं कीचक को वही दिलाऊँगी, तुम चिन्ता न करो।'

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सौरिन्ध्री बोलीं, 'महारानी जी ! मेरे अपमान का बदला मेरे पति स्वयं ले लेगें । वह कीचक से बहुत बलवान हैं । इसके लिये आपको चिन्ता नहीं करनी होगी ।'

जब सब सो गये तो पांचाली भीम के पास गई । भीम जाग रहे थे । उनके दिल में कीचक के प्रति ज्वाला सुलग रही थी । उनके नेत्रों का वर्ण लाल हो रहा था और भुजदण्ड फड़क रहे थे । अर्जुन भी क्रोधावेश में इधर-उधर घूम रहे थे ।

भीम की दशा देखकर पांचाली समझ गई कि उनके अपमान की जलन उनके हृदय को विदग्ध किये है । वह चुपचाप जाकर भीम के सामने खड़ी हो गईं । पांचाली के नेत्र डबडबाए हुए थे ।

भीम उन्हें सात्वना देकर बोले, 'पांचाली ! तुम्हारा अपमान करने वाला कल रात्रि तक जीवित नहीं रह सकता । तुम किसी प्रकार उसे नगर के बाहर वाली नाट्यशाला तक लाने का प्रयत्न करो । मैं उसका वहीं काम तमाम कर दूगा ।'

भीम के ये शब्द सुनकर पांचाली के विदिद्ध हृदय को सांत्वना मिली । वह चुपचाप अपने शायनागार में चली गईं ।

दूसरे दिन अवसर देखकर कीचक पांचाली के पास आया और अपने कृत्य की क्षमा-याचना करके प्रेम प्रदर्शित करने लगा । वह पांचाली पर बुरी तरह आसक्त था ।

पांचाली बोली, 'यहाँ आपसे बातें करते मुझे लज्जा आती है सेनापति ! यदि आप वास्तव में मुझ से प्रेम करते हैं तो रात्रि में नाट्य शाला में पधारिये । वहाँ एकान्त में आप से बातें निश्चित होने पर मैं विचार करूँगी ।'

कीचक सौरिन्ध्री का प्रस्ताव सुनकर प्रसन्नता से खिल उठा । वह रात्रि की बड़ी उत्सुकता से प्रतीक्षा करने लगा और रात्रि होने पर वह सज-धज कर नाट्यशाला की ओर चल दिया ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सौरिन्ध्री ने महाबली भीम को दिन में यह सूचना दे दी थी कि कीचक रात्रि में नाट्यशाला में आयेगा। भीम वहाँ पहिले से ही सौरिन्ध्री की साड़ी पहिनकर जा बैठे थे।

कीचक ने दूर से देखा वहाँ सौरिन्ध्री बैठी थी। वह पागल की तरह उसे आलिंगनबद्ध करने के लिये दौड़ पड़ा। भीम ने कीचक को निकट आते ही अपनी विशाल भुजाओं में जकड़ लिया और दबाकर उसकी हड्डी-पसलियाँ चूर-चूर कर दीं। कीचक को मृतक देखकर पांचाली ने संतोष की श्वाँस ली और वह चुपचाप अपने शायनागर को लौट गई।

कीचक की मृत्यु का समाचार समस्त विराट-नगरी में फैल गया। कीचक के बन्धुबाधवों ने निश्चय किया कि कीचक के शव के साथ सौरिन्ध्री को भी बाँध दिया जाये क्योंकि उसके पति ने कीचक की हत्या की है।

सौरिन्ध्री को बलपूर्वक कीचक के शव के साथ बाँध दिया गया। यह देखकर भीम तिलमिला उठे। उन्होंने किसी से कुछ न कहा और वह कीचक की अर्थी के श्मशानभूमि में पहुँचने से पूर्व वहाँ जा पहुँचे। भीम ने तालाब से काली मिट्टी लेकर अपने अङ्ग पर लपेट ली और कीचक की अर्थी की प्रतीक्षा करने लगे।

कुछ देर पश्चात् अर्थी श्मशानभूति में आई और कीचक के शव को सौरिन्ध्री के साथ चिता पर रख दिया गया। चिता में अग्नि प्रज्वलित करने की तैवारी होने लगी। सब लोग चिता के चारों ओर एकत्रित हो गये।

महाबली भीम ने उपयुक्त समय पर एक ताड़ का वृक्ष उखाड़ा और उसे लेकर वह कीचक के बन्धुबांधवों पर टूट पड़े। भीम ने सब को मार-मार कर भूमि पर गिरा दिया। उनमें से कुछ नगरी की ओर भाग गये।

भीम ने पांचाली को कीचक के शव से खोल कर पृथक खड़ी कर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दिया और कीचक के मृतक भाईयों को चिता पर रखकर अग्नि प्रज्वलित कर दी। वे सब चिता पर जलकर भस्स हो गये।

इस घटना का समचार विराट-नगरी में पहुँचा तो वहाँ आतंक छा गया। महाराज विराट भी सौरिन्ध्री के पति से भयभीत हो गये। उन्होंने सौरिन्ध्री को अपने रनिवास की सेवा से मुक्त करने का निश्चय कर लिया।

महाराज विराट ने जब अपना यह निश्चय सौरिन्ध्री को सुनाया तो वह उनसे करुणाद्र स्वर में बोली, 'महाराज ! मेरे पति कभी कोई अनीतिपूर्ण कार्य नहीं करते । आपने मुझे सुरक्षा प्रदान की है। मेरे पति सर्वदा गुप्त रूप में आपकी रक्षा करेंगे। इस बात का प्रमाण आपको उस समय मिलेगा जब आप अपत्ति-ग्रस्त होंगे।'

सौरिन्ध्री की यह बात सुनकर महारानी बोलीं, 'महाराज ! यदि यही बात है तो सौरिन्ध्री को यथास्थान बनी रहने दीजिये। मेरे भाई कीचक को सौरिन्ध्री के साथ ऐसा व्यवहार करना उचित नहीं था। उसने और उसके भाइयों ने अपने कुकृत्य का फल भोगा है। इसमें सौरिन्ध्री का कोई दोष नहीं।'

महारानी की बात सुनकर महाराज विराट ने सौरिन्ध्री को महारानी की सेवा में बनी रहने दिया। इससे पांचाली के ऊपर आने वाली विपत्ति टल गई।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

५

पाण्डवों के वनवास का तेरहवां वर्ष समाप्त हो गया। दुर्योधन लाख प्रयास करने पर भी उनका कहीं पता न चला सका। उसके दूतों ने देश-विदेश सब छान मारे। वे जहाँ भी गये वहाँ से उन्हें, निराश होकर लौटना पड़ा। उसके दूत हताश होकर बोले, 'महाराज ! हमने नगर, पर्वत, वन, तीर्थ सब छान मारे, परन्तु हमें पाण्डवों का कहीं पता न चला। ज्ञात नहीं वे कहाँ जाकर छिप गये।'

एक वर्ष पश्चात् दुर्योधन को सूचना मिली कि मत्स्य-राज्य के सेनापति कीचक का वध हो गया। कुछ दिन पूर्व वहाँ जीवमृत पहलवान को पछाड़ा गया था। दुर्योधन ने सोचा सम्भवतः पाण्डव गुप्त वेश में वहीं कहीं छिपे हैं।

सुशर्मा बोला, 'महाराज ! इस समय कीचक की मृत्यु हो जाने से मत्स्य-राज्य अनाथ हो गया है। आप उस पर आक्रमण करेंगे तो आपको अपनी सेना के संगठन के लिये बहुत बड़ी सम्पत्ति हाथ लगेगी।'

दुर्योधन ने सुशर्मा को सेनापति बनाकर मत्स्य-देश पर अकारण आक्रमण करने का आयोजन किया। भीष्म ने व्यर्थ किसी देश पर आक्रमण करने की अनुमति नहीं दी, परन्तु दुर्योधन ने उनकी बात न मानी और सुशर्मा को दल बल सहित प्रस्थान करने की आज्ञा दी।

सुशर्मा ने विराट-नगर पर आक्रमण कर दिया और उनकी गौशाला को अपने अधिकार में ले लिया। गौशाला पर अधिकार करके उसने नगर की ओर प्रस्थान किया।

इस आक्रमण को देखकर महाराज विराट भयभीत हो गये। उन्हें इस आपत्ति-काल में कीचक की याद आई। वह सोचने लगे कि यदि इस समय कीचक होता तो वह नगर की रक्षा कर लेता।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उन्हें व्याकुल देखकर कंक जी बोले, 'महाराज! भयभीत न हों। इस सेना को पराजित करने के लिये अकेला वल्लभ पर्याप्त है। आप निश्चिन्त बैठे तमाशा देखते रहें।'

महाराज विराट ने सेनापति को सेना तैयार करने का आदेश दिया। कंक, वल्लभ, तन्त्रिक और ग्रन्थिक भी चार रथों पर चढ़कर युद्ध के लिये उद्यत हो गये। घमासान युद्ध हुआ। चाँदनी रात में युद्ध हो रहा था।

युद्ध में विराट का सारथी मारा गया और सुशर्मा ने विराट को बाँधकर अपने रथ पर डाल लिया। यह देखकर युधिष्ठिर बोले, 'हमें विराट की रक्षा करनी होगी, भले ही हमारा गुप्त वेष प्रकट हो जाये। तुम सुशर्मा पर आक्रमण करके विराट को बन्धन-मुक्त कराओ। विराट ने हमारी रक्षा की है। हमें भी उसकी रक्षा करनी है।'

युधिष्ठिर की आज्ञा प्राप्त कर भीम ने अपना रथ सुशर्मा की ओर मोड़ दिया और एक ही वार में सुशर्मा के रथ को खण्ड-खण्ड करके विराट को बन्धन-मुक्त करा दिया। उन्होंने सुशर्मा को बाँधकर युधिष्ठिर के चरणों पर ला पटका।

युधिष्ठिर बोले, 'महाराज विराट से अनेकों बार हार कर भी तुमने विराट-राज्य पर आक्रमण किया। जाओ भविष्य में कभी ऐसा करने का साहस न करना।'

महाराज विराट को अपनी इस विजय पर हार्दिक प्रसन्नता हुई, परन्तु ज्यों ही वह दरबार में पहुँचे तो उन्हें पता चला कि कौरव-सेना ने उनपर आक्रमण कर दिया है। यह समाचार सुन कर वह फिर भयभीत हो गये। उनमें इतना साहस नहीं था कि वह कौरव-सेना से युद्ध कर सकें।

युवराज रनिवास में थे। उन्हें कौरवों के आक्रमण की सूचना

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मिली तो वह बोले, 'यदि कोई अच्छा सारथी होता तो मैं आज कौरवों को उनकी दुष्टता का आनन्द चखा देता।'

सौरिन्ध्री यह सुनकर मुस्करा दीं। वह युवराज की बहिन उत्तरा से बोलीं, 'उत्तरा बृहन्नला को सारथी बनाकर युवराज के साथ जाने को कहो। उन्होंने कई बार अर्जुन का रथ हाँका है। वह धनुर्विद्या में भी प्रवीण हैं।

राज्य पर विपत्ति के बादल मँडराते देख कर उत्तरा ने सौरिन्ध्री की बात युवराज से कही तो वह हँसकर बोले, 'यह उपहास का समय नहीं है उत्तरा! बृहन्नला का युद्ध से क्या सम्बन्ध? वह तो बेचारे गायक हैं।'

उत्तरा बोली, 'भय्या! सौरिन्ध्री झूठ नहीं बोल सकती! मैं अभी जाकर बृहन्नला से आपका रथ जोतने के लिये प्रार्थना करती हूँ। वह मेरी बात को कभी नहीं टाल सकते।'

उत्तरा की बात सुनकर, अर्जुन बोले 'चलिये युवराज! मैं उत्तरा का कहना नहीं टाल सकता?'

युवराज ने कहा, 'तुम मुझे एत बार युद्ध-भूमि में पहुँचा दो बृहन्नला! फिर देखना मैं कौरवों को कैसी शिक्षा देता हूँ। अभी इनका वीरों से पाला नहीं पड़ा है। शीघ्रता करो। मेरे भुजदण्ड उनसे युद्ध करने के लिये फड़क रहे हैं। आज तुम भी मेरा जौहर देखना।'

बृहन्नला और सौरिन्ध्री हँसकर बोले, 'युवराज! शीघ्रता करें रथ तैयार है। देर करने की आवश्यकता नहीं है।'

सेवकगण युवराज के अस्त्र-शस्त्र और कवच उठा लाये। बेचारे युवराज को युद्ध के लिये उद्यत होना पड़ा।

बृहन्नला ने कवच पहिना तो रनिवास की सब रानियाँ हँसने लगीं। युवराज का रथ युद्ध-भूमि में पहुंचा और उनकी दृष्टि सामने खड़ी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कौरव-सेना पर गई तो उनके होश उड़ गये। वह भयभीत हो कर वृहन्नला से बोले, 'वृहन्नला ! मुझे वापिस ले चलो। इतनी बड़ी सेना के साथ मै युद्ध नहीं कर सकता। तुम मुझे सकुशल घर पहूँचा दो। मैं तुम्हारा जीवन भर आभारी रहूँगा। मैं तुम्हें मुँह मांगा पुरस्कार दूँगा।'

वृहन्नला लौटने को उद्यत न हुए तो युवराज रथ से उतर कर विराट नगरी की ओर भाग लिये। वृहन्नला ने दौड़कर उन्हें पकड़ा और रथ पर बिठा कर बोले, 'घबराओ नहीं युवराज ! तुम रथ हाँको, मैं युद्ध करूँगा। तुम रथ को पहले उस वट-वृक्ष के पास ले चलो, जो श्मशानभूमि के निकट है।'

वृहन्नला की गम्भीर वाणी सुनकर युवराज को तनिक धैर्य बंधा। रथ को वट-वृक्ष के पास ले जाया गया और वृहन्नला ने वृक्ष पर चढ़ कर उसकी खरकोडल से अस्त्र-शस्त्र और कवच निकाले। आपने अस्त्र-शस्त्रों और कवच से सुसज्जित होकर अर्जुन रथ पर बैठे तो उन्हें अपने अन्दर एक नवीन स्फूर्ति दिखाई दी।

कौरवों की दृष्टि अर्जुन पर गई तो उनके छक्के छूट गये। दुर्योधन प्रसन्न होकर भीष्मपितामह से बोला, 'दादा ! इस आक्रमण ने पाण्डवों को समय से पूर्व ही प्रकट होने पर विवश कर दिया। अब इन्हें दुबारा बारह वर्ष के लिये वन जाना होगा। मेरा विराट नगरी पर आक्रमण करने का मात्र यही अभिप्राय था।'

भीष्म पाण्डवों के वनवास का हिसाब लगाकर बोले, 'आज पांच महीने छै दिन तेरह वर्ष से ऊपर हो चुके हैं दुर्योधन ! अब तुम्हें व्यर्थ यहाँ इन विराट की गायों के पीछे युद्ध नहीं करना चाहिये। अर्जुन के सामने हमारी विजय सम्भव नहीं है।

कर्ण पितामह की बात सुनकर बोला, 'पितामह ! आप हर समय पाण्डवों की ही प्रशंसा करते रहते हैं। आज मेरा भी तो जौहर देखिये। मैंने अर्जुन को मैदान से भगा न दिया तो मेरा नाम कर्ण नहीं।'

कर्ण की गर्वोक्ति कृप, भीष्म और अश्वस्थामा को भली न लगी।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अश्वस्थामा बोला, 'कर्ण ! यह तर्क-वितर्क की बात नहीं है। छल-प्रपंच से तुम लोगों ने पाण्डवों को कष्ट पहुँचा लिया। धर्म-युद्ध में तुम अर्जुन पर विजय प्राप्त नहीं कर सकते। आज अवसर सामने है। देखेंगे तुम्हारे अन्दर कितना पराक्रम है। हम पारिवारिक विग्रह नहीं चाहते, परन्तु हमें दिखता है कि तुम कुरु-कुल का सर्वनाश कराकर ही दम लोगे। दुर्योधन की बुद्धि को तुमने भ्रष्ट कर दिया है।'

कर्ण गर्वपूर्ण स्वर में बोला, 'अश्वस्थामा ! रण-भूमि में आकर तुम्हें ये कायरतापूर्ण उपदेश सुनाना शोभा नहीं देता। क्या तुम चाहते हो कि हम अर्जुन की सूरत देख कर यहाँ से भाग खड़े हों ?'

जब भीष्म ने देखा कि युद्ध करना ही होगा तो उन्होंने दुर्योधन को गउओं के साथ दूर हटा दिया। द्रोणाचार्य को बीच में रखकर अश्वस्थामा को बाँई तथा कृपाचार्य को दाँई ओर का मोर्चा संभालने के लिये कहा। फिर कर्ण से बोले, 'कर्ण ! तुम आगे बढ़कर आक्रमण करो। हम पीछे से भार सम्भालेंगे।'

आज तेरह वर्ष पश्चात् द्रोणाचार्य ने अर्जुन को देखा तो उनके हृदय में अनुराग जाग्रत हो गया। वह बोले, 'महामना भीष्म ! देखो धनुर्धर अर्जुन कैसा प्रचण्ड रूप धारण किये बढ़ता चला आ रहा है।'

उसी समय अर्जुन के दो तीर आये और द्रोणाचार्य के दोनों पैरों के पास आकर गिरे। उनका हृदय गद्गद् हो उठा। तभी दो बाण द्रोणाचार्य के कानों के पास से सनसनाते हुए निकल गये। द्रोण बोले, 'अर्जुन के दो बाण जो मेरे पैरों के पास गिरे हैं, उनके द्वारा अर्जुन ने मेरा अभिवादन किया है और जो दो तीर मेरे कानों के पास से गये हैं उनके द्वारा अर्जुन ने कुशल-क्षेम पूछा है।'

भीष्म बोले, 'आचार्य द्रोण ! आज अर्जुन को सामने देखकर हृदय गर्व से फूल उठा है।'

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अर्जुन ने दूर से देखा कि सेना में दुर्योधन नहीं है। उन्होंने दूर दृष्टि फैलाई तो उन्हें धूल उड़ती दिखाई दी। वह समझ गये कि दुर्योधन गऊओं को लिये सेना के साथ चला जा रहा है। वह युवराज से बोले, 'रथ उस ओर दौड़ा कर ले चलो। हमारा उद्देश्य सेना का वध करना नहीं, अपनी गऊओं की रक्षा करना है।'

अर्जुन का रथ तीव्र गति से उसी ओर को बढ़ चला, जिस ओर दुर्योधन गऊओं को ले जा रहा था। अर्जुन ने दुर्योधन पर तीव्र वाण वर्षा करके उससे सब गऊओं को छीन लिया और ग्वालों से बोले, 'तुम लोग अपनी गऊओं को नगर की ओर ले जाओ।'

अर्जुन को दुर्योधन की ओर बढ़ते देखकर कर्ण तीव्र गति से बीच में आ गया। अर्जुन ने दुर्योधन की दिशा में बढ़ना छोड़ कर पहिले कर्ण से ही मुठभेड़ की। अर्जुन ने एक ही वाण में कर्ण को रथ से नीचे गरा दिया और उसके भाई अधिरथ के पुत्र को यमपुरी पहुँचा दिया। उसकी मृत्यु से उत्तेजित होकर कर्ण ने फिर भीषण युद्ध किया, परन्तु अर्जुन के वाणों ने कर्ण का वदन छलनी कर दिया। वह अपने प्राण-लेकर वहाँ से भाग खड़ा हुआ। अर्जुन के सामने उसका ठहरना सम्भव न रहा।

कर्ण को भागते देखकर दुर्योधन अर्जुन पर टूट पड़ा। अर्जुन ने उसे भी घायल कर दिया और फिर कृपाचार्य पर आक्रमण किया। अर्जुन के तीरों से बिंधकर कृपाचार्य के रथ के घोड़े रथ को लेकर भाग खड़े हुए और कृपाचार्य भूमि पर गिर पड़े।

अर्जुन ने फिर अपना रथ द्रोणाचार्य की ओर मोड़ा। गुरु और शिष्य का घमासान युद्ध हुआ। अर्जुन ने द्रोणाचार्य के रथ को वाणों की वर्षा करके चारों ओर से ढक दिया। यह देखकर अश्वस्थामा अर्जुन पर टूट पड़ा, परन्तु अर्जुन के एक ही तीर ने अश्वस्थामा के

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सब अस्त्र-शस्त्रों को विफल कर दिया।

कर्ण एक बार फिर साहस करके अर्जुन के सामने आया। अर्जुन ललकार कर बोले, 'नीच कर्ण ! तू एक बार पीठ दिखाकर फिर मेरे सामने आया है। तूने ही हमारे परिवार में पारस्परिक फूट का बीज बोया हुआ है। आज तुझे तेरे कुकर्मों का फल चखाकर दम लूंगा।'

कर्ण उत्तेजित होकर गरजता हुआ बोला, 'व्यर्थ प्रलाप बन्द कर अर्जुन ! मेरे सामने आ। आज तेरा छठी तक का खाया-पीया न निकाल लिया तो मेरा नाम कर्ण नहीं।'

दोनों में घमासान युद्ध आरम्भ हो गया। अर्जुन के बाणों ने कर्ण के अस्त्र-शस्त्रों को काटकर उसके रथ को नष्ट कर, उसे भूमि पर गिरा दिया। कर्ण अपने प्राणों की रक्षा के लिये फिर मैदान से भाग खड़ा हुआ। इस बार उसने फिर पीछे लौटकर नहीं देखा।

जब कौरव-पक्ष के सब योद्धा भाग गये तो भीष्म ने अर्जुन से मोर्चा लिया। पितामह अर्जुन के तीव्र बाणों की वर्षा के सामने न ठहर सके। वह मूर्च्छित होकर रथ पर गिर गये।

दादा भीष्म के मूर्च्छित होकर गिरने पर कौरवों ने धर्माधर्म का विचार त्यागा कर एक साथ मिलकर अर्जुन पर आक्रमण किया। यह देख कर अर्जुन ने एक ऐसा बाण चलाया, जिससे कौरवों की सारी सेना मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़ी। उनके पक्ष के सब सैनिक अचेत हो गये।

बहुत देर पश्चात् जब दुर्योधन को चेतना लौटी तो वह बोला, 'दौड़ो दौड़ो ! अर्जुन सब गऊओं को ले गया।'

भीष्म हँसकर बोले, 'दुर्योधन ! अब क्यों व्यर्थ प्रलाप कर रहा है। यही खैर समझ कि वह हमें जीवित छोड़ गया। वह चाहता तो हम सबके सिर उतार कर ले जा सकता था। अर्जुन पर विजय प्राप्त करना तुम्हारे लिये असम्भव है। वह धर्म-युद्ध करने वाला वीर है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इसीलिये उसने मूर्च्छित पड़े सैनिकों पर प्रहार नहीं किया। अपनी बची-कुची इज्जत को लेकर चुपचाप हस्तिनापुर लौट चलो।'

विवश होकर दुर्योधन को पितामह की बात माननी पड़ी। कौरव-सेना खाली हाथ हस्तिनापुर लौट गई।

अर्जुन मार्ग में युवराज से बोले, 'युवराज ! तुम नगर में मेरा किसी को परिचय न देना। तुम कहना कि युद्ध में तुम्हारे ही पराक्रम से विजय प्राप्त हुई है। तुमने ही कौरवों को हराकर भगा दिया है और अपनी गऊएँ छीन ली हैं।'

युवराज बोला, 'महात्मन् ! यह कार्य मेरे लिये नितान्त असम्भव है। आपका श्रेय मैं अपने ऊपर कदापि नहीं ले सकता।'

विराट नगर में युवराज उत्तर की विजय का समाचार फैल गया। महाराज विराट यह समाचार प्राप्त कर गद्-गद् हो गये। उनके आनन्द का पारावार न रहा।

विराट भरी सभा में जब अपने पुत्र की प्रशंसा करने लगे तो कंक जी चुप न रह सके। वह बोले, 'महाराज ! वृहन्नला जिसका सारथी हो, वह कभी पराजित नहीं हो सकता।'

विराट को कंक जी की यह बात अच्छी न लगी। वह फिर अपने ही पुत्र की प्रशंसा करने लगे।

कंक जी फिर बोले, 'महाराज ! वृहन्नला उत्तर के साथ न होता तो उत्तर का समर-भूमि से सकुशल लौटना भी सम्भव नहीं था।'

यह सुनकर महाराज विराट क्रोधित हो गये। वह क्रुद्ध हो कर बोले, 'कंक जी ! आप हमारे नौकर होकर हमारे पुत्र की प्रशंसा तो करते नहीं, वृहन्नला की प्रशंसा कर रहे हैं।' यह कहकर उन्होंने पासा उठाहर कंक जी के मुंह पर दे मारा। उसकी चोट से कंक जी की नाक से रक्त बह चला।

उसी समय युवराज उत्तर राज-सभा में आ गये। उन्होंने कंक जी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

की नाक से रक्त बहता देखकर अपने पिता जी से पूछा, 'पिताजी ! कंक जी की नाक से रक्त कैसे बह रहा है ?'

महाराज विराट बोले, 'बेटा ! मैं तुम्हारी विजय की प्रशंसा कर रहा था। कंक जी बोले कि यदि वृहन्नला तुम्हारे साथ न होता तो तुम्हारा युद्ध-भूमि से लौटना भी असम्भव था। यह सुनकर मुझे क्रोध आ गया और मैंने पास उठाकर इनके मुँह पर दे मारा।'

यह सुनकर युवराज उत्तर को हार्दिक खेद हुआ। वह अपने पिता, महाराज विराट से बोला, 'महाराज ! आपने बहुत बड़ी भूल की। जिन्हें आप कंक जी नामक दीन ब्राह्मण समझ रहे हैं यह धर्मराज युधिष्ठिर हैं, जिन्हें आप वृहन्नला समझ रहे हैं, वह धनुर्धर अर्जुन हैं, जिन्हें आप वल्लभ समझ रहे हैं वह महाबली भीम हैं, जिन्हें आप सौरिन्ध्री समझ रहे हैं वह द्रुपद नगर की राजकुमारी पांचाली हैं। इसी प्रकार ग्रन्थिक नकुल तथा तंत्रीपाल सहदेव हैं। हमारा सौभाग्य है कि इन महानुभावों ने विराट-नगरी में आकर हमारी रक्षा की।'

यह सुनकर महाराज विराट चकित रह गये। उन्हें अपने कृत्य पर हार्दिक पश्चाताप हुआ। उनके नेत्र डबडबा आये। वह महाराज युधिष्ठिर से लिपट कर रो पड़े और गद्-गद् स्वर में बोले, 'धर्मराज ! गत एक वर्ष में, अनजाने में, हमसे जो भूलें हुई हों उन्हें क्षमा कर दीजिये।'

महाराज युधिष्ठिर बोले, 'महाराज विराट ! आपने हमें अपने यहाँ आश्रय देकर हमारे ऊपर महान् उपकार किया है। यदि हमें आपका आश्रय न मिलता तो हम लोगों के लिये अपना गुप्त वास का एक वर्ष निकालना कठिन हो जाता। आपकी कृपा से यह वर्ष सकुशल बीत गया। अब हम अधिकार और न्यायपूर्वक कौरवों से अपना आधा राज्य वापिस ले सकेंगे। यदि वे देने में आनाकानी करेंगे तो हम धर्म युद्ध की घोषणा करदें।'

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

महाराज विराट अपना राजसिंहासन छोड़ कर नीचे खड़े हो गये और धर्मराज युधिष्ठिर से करबद्ध प्रार्थना की कि वह उनके सिंहासन पर विराज कर उसे पवित्र करें।

पाण्डवों के विराट नगरी में इस प्रकार रहने के रहस्य का उद्घाटन होने पर वहाँ आनन्द की लहर दौड़ गई। महाराज विराट ने अपने नगर में एक विराट उत्सव का आयोजन किया और पाण्डवों का उसमें राज्योचित सत्कार किया।

महाराज विराट की पत्नी ने पांचाली की कौली भर कर अपने भाई कीचक तथा उसके अन्य सम्बन्धियों के नीच कृत्य की क्षमा याचना की।

महाराज विराट बोले, 'धर्मराज! यों तो महाराज पाण्डु की विराट-राज्य पर पहिले से ही महान् अनुकम्पा रही है, परन्तु अब मैं चाहता हूँ कि हमारा यह सम्बन्ध और भी दृढ़ हो जाये। क्या आप इसके लिये कोई सुझाव प्रस्तुत करने की कृपा करेंगे?'

महाराज युधिष्ठिर बोले, 'आपकी आकांक्षा को फलीभूत करने के लिये मेरा प्रस्ताव है कि आप अपनी पुत्री उत्तरा का विवाह हमारे छोटे भाई अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु के साथ कर दें। यदि इस में आपको कोई आपत्ति न हो तो हम श्री कृष्ण के पास यह शुभ समाचार भेज दें। अभिमन्यु और उसकी माता सुभद्रा आजकल द्वारिकापुरी में रह रहे हैं।'

धर्मराज युधिष्ठिर की बात सुनकर महाराज विराट को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। वह सहर्ष बोले, 'धर्मराज! आपने मेरे मुँह की बात मुझसे छीन ली। मैं आपके सामने ठीक यही प्रस्ताव रखना चाहता था।

अर्जुन-सुपुत्र को अपने जामाता के रूप में ग्रहण कर मेरा जीवन सफल होगा।'

महाराज विराट की स्वीकृति प्राप्त कर युधिष्ठिर ने यह शुभ

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

चार द्वारिकापुरी में श्रीकृष्ण के पास भेज दिया और प्रार्थना की कि वह और बलरामजी, अभिमन्यु की बारात लेकर, विराट नगरी में पधारें।

पाण्डवों ने अभिमन्यु के विवाह का शुभ समाचार अपने सभी मित्रों को भेजा और उनसे विवाह में सम्मिलित होने की प्रार्थना की। इस आयोजन के फलस्वरूप उन्हें अपने मित्रों तथा सम्बन्धियों से भेंट करने का अवसर प्राप्त हुआ।

अभिमन्यु के विवाह का आयोजन विराट नगरी में बड़ी धूमधाम के साथ हुआ। पाण्डवों के सभी सम्बन्धी तथा मित्र विराट नगरी में पधारे। श्रीकृष्ण और बलराम बारात का आयोजन कर निश्चित समय पर वहाँ आ गये। काशिराज तथा शिवराज भी अपने इष्ट-मित्रों के साथ विवाह में सम्मिलित हुए। पांचाली के पिता द्रुपद, धृष्टद्युम्न और शिखण्डी पांचाल देश से पधारे। विराटनगरी की शोभा चौगुनी हो गई। मंगल-गीतों से वहाँ का वातावरण भर गया। नगरी में उल्लास और आनन्द की सरिता बह चली।

यथा समय वैदिक रीति से विवाह सम्पन्न हुआ। उत्तरा ने अभिमन्यु के गले में जयमाला डाली और बन्दी जनों ने विरुदावलियाँ गाकर चारों दिशाएँ गुँजा दीं।

पाण्डवों को महाराज विराट ने अमूल्य रत्न, धन और ग्राम देकर उनका सत्कार किया। कर्मचारियों को मुँह मागें पुरस्कार दिये और ब्राह्मणों को दान देकर विदा किया।

पाण्डवों का तेरह वर्ष के वनवास का कष्ट इस शुभ विवाह ने समाप्त कर दिया। पाण्डवों के जीवन में नवीन उल्लास का उदय हुआ। उनके जीवन में एक नई ज्योति जगमगाई। अभिमन्यु के साथ नई पीढ़ी का जीवन कार्य-क्षेत्र में अवतीर्ण हुआ।

पाण्डवों के इस आयोजन में उनके सभी हितैषियों ने भाग लिया

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

और उन्हें परस्पर मिलकर अपने भावी कार्य-क्रम पर विचार करने का अवसर मिला।

सभा का संचालन श्री कृष्ण ने किया। सब के एकत्रित होने पर वह सभा के मध्य खड़े होकर गम्भीर वाणी में बोले, 'उपस्थित महानुभावो! आप सब को दुर्योधन द्वारा छल से पाण्डवों का राज हड़पने का समाचार विदित है। उसे इस समय दुहराना व्यर्थ है। आज उस अन्यायपूर्ण घटना को हुए तेरह वर्ष और सात माह व्यतीत हो चुके। पाण्डवों ने अपनी वनवास की अवधि विधिवत् समाप्त कर ली है। अब कौरवों को पाण्डवों का आधा राज्य लौटा देना चाहिये। हमारे लिये कौरव और पाण्डव दोनों समान हैं। हम नहीं चाहते कि पारिवारिक कलह हो और इस कुल की मर्यादा को ठेस लगे।

द्रोण, भीष्म और धृतराष्ट्र की न्यायप्रियता में हमें कोई संदेह नहीं है, परन्तु दुर्योधन अन्याय के पथ पर चल रहा है। वह पाण्डवों का राज्य वापिस करने को उद्यत नहीं है। कर्ण दुर्योधन को सत्-मार्ग पर नहीं आने दे रहा।

हम रक्तपात नहीं चाहते, परन्तु यदि दुर्योधन सत्मार्ग पर न आया तो रक्तपात अवश्य होगा। उसे कोई नहीं रोक सकता। अधर्म को सहन नहीं किया जायेगा। पाण्डव अधर्म और अन्याय के सामने झुकने वाले नहीं हैं।

हमें हस्तिनापुर दूत भेज कर ज्ञात करना होगा कि दुर्योधन न्याय से पाण्डवों का राज्य वापिस लौटाना चाहता है या नहीं। इस पर मैं आप सब महानुभावों का निश्चित मत जानना चाहता हूँ।'

श्री कृष्ण के पश्चात् बलरामजी बोले, 'श्री कृष्ण का मन्तव्य आप सब पर प्रकट हुआ। राष्ट्र और कुरु-कुल के हित में यही है कि कौरव पाण्डवों का आधा राज्य इन्हें लौटा दें। इस से पारस्परिक दुर्भावना का अन्त हो जायेगा और व्यर्थ रक्तपात नहीं होगा। हस्तिनापुर दूत भेजने के विचार से मैं पूरी तरह सहमत हूँ। मैं चाहता हूँ कि यहाँ

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

से जाने वाला दूत उनकी सभा में उस समय प्रस्ताव प्रस्तुत करे, जब भीष्म, कृप, द्रोण विदुर इत्यदि सब उपस्थित हों। मुझे विश्वास है कि वे सद्बुद्धि से काम लेंगे।'

सात्यिकी बोला, 'हमारे दूत को उन्हें भली प्रकार जता देना चाहिये कि अब अधर्म की नौका में बैठकर दुर्योधन सैर नहीं कर सकेगा। यदि उसने पाण्डवों का आधा राज्य वापिस नहीं किया तो निश्चित रूप से युद्ध होगा।'

महाराज द्रुपद ने सात्यिकी के कथन का जोरदार शब्दों में समर्थन किया। वह बोले, 'अब नम्रता का समय नहीं रह गया है। इस समय हामरी नम्रता का अर्थ कौरवों के सामने हमारी कायरता होगी। मेरे विचार से हमें अपने मित्रों के पास निमन्त्रण भेज कर सेना एकत्रित करने का कार्य आरम्भ कर देना चाहिये। इस कार्य में तनिक भी विलम्ब करने की आवश्यकता नहीं है। युद्ध अवश्य होगा। इसे कोई नहीं टाल सकता। दुर्योधन बल-प्रयोग के बिना पाण्डवों का आधा राज्य नहीं लौटायेगा। हमें युद्ध और सन्धि दोनों की तय्यारी साथ-साथ करनी चाहिये। दूत भेजने में हमें कोई आपति नहीं है, परन्तु युद्ध की तय्यारी को नहीं रोका जा सकता। पुरोहित जी को हस्तिनापुर भेजा जाये। वह नीतिज्ञ हैं और दौत्य-कार्य के सर्वथा उपतुक्त हैं।'

अन्त में श्रीकृष्ण बोले, 'मैं महाराज द्रुपद के मत का समर्थन करता हूँ। हमें सेना एकत्रित करने में विलम्ब नहीं करना चाहिये। मैं महाराज द्रुपद से आग्रह करूंगा कि वह मित्रों को निमंत्रण भेजने का कार्य-भार संभालें और इस कार्य में तनिक भी विलम्ब न करें। हमें दूत भी तुरन्त भेज देना चाहिये। इस कार्य में भी विलम्ब की आवश्यकता नहीं है। यदि महाराज धृतराष्ट्र दुर्योधन को सुमार्ग पर ला सके और कुरु-कुल के कर्णधारों में सद्मति जागृत हो गई तो ठीक है

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अन्यथा युद्ध के अतिरिक्त अन्य कोई चारा नहीं रह जायेगा।'

सभा में उपस्थित महानुभावों ने एक स्वर से श्रीकृष्ण के मत से सहमति प्रकट की और महाराज द्रुपद के पुरोहित जी ने हस्तिनापुर के लिये प्रस्थान किया। महाराज द्रुपद ने अपने पुरोहित जी को हस्तिनापुर भेजकर पाण्डवों के अन्य मित्र राजाओं के पास निमन्त्रण-पत्र भेजने की व्यवस्था की।

पाण्डवों के दूत महाराज द्रुपद के पुरोहित, हस्तिनापुर पहुँचे तो वहाँ संधि-सभा का आयोजन किया गया। कौरवों के सभी विशिष्ठ महानुभावों ने सभा में भाग लिया। दूत ने सन्धि-पत्र सभा के समक्ष रखा तो दादा भीष्म बोले, 'पाण्डव वनवास के तेरह वर्ष व्यतीत कर अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण कर चुके हैं। अब उन्होने अपना आधा राज्य-वापिस माँगा है। पाण्डवों की यह माँग पूर्णतया उचित है। उनका आधा राज्य उन्हें लौटा कर हमें कुरु-कुल की मर्यादा की रक्षा करनी चाहिये और कुल को कलह से बचाना चाहिये। इस कलह के फलस्वरूप जो रक्तपात होने की सम्भावना है, उसकी स्थिति हमें पैदा नहीं करनी चाहिये।'

भीष्म की गम्भीर वाणी सुनकर पाण्डवों के दूत बोले, 'महामना भीष्म ने न्यायसंगत बात कही। धर्मराज युधिष्ठिर व्यर्थ युद्ध करना नहीं चाहते। उनके भाई भी उनके मत से सहमत हैं। वह प्रेम-भाव से इस समस्या को सुलझाना चाहते हैं।'

कर्ण बोला, 'दादा भीष्म पाण्डवों से आतंकित हैं। यह जब देखो तब उन्हीं की वीरता का बखान करते रहते हैं। प्रतिज्ञानुसार उन्हें बारह वर्ष के लिये फिर वनवास को जाना चाहिये, क्यों कि अज्ञातवास की अवधि पूर्ण होने से पूर्व अर्जुन को पहिचान लिया गया था। युधिष्ठिर यदि वास्तव में धर्मराज हैं तो उन्हें अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करनी चाहिये। बारह वर्ष पश्चात् लौटने पर महाराज दुर्योधन निश्चय ही

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अपनी शरण में स्थान देंगे। उस समय मैं भी महाराज दुर्योधन से उन्हें शरण में लेने के लिये प्रार्थना करूँगा।'

कर्ण की बात सुनकर भीष्म सरोष बोले, 'कर्ण ! तुम कुरु-कुल के सर्वनाश का नाटक देखने के लिये कटिबद्ध हो। उस दिन विराट-नगरी में अर्जुन के सामने दो बार पीठ दिखाकर भागते तुम्हें लज्जा नहीं आई। तुम जैसे परामर्शदाताओं ने ही दुर्योधन की मति भ्रष्ट कर दी है। तुम कुरु-कुल के विनाश का काण्ड रच रहे हो।'

कृप, विदुर और द्रोण ने भी भीष्म के मत का समर्थन किया। धृतराष्ट्र ने सभी के मत एक ओर देखकर उस समय बात को टालना उचित समझा। उन्हें ज्ञात था कि दुर्योधन पाण्डवों को आधा राज्य लौटाने के पक्ष में नहीं है। वह बोले, 'दादा भीष्म के आदेशानुसार हमें संजय को संधि-सन्देश लेकर पाण्डवों के पास भेजना चाहियें। आशा है संजय समस्या को सुलझा कर लौटेगा।'

संजय ने विराट-नगर में जाकर युधिष्ठिर से भेंट की, परन्तु बातें कुछ ऐसी कीं कि कोई परिणाम न निकल पाया। उसकी सब बातें निरर्थक सिद्ध हुईं, क्यों कि उनमें कोई तत्वपूर्ण बात नहीं थी।

धर्मराज युधिष्ठिर यहाँ तक झुके कि उन्होंने केवल पाँच गाँवों के मिल जाने तक पर सन्तोष व्यक्त किया। वह संजय से बोले, 'हम कुरु-कुल का विनाश नहीं चाहते। हम राज्यलोलुप नहीं हैं। अपने निर्वाह के लिये हमें यदि केवल पाँच गाँव मिल जायें तो हम उन्हीं को लेकर सन्तोष कर लेंगे।'

पाण्डवों का प्रस्ताव लेकर संजय हस्तिनापुर पहुँचा तो उसे सुनकर दुर्योधन आगबगूला हो गया। वह क्रोधपूर्ण वाणी में बोला, 'पाँच गाँव तो क्या मैं बिना युद्ध के पाण्डवों को सूई की नोक के बराबर भी भूमि देने को उद्यत नहीं हूँ। मैं उन्हें कुरु-राज्य की तनिक सी भी भूमि

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

नहीं दूंगा।'

धृतराष्ट्र दुर्योधन के सामने एक शब्द न बोल सके। दादा भीष्म, वही दादा भीष्म, जिन्होंने पांचाली-स्वयंम्बर के पश्चात् कौरवों को पाण्डवों के लिये आधा राज्य छोड़ने पर विवश कर दिया था, अब अपनी आँखों के सामने यह अन्याय होते देख कर मौन रह गये। पितामह अब नाम मात्र के पितामह रह गये थे। वह द्यूत-सभा में द्रोपदी का अपमान अपनी आखों से देख कर बड़े-बड़े आँसू गिराने के अतिरिक्त कुछ न कर सके। राजदण्ड धृतराष्ट्र के हाथों में था और वह दुर्योधन के हाथों की कठपुतली बन चुके थे। दुर्योधन के संकेत पर उन्हें नाचना होता था।

सन्धि-प्रस्ताव के विफल होने पर दोनों पक्षों ने अपनी सैन्यशक्ति का संगठन करना आरम्भ कर दिया। पाण्डवों के पक्ष में सात अक्षौहिणी सेना एकत्रित हुई और कौरवों के पक्ष में ग्यारह अक्षौहिणी। कुल मिलाकर अठारह अक्षौहिणी सेना युद्ध के मैदान में उतरी।

धर्मराज युधिष्ठिर ने युद्ध को टालने के अन्तिम प्रयास स्वरूप श्रीकृष्ण को एक बार फिर हस्तिनापुर भेजा। उनकी इच्छा युद्ध करने की नहीं थी।

श्रीकृष्ण महात्मा विदुर के यहाँ जाकर ठहरे। दुर्योधन ने उनके सम्मान में एक छल-भोज आयोजित किया और चाहा कि उन्हें बन्दी बना ले, परन्तु श्रीकृष्ण न तो शल्य थे जो कौरवों के सत्कार-चमत्कार में फँस जाते और न इतने मूर्ख थे कि उन्हें बन्दी बना लिया जाता।

वह कौरवों की भरी सभा में खड़े होकर बोले, 'दम्भी, लोभी और मूर्ख दुर्योधन! मैं यहाँ कुरु-कुल को विनाश से बचाने के लिये आया था, परन्तु तेरा इतना दुःसाहस कि तूने मुझे बन्दी बनाने का प्रयास किया। तेरा और तेरे-कुल का विनाश तुम्हारे शीर्ष पर मँडरा रहा है। पाण्डव-पुत्र भीम ने तेरी वह जंघा, जिस पर तूने आज से तेरह वर्ष

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पूर्व पांचाली को बिठाने के लिये कहा था, तोड़ कर तेरा रक्तपात करने की प्रतिज्ञा न की होती तो आज तेरे विनाश का दिन आ गया था। अच्छा होता, यदि भीम ने वह व्रत न लिया होता और आज तेरे विनाश से कुरु-कुल नष्ट होने से बच जाता, परन्तु भवितव्यता को कोई नहीं टाल सकता। तुम्हें विनाश के गर्त में गिरना है तो गिरो। तुम्हारा अन्त समय निकट आ गया है। अब विधाता भी तुम्हारी रक्षा नहीं कर सकते।'

कृष्ण की गम्भीर वाणी सुनकर सभा में सन्नाटा छा गया। भीष्म, कृप और द्रोण इत्यादि कृष्ण के कोप को देख कर भयभीत हो गये उनके बदन थर-थर काँप रहे थे।

कृष्ण खड़े होकर बोले, 'मैं इन अधर्मियों की सभा में अब एक क्षण भी ठहराना अपना अपमान समझता हूँ। कौरव-कुल आज से अपने विनाश की घड़ियाँ गिननी आरम्भ करे। आज से सातवें दिन पाण्डवों की सेना कुरुक्षेत्र के मैदान में आ जायेगी।' यह कह कर श्रीकृष्ण सभा-भवन से उठ कर चल दिये। किसी ने श्रीकृष्ण के सामने एक शब्द भी उच्चारण करने का साहस न किया।

श्रीकृष्ण महात्मा विदुर के घर पहुँचे और उन्हें यह समाचार देकर प्रस्थान किया। चलते समय माता कुन्ती को श्रीकृष्ण ने सादर प्रणाम करके कहा, 'माता कुन्ती! धर्मराज युधिष्ठिर ने युद्ध को टालने का भरसक प्रयत्न किया, परन्तु कौरवों के शीर्ष पर मृत्यु मंडरा रही है। काल इन्हें ग्रसने के लिये अट्टहास कर रहा है। मुझे खेद है कि अब इन्हें कोई नहीं बचा सकता।'

कृष्ण की गम्भीर वाणी सुनकर माता कुन्ती के नेत्रों से अश्रु-जल बरस पड़ा। वह कातर हो गईं। इस दुर्भाग्यपूर्ण समाचार को प्राप्त कर उनका हृदय विदीर्ण हो गया।

महाभारत का भीषण संग्राम टाले न टल सका। युद्ध का श्रीगणेश

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हो गया। कुरुक्षेत्र के मैदान में कौरव-पाण्डवों की सेनाएँ आमने-सामने आकर डट गईं। भारत के प्राय: सभी राजाओं ने इस महायुद्ध में भाग लिया। देश के वे सभी युवक जिन में अपना जौहर दिखाने की ठनक थी, किसी एक पक्ष में आकर सम्मिलित हो गये। भारतीय राजे पारस्परिक वैमनस्य निकालने के लिये अपने शत्रुओं के विपक्षी दल में जा मिले।

कौरव-सेना के सेनापति दादा भीष्म बने और पाण्डव-सेना के महाबली भीम। दोनों सेनापतियों ने अपनी-अपनी मोर्चेबन्दी की और सैनिक व्यूह-रचना आरम्भ कर दी।

दादा भीष्म ने घोषणा की, 'जब तक युद्ध मेरे सेनापतित्व में होगा, धर्म-युद्ध होगा। मेरे सेनापतित्व-काल में यदि किसी ने अधर्म-युद्ध किया तो मैं युद्ध से प्रथक हो जाऊँगा। मैं अधर्भ-युद्ध को एक क्षण के लिये भी सहन नहीं करूँगा।'

युद्ध की पूर्ण तय्यारी के पश्चात् वीरों ने शंखनाद किया। मारू बाजे की ध्वनि द्विगुणित हो उठी। रणभेरी बजी और रण-भूमि का वायुमण्डल उससे भर गया।

अर्जुन कृष्ण से बोले, 'कृष्ण! मेरा रथ ऐसे स्थान पर ले चलो जहाँ से मैं पक्ष और विपक्ष, दोनों की सेनाओं और उनके वीरों को देख सकूँ।'

श्रीकृष्ण ने अर्जुन का रथ घुमाकर एक ऊँचे टीले पर ले जाकर खड़ा कर दिया। वहाँ से दोनों पक्ष स्पष्ट दिखाई देते थे। श्रीकृष्ण कौरवों की ओर संकेत करके बोले, 'अर्जुन! तुम्हें इन सब को यमपुरी पहुँचाना है। इस ग्यारह अक्षौहिणी दल में से एक भी सैनिक बचने न पाये, यह ध्यान रखना, वरना अधर्म की कालिमा का वही धब्बा भारत माता के मस्तक का कलंक बना रहेगा। उसे मिटाने के लिये मुझे फिर महाभारत की रचना करनी होगी।'

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अर्जुन के हृदय का उत्साह सामने खड़े अपने पारिवारिक जनों को देखकर क्षीण हो गया। उनके नेत्रों से अश्रु-धारा बह चली। वह विह्वल हो गया।

कृष्ण मुस्काराकर बोले, 'अर्जुन! कौरवों की विशाल सेना को देखकर भयभीत हो गये? क्या तुम्हें अपने बाहुबल पर विश्वास नहीं रहा?'

अर्जुन बोले, 'कृष्ण! आप रथ को लौटा लें। मैं युद्ध नहीं करूँगा। भय मैं काल से भी नहीं खाता, परन्तु ये लोग, जो मेरे सामने खड़े हैं, इन्हें मार कर राज्य-श्री का उपभोग करना व्यर्थ होगा। राज्य जैसी तुच्छ वस्तु के लिये दादा भीष्म का संहार करूँ, गुरुदेव द्रोण के प्राण लूँ, मामा शल्य पर प्रहार करूं, यह मुझसे कदापि न होगा। आप रथ वापिस ले चलें। मुझे ऐसा राज्य नहीं चाहिये।'

अर्जुन की बात सुनकर कृष्ण गम्भीर हो गये। वह बोले, 'अर्जुन! आत्मा अमर है। तुम केवल निमित्त मात्र हो। कर्त्ता और है। ये जो सम्बन्ध तुम इन सब से जोड़ रहे हो, कृत्रिम हैं, असत्य हैं। केवल धर्म सत्य है। तुम यह युद्ध राज्य-श्री प्राप्त करने के लिये नहीं, धर्म की रक्षा के लिये कर रहे हो। आत्मा अमर है। वह कभी नहीं मरती। उसे कोई नहीं मार सकता।'

श्रीकृष्ण ने अर्जुन को गीता का महान् संदेश दिया। कर्म-योग की व्याख्या की। उसे सुनकर अर्जुन ने नीचे रखा हुआ अपना गाण्डीव उठाया और उसकी प्रत्यंचा को पाँच बार टंकार कर कहा, 'कृष्ण! आज इस अवसर पर आप न होते तो क्या आपकी सेना अर्जुन को अर्जुन बना पाती? रथ आगे बढ़ाइये। आपने मेरी आत्मा का अन्धकार दूर कर दिया। मैं युद्ध करूँगा और अधर्म का विनाश करके श्वाँस लूगा।'

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उसी समय धर्मराज युधिष्ठिर अपने रथ से उतर कर खाली हाथ कौरव-पक्ष की ओर बढ़ चले। उन्हें देख कौरव-पक्ष ने अनुमान लगाया कि युधिष्ठिर उनकी शक्ति से भयभीत होकर क्षमा-याचना करने के लिये आ रहे हैं। उनके पक्ष ने उन्हे देखकर हर्ष-ध्वनि की।

धर्मराज युधिष्ठिर सीधे गुरुजन भीष्म, कृप, द्रोण और शल्य के पास पहुँचे और उनके चरण छू कर उनका आशीर्वाद ग्रहण किया। गुरुजनों का आशीर्वाद प्राप्त कर युधिष्ठिर अपने रथ पर जाकर बैठ गये। रणभेरी बज उठी और युद्ध आरम्भ हो गया।

अर्जुन ने वाणों की वर्षा कर गुरुजनों को प्रणाम किया। अपने चरणों के पास गिरे अर्जुन के वाणों को देखकर गुरुजनों की आत्मा प्रसन्न हो गई। उनकी देह कौरवों के पक्ष में थी, परन्तु आत्मा पाण्डवों के साथ।

घमासान युद्ध आरम्भ हुआ। लोहे-से-लोहा बजने लगा। शवों पर शव पड़ने लगे। रुधिर की धारा बह चली। महाबली भीम जिधर निकल जाते थे मैदान साफ होता चला जाता था। भीष्म और अर्जुन का जम कर युद्ध हो रहा था। दोनों महारथी आमने सामने डटे हुए थे।

अर्जुन युद्ध करने दूसरी दिशा में मुड़े तो भीष्म ने पाण्डव-सेना का बुरी तरह संहार करना आरम्भ कर दिया। यह देखकर अभिमन्यु बिजली की तरह दादा भीष्म पर टूट पड़ा और देखते-ही देखते उसने भीष्म के दस अंग-रक्षकों का संहार कर दिया। अभिमन्यु ने एक ही वाण से दादा भीष्म के रथ की उस ध्वजा को, जिसे गिराने का साहस आज तक कोई नहीं कर सका था, काट कर भूमि पर गिरा दिया।

अभिमन्यु के पराक्रम को देखकर महाबली भीम की छाती फूल गई। उन्होंने 'वाह-वाह' की ध्वनि के साथ उत्साहपूर्वक शंख-नाद किया। महात्मा भीष्म भी अभि मन्यु के रण-कौशल पर मुग्ध हो गये।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उन्होंने मुक्त-कंठ से कहा, 'शाबाश ! अभिमन्यु शाबाश ! तुम सचमुच अर्जुन के साक्षात् अवतार हो।' परन्तु साथ ही उन्होंने लज्जा का भी अनुभव किया। उन्होंने अभिमन्यु पर तीरों की भयंकर वर्षा की। यह देखकर भीम, विराट, धृष्टद्युम्न और सात्यिकि अभिमन्यु की रक्षा के लिये आ गये। भीष्म ने क्रोधित होकर भीम के रथ की ध्वजा को काट गिराया। यह देखकर वह क्रोध से उन्मत्त हो गये और गदा लेकर भीष्म की ओर दौड़ पड़े। भीम ने एक ही वार से भीष्म के रथ को चकनाचूर कर दिया। दूसरी ओर युवराज उत्तर के हाथी ने शल्य के घोड़ों का विध्वंस कर दिया। शल्य ने कृतवर्मा के रथ पर चढ़कर अपने प्राणों की रक्षा की।

प्रथम दिन घमासान युद्ध हुआ। सूर्य के अस्त होते ही शांति-बिगुल बज गया। दोनों ओर की सेनाएँ अपने-अपने शिविरों को चली गईं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

६

रात्रि को दोनों ओर शिविरों में दूसरे दिन के युद्ध का कार्यक्रम निश्चित किया जाने लगा। श्रीकृष्ण ने दूसरे दिन के प्रधान सेनापति पद् के लिये महारथी धृष्टद्युम्न का नाम प्रस्तुत किया। धर्मराज युधिष्ठिर ने उसका अनुमोदन किया। धृष्टद्युम्न दूसरे दिन के प्रधान सेनापति घोषित किये गये। महारथी भीम ने धृष्टद्युम्न को सेना की स्थिति का ज्ञान कराया। धृष्टद्युम्न ने प्रसन्नतापूर्वक प्रधान सेनापति का भार संभाला। उसके पश्चात् सभा विसर्जित हुई और सब सोने के लिये चले गये।

अर्धरात्रि के पश्चात् व्यूह-रचना का कार्य आरम्भ हुआ। धृष्ट-द्युम्न ने दुर्भेद्य व्यूह की रचना कराई। व्यूह-रचना कराकर धृष्टद्युम्न ने सेना का निरीक्षण किया और व्यूह के चारों ओर घूमकर सम्पूर्ण स्थिति का आध्याय किया।

कौरव रात्रि को शराब पीकर आनन्दपूर्वक सोये। प्रातःकाल दुर्योधन की आँखें खुलीं। उसने पाण्डव-सेना को दुर्भेद्य व्यूह के रूप में अपने समक्ष मैदान में देखा तो उसके होश उड़ गये। वह हड़बड़ाया हुआ सीधा दादा भीष्म के पास जाकर बोला, 'दादा! आप क्या कर रहे हैं? पाण्डवों ने तो अपना व्यूह रच लिया।'

भीष्म ने भी एक व्यूह की रचना कर अपनी सेना को युद्ध के लिये तय्यार कर लिया था। निश्चित समय पर रणभेरी का नाद सुनाई दिया। भीष्म की अंग-रक्षा के लिये दुर्योधन, द्रोण, शल्य और जयद्रथ मैदान में उतरे।

भीष्म ने अद्भुत रण-कौशल का प्रदर्शन किया। जब अर्जुन ने देखा उनकी सेना त्रस्त हो गई तो वह सब ओर से दृष्टि हटाकर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भीष्म के सामने में आ गये। अर्जुन के समक्ष आते ही भीष्म का समस्त रण-कौशल समाप्त हो गया। भीष्म ने झुँझलाकर कृष्ण के ऊपर तीर छोड़ा। कृष्ण को उस तीर ने घायल कर दिया। यह देखकर अर्जुन के क्रोध का पारावार न रहा। उन्होंने ऐसे तीक्ष्ण बाणों की वर्षा की कि कौरव-सेना गाजर-मूली के समान कट-कट कर गिरने लगी। अर्जुन ने भीष्म के सारथी और घोड़ों को यमपुरी पहुँचा दिया। भीष्म बिना रथ के निराधार खड़े रह गये।

दूसरी ओर धृष्टद्युम्न और द्रोण का युद्ध हो रहा था। भीम कलिंगराज तथा उनके दोनों पुत्रों से युद्ध कर रहे थे। भीम ने कलिंग-राज के दोनों पुत्रों को धराशायी कर उसकी सेना को ध्वस्त किया। यह देख कर भीष्म उनकी सहायता के लिये दौड़े। धृष्टद्युम्न और सात्यिकी भी भीम की सहायता को जा पहुंचे। उनके वहाँ पहुँचने से पूर्व ही भीम ने कलिंगराज को समाप्त कर दिया।

भीष्म ने भीम पर तीरों से प्रहार किया तो भीम का क्रोध अभी शान्त नहीं हुआ था। उसने लौटकर भीष्म के सारथी पर गदा से प्रहार किया। भीष्म के रथ के घोड़े भयभीत होकर भाग खड़े हुए। पाण्डवों की विजय पताका फहराने लगी। महाबली भीम की गदा ने युद्ध-भूमि में कुहराम मचा दिया। वह जिधर से निकल गये, कौरवों के शव बिछते चले गये।

मध्यान्ह के पश्चात् अभिमन्यु और भीष्म के युद्ध दर्शनीय रहे। अभिमन्यु ने दुर्योधन के पुत्र लक्ष्मण का बदन छलनी कर दिया। यह देख कर दुर्योधन उसकी रक्षा के लिये वहाँ जा पहुंचा। कृष्ण की दृष्टि उधर गई तो उन्होंने अपना रथ उसी दिशा में मोड़ दिया। अर्जुन के तीरों की बौछारों ने मैदान खाली कर दिया। कौरव-सेना भाग खड़ी हुई। भीष्म ने सेना को रोकने का बहुत प्रयास किया, परन्तु वह रुकी नहीं। केवल भीष्म और द्रोण मैदान में खड़े रह गये।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भीष्म ने मुक्त-कंठ से अर्जुन के रण-कौशल की सराहना की। सूर्यास्त होने पर शांति-बिगुल बजा दिया गया। पाण्डव-सेना अपने शिविर को लौट गई।

आज का मैदान पाण्डव-पक्ष के हाथ रहा। कौरव-पक्ष पर आतंक और उदासी छा गई। दुर्योधन हताश हो गया। उसे लगा कि भीष्म जान-बूझ कर युद्ध नहीं कर रहे हैं।

रात्रि को श्रीकृष्ण ने फिर सभा बुलाई और कार्य-क्रम निश्चित करके उन्होंने अपने प्रमुख सेनापतियों से आगामी दिन के युद्ध के विषय में परामर्श किया।

अर्ध-रात्रि में उठ कर पाण्डवों ने अपनी सेना के व्यूह की रचना की और तीसरे दिन के युद्ध के लिये उद्यत हो गये। कौरवों ने भी अपनी सेना की व्यूह-रचना की। निश्चित समय पर युद्ध आरम्भ हो गया।

तीसरे दिन भीष्म ने आरम्भ से ही, युद्ध इतनी कुशलतापूर्वक संचालित किया कि पाण्डवों के पैर उखड़ गये। भीम यह देख कर सिंह के समान गरजे। भीम का नाद सुनकर पाण्डवों के उखड़ते हुए पैर फिर जम गये। भीम क्रोध में भरकर कौरव-दल पर टूट पड़े। उनका आगे बढ़ना था कि सेना उनके पीछे-पीछे अपना जौहर दिखाने लगी और उसने कौरव-दल के होश उड़ा दिये। कौरव-दल में हाहाकार मच गया। उनकी सेना पीठ दिखाकर भाग खड़ी हुई। द्रोण ने अपनी सेना को रोकने का निष्फल प्रयास किया। पाण्डव-दल के हर्ष-नाद से वायु-मण्डल आच्छादित हो गया।

पाण्डव-दल के हर्ष-नाद को सुनकर दुर्योधन का दिल दहल गया। उसने देखा हर दिशा में कौरवों की हार हो रही थी। कौरव-सेना मैदान छोड़कर भाग रही थी।

दुर्योधन क्रोधित होकर दादा भीष्म के पास पहुँचा और उनकी भर्त्सना करके बोला, 'पितामह! यदि आपको इसी प्रकार पक्षपातपूर्ण

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

युद्ध करना था तो मुझे पहिले बता देना चाहिये था। मुझे ज्ञात होता कि आप युद्ध में मुझे धोखा देंगे तो मैं कुछ और प्रबन्ध करता। कर्ण आपके ही कारण युद्ध में भाग नहीं ले रहा।'

दुर्योधन की भर्त्सना सुनकर भीष्म क्रोधित होकर बोले, 'दुर्योधन मैं प्राणपण से युद्ध कर रहा हूँ। तुम्हारी विजय नहीं हो रही, इसमें मेरा कोई दोष नहीं है। धर्म के सामने अधर्म की कभी विजय नहीं हो सकती। मैं विधाता के विधान को नहीं बदल सकता। मुझ में जितनी शक्ति और रण-कौशल है, मैं उस सब का प्रयोग कर रहा हूँ और करूंगा। यदि तुम्हें मुझ पर विश्वास नहीं है तो तुम कर्ण को सेनापति बना सकते हो।'

युद्ध फिर भयंकर हो गया। भीष्म के तीरों से पाण्डव-दल काई की तरह फट गया। मैदान खाली होने लगा। दादा भीष्म ने एक बार फिर अपना रण-कौशल प्रदर्शित किया।

भीष्म का विनाशकारी युद्ध देख कर श्री कृष्ण चिन्तित हो गये। वह अर्जुन से बोले, 'यह समय यहाँ नष्ट करने का नहीं है। भीष्म के भीषण प्रहरों से पाण्डव-सेना भाग रही है।' यह कह कर कृष्ण ने अर्जुन का रथ भीष्म की ओर मोड़ दिया और कुछ ही क्षणों में अर्जुन दादा भीष्म के सामने पहुंच गये।

अर्जुन ने दूर से ही पितामह को ललकारा, परन्तु आज भीष्म की प्रखर वाण-वर्षा ने अर्जुन के भी छक्के छुड़ा दिये। यह देखकर कृष्ण की क्रोधाग्नि भड़क उठी। उन्होंने सोचा कि भीष्म आज पाण्डव-सेना का समूल विध्वंश कर डालेंगे। वह अपनी शस्त्र धारण न करने की प्रतिज्ञा को भूल गये। उन्होंने अपना सुदर्शन-चक्र उठा लिया।

कृष्ण के सुदर्शन-चक्र उठाते ही कौरव-सेना में कुहराम मच गया। कृष्ण को सुदर्शन संभालते देख कर भीष्म ने धनुष-वाण नीचे रख दिये।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वह बोले, 'कृष्ण ! आओ, मेरा संहार करो। आपके हाथ से मर कर मुझे शांति प्राप्त होगी। आज मेरी यह प्रतिज्ञा थी कि आपसे अस्त्र उठवा कर रहूँगा।'

कृष्ण सक्रोध बोले, 'मेरी प्रतिज्ञा को देखते हो दादा भीष्म ! अपने अधर्म-युद्ध को नहीं देखते। कौरवों के जिस अन्न को खाने की दुहाई दे कर आप अधर्म की रक्षा में युद्ध कर रहे हैं, क्या वह अन्न पाण्डवों का नहीं है ? क्या पाण्डव आपके नहीं हैं ? अधर्म की बढ़ती हुई शक्ति को कृष्ण सहन नहीं कर सकता। कौरव-राज्य में रह कर आपके हृदय में अधर्म बस गया है। जब पांचाली का भरी सभा में अपमान हुआ तो आपकी यह वीरता और धर्मपरायणता कहाँ गई थी ? जब दुर्योधन ने पाण्डवों को सुई की नोंक के बराबर भी भूमि देने से इन्कार कर दिया था तो आपकी इस प्रखर युद्ध-विद्या को क्या हो गया था ? आज आप अपना रण-कौशल दिखाने आये हैं और वह भी अपने इन बच्चों पर। धिक्कार है आपके इस रण-कौशल और पराक्रम को। अधर्म पर स्वय चल रहे हो और मेरे वचन की दुहाई देते हो। धर्म की रक्षा करना मेरा धर्म है, धर्म की रक्षा करना मेरी प्रतिज्ञा है।'

कृष्ण की गम्भीर वाणी सुनकर दादा भीष्म की गर्दन झुक गई। उन्हें अपनी वीरता पर ग्लानि हो गई। उन्होंने अपने मन में सोचा कि वास्तव में वह जो कुछ कर रहे हैं वह अन्यायपूर्ण है। उन्होंने हस्तिनापुर-राज्य का जो अन्न खाया वह केवल कौरवों का ही नहीं था। जिस राज्य के लिये उन्होंने अपना सर्वस्व अर्पण किया, क्या उसमें भी उनके लिये अन्न का प्रश्न उठता है।

भीष्म को हार्दिक पश्चाताप हुआ। उनकी जिन आँखों ने पांचाली का अपमान देखा था, उन्हें उसी समय फूट जाना चाहिये था। उनके जिन कानों ने दुर्योधन के वे अन्यायपूर्ण शब्द सुने, उनकी श्रवण शक्ति उसी समय नष्ट हो जानी चाहिये थी। उन्हें पाण्डवों के विरुद्ध

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

शस्त्र ग्रहण नहीं करने चाहिये थे। उनका व्यक्तित्व आत्मग्लानि के नीचे दब गया। वह कृष्ण की बात का कोई उत्तर न दे सके।

कृष्ण घन-गर्जन के समान गम्भीर वाणी में बोले, 'बोलिये पितामह! मौन क्यों हैं? आप किसका नमक खा रहे हैं? क्या वह आपका अपना नमक नहीं था? क्या आप महाराज शान्तनु के पुत्र नहीं हैं? क्या आपने चित्रांगद और विचित्रवीर्य को नहीं पाला? क्या आपने पाण्डु और धृतराष्ट्र का पालन-पोषण और संरक्षण नहीं किया? यह सब करने वाला इस परिवार का पुर्खा आज दुर्योधन का नमक खाने की दुहाई देता है और उसकी ओर से रथ पर बैठा अपनी सन्तान पर शस्त्र-वर्षा कर रहा है। कितना अधर्मपूर्ण और अनुत्तरदायित्वपूर्ण कार्य है?' यह कह कर श्रीकृष्ण ने अट्टहास किया। उनके हास्य से सम्पूर्ण वायुमण्डल दहल गया। कृष्ण फिर गम्भीर वाणी में बोले, 'धर्म का ध्वंस करने वाले अन्यायी और विधर्मी को बढ़ते देख कर कृष्ण का सुदर्शन-चक्र स्वयं ऊपर उठ जाता है दादा! आपके वाणों को तरकश में रखाकर सुदर्शन चक्र स्वयं वापिस लौट आयेगा। आप चिन्ता न करें। सुदर्शन-चक्र कभी किसी अधर्म को सहन नहीं करेगा।'

कृष्ण जाकर अर्जुन के रथ पर बैठ गये। अर्जुन ने गाण्डीव उठा कर वाण-वर्षा करनी आरम्भ कर दी। भीष्म युद्ध में उत्साह न ले सके। उनका उत्साह कृष्ण ने भंग कर दिया। उनका हृदय आत्मग्लानि से भर गया।

अर्जुन के प्रखर वाणों की मार से शत्रु-सेना में भगदड़ मच गई। अनेकों कौरव-सैनिक उस भगदड़ में कुचल कर मर गये। कौरव-पक्ष में हाहाकार मच गया। अर्जुन के तीरों ने शत्रुओं का चुन-चुन कर संहार करना आरम्भ कर दिया। भीम की गदा ने शत्रुओं पर भीषण प्रहार किया।

सूर्यास्त का समय हो गया था। कृष्ण मुस्करा कर बोले, 'पितामह!

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

शांति का बिगुल बजवाइये और मेरी प्रतिज्ञा भंग होने की दुहाई देते हुए अपने अन्नदाताओं के शिविर को लौटिये।'

भीष्म लज्जित होकर बोले, 'कृष्ण ! अब और लज्जित न करो। कुरु-कुल की मर्यादा को भंग करने वाला अन्य कोई नहीं, मैं हूँ। मैंने अधर्म को सहन किया। मुझ से बड़ा पापी अन्य कोई नहीं। मेरे इस अधर्म-कार्य का प्रायश्चित् मृत्यु के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। मुझे अब जीने की लेशमात्र इच्छा नहीं है।'

'पितामह ! आप बुरा न मानें तो इस महाभारत का दोषी मैं आपको, आचार्य द्रोण, और मामा शल्य को मानता हूँ। आप तीनों यदि दुर्योधन के अधर्म-कार्य में साथ न देते तो वह पाण्डवों से लड़ने का साहस न करता और यह भयंकर नर-संहार टल जाता। आप तीनों के ही निकट पाण्डव और कौरव समान हैं। आपका युद्ध में भाग लेना शोभा नहीं देता।'

दोनों पक्षों की सेनाएँ अपने-अपने शिविरों को लौट गईं। युद्ध-समाप्ति का बिगुल बज चुका था।

चौथे दिन का युद्ध और भी भयंकर हुआ। भीष्म और अर्जुन का युद्ध देखने के लिये दोनों सैनिक-दल मौन होकर खड़े हो गये। दूसरी ओर अभियन्यु, अश्वस्थामा और शल्य इत्यादि के दांत खट्टे कर रहा था। अभिमन्यु के हाथों अश्वस्थामा और शल्य को घायल होते देख कर दुर्योधन भी वहाँ जा पहुँचा। यह देख कर कृष्ण ने भी अपना रथ उधर मोड़ दिया। दोनों ओर से प्रलय के बादल मँडरा उठे। आकाश वाणों से अच्छादित हो गया। चमाचम तलवारें चमक रही थीं।

भीम का पुत्र घटोत्कच भगदत्त और मगधराज से लड़ रहा था। भीम घटोत्कच को अकेला देखकर वहाँ पहुंच गये। दुर्योधन ने भगदत्त को भीम की गदा के प्रहार से भूमि पर गिरते देखा तो वह उसकी सहायता के लिये दौड़ा। अभिमन्यु, सात्यिकि और धृष्टद्युम्न महाबली

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भीम को अकेला देखकर वहाँ जा पहुँचे। घमासान युद्ध आरम्भ हो गया।

मगधराज ने अभिमन्यु की ओर अपने हाथी को बढ़ाया तो अभिमन्यु ने उसे एक ही तीर से मार कर भूमि पर गिरा दिया। तभी भीम की गदा ने भगदत्त का संहार कर दिया। यह देख कर दुर्योधन क्रोधावेश में भीम की सेना पर कूद पड़ा। दुर्योधन ने भीम पर तीर छोड़ा और वह घायल हो गये। घायल होकर भीम की क्रोधाग्नि धधक उठी। वह आँधी के समान शत्रुओं पर टूट पड़े। उन्होंने दुर्योधन तथा शल्य को घायल कर दुर्योधन के सात भाइयों को यमपुरी पहुँचा दिया।

भीष्म को आज दिन भर अर्जुन ने इधर-उधर हिलने दिया। उनके हर वाण को अर्जुन ने विफल कर दिया। भीष्म के वाणों से पाण्डवसेना के एक भी वीर की क्षति नहीं हुई और संध्या समय का शान्तिबिगुल वज गया। दादा भीष्म आज के युद्ध में कोई पराक्रम न दिखा सके।

पाँचवें दिन भीष्म से लड़ने के लिये शिखंडी मैदान में आया।

द्रोण जानते थे कि भीष्म शिखंडी से नहीं लड़ेंगे, इस लिये वह स्वयं शिखंडी से लड़ने लगे और लड़ते-लडते उसे दूसरी दिशा में ले गये। शिखंडी के चले जाने पर भीष्म अर्जुन से लड़ने लगे। अभिमन्यु लक्ष्मण से भिड़ रहे थे और भीम दुर्योधन से। इसी प्रकार लड़ते-लड़ते संध्या हो गई और युद्ध में कोई निर्णय न हो सका।

छटे दिन युद्ध में भीम ने दुर्योधन को घायल कर दिया। सातवें दिन का युद्ध भी निर्णयात्मक न हुआ। आठवें दिन भीम ने दुर्योधन के दस भाइयों को यमपुरी पहूँचाया।

अभी तक के युद्ध में विशेष क्षति कौरवों की ही हुई थी। रात्रि में दुर्योधन ने अपने मित्रों की एक सभा की, जिसमें भीष्म, द्रोण, कृप

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इत्यादि को आमंत्रित नहीं किया गया। उनके स्थान पर आज कर्ण को बुलाया गया। दुर्योधन को अब यह दृढ़ विश्वास हो गया था कि दादा भीष्म पाण्डवों की तरफदारी कर रहे हैं।

दुर्योधन ने स्पष्ट शब्दों में पितामह की निन्दा की और उन्हीं को अपनी पराजय का दोषी ठहराया। दुर्योधन ने यहाँ तक कहा कि भीष्म पाण्डवों से मिलकर उनके साथ विश्वासघात कर रहे हैं। वह नहीं चाहते कि युद्ध में कौरवों की विजय हो।

कर्ण ने दुर्योधन की बात का समर्थन करते हुए कहा, 'महाराज दुर्योधन! आप दादा से कहिये कि वह अस्त्र त्याग दें। मैं उनके अस्त्र त्यागने पर ही समर में उतर सकता हूँ। तब देखना पाण्डवों की क्या दशा होती है।'

कर्ण की बातें दुर्योधन के हृदय में घर कर गईं। वह अपनी नित्य प्रति की हार से व्याकुल हो रहा था। उसके बीस भाई रण में खेत रहे थे। उसका भगदत्त जैसा साथी युद्ध में काम आ चुका था। वह स्वयं भी घायल हो गया था। उसका छः अक्षौहिणी दल समाप्त हो चुका था। अब पाण्डवों की और कौरवों की सैन्य-शक्ति लगभग समान हो गई थी। दुर्योधन का मन बहुत क्षुब्ध था। वह युद्ध की स्थिति से भयभीत था।

दुर्योधन वहाँ से उठ कर सीधा भीष्म के शिविर में पहुँचा और बोला, 'पितामह! आपकी पाण्डवों के प्रति ममता के कारण हमारी युद्ध-भूमि में नित्य पराजय हो रही है। आपने पाण्डवों को मारने की प्रतिज्ञा की थी, परन्तु आप उसे पूर्ण न कर सके। मेरी इच्छा है कि आप अब युद्ध से अवकाश ग्रहण कर कर्ण को युद्ध-भूमि में उतरने दें।'

भीष्म ने दुर्योधन की बात का कोई उत्तर न दिया। उनकी आत्मा को महान् कष्ट हुआ। यह सत्य था कि उनका प्रेम पाण्डवों पर था,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

परन्तु उन्होंने युद्ध में विश्वासघात नहीं किया था। अर्जुन के समक्ष वह आगे न बढ़ सके और उनकी हार हुई, इसके लिये वह दोषी नहीं थे। उन्होंने अपनी शक्ति भर कुछ उठा नहीं रखा था।

भीष्म गम्भीर वाणी में बोले, 'दुर्योधन ! दोष तुम्हारा नहीं है, दोष समय का है। कल मेरे युद्ध का नवाँ दिन है। कल या तो मैं पाण्डवों को समाप्त कर दूँगा, या स्वयं समाप्त हो जाऊँगा, परन्तु मरूँगा अभी नहीं। सम्पूर्ण महाभारत को अपनी आँखों से देख कर प्राण-त्याग करूँगा और देखूँगा कि पाण्डवों के समक्ष तुम्हारा अन्य कौन सेनापति होगा जो नौ दिन ठहर पायेगा ? तुम इस समय यहाँ से चले जाओ। मुझे सेना का संचालन करके कल के युद्ध की व्यवस्था करनी है।'

दुर्योधन अपने मन में भीष्म की प्रतिज्ञा को सुनकर आशा लिये अपने शिविर को लौट गया। उसे हर्ष था कि वह इस प्रकार दादा को उत्तेजित करके युद्ध को भयंकर बनाने में सफल हुआ।

कृष्ण गत तीन चार दिन से देख रहे थे कि जब शिखण्डी भीष्म के सामने आता था तो भीष्म उस पर वार नहीं करते थे। उन्होंने आज रात्रि में फिर अपने चुने हुए वीरों की एक सभा की और धृष्टद्युम्न से कहा, 'धृष्टद्युम्न ! आज रात्रि को तुम अपने अभेद्य-व्यूह की रचना करो। उसके सिंहद्वार पर शिखण्डी को रखो। उसके दोनों ओर अभिमन्यु, भीम, नकुल, सहदेव, विराट, घटोत्कच, सात्यिकी और तुम सब रहना। द्रोण, कृप, दुर्योधन इत्यादि जो कोई कौरव-योद्धा शिखण्डी के सामने आये उसे तुम लोग सम्भालना। किसी को शिखण्डी पर आक्रमण करने का अवसर न देना। अर्जुन का रथ शिखण्डी के पीछे रहेगा। भीष्म पितामह ने दुर्योधन से कल के युद्ध में पाण्डवों को समाप्त करने या स्वयं मृत्यु को प्राप्त होने की प्रतिज्ञा की है। कल निर्णायक युद्ध होगा। महाभारत के युद्ध का निर्णय

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कल के युद्ध में सामने आ जायेगा।'

सैनिक तैयारियाँ उसी समय होनी आरम्भ हो गईं। रात्रि में श्रीकृष्ण ने एक क्षण के लिये भी विश्राम नहीं किया।

धृष्टद्युम्न सम्पूर्ण रात्रि भर चन्द्रमा की चांदनी में अभेद्य-व्यूह की रचना में व्यस्त रहे। अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव, युधिष्ठिर, विराट, सात्यिकी, अभिमन्यु और घटोत्कच भी वहीं डटे रहे। आज के व्यूह की रचना श्रीकृष्ण ने स्वयं अपनी देख-रेख में कराई। वह हर दिशा में निरीक्षण कर रहे थे। व्यूह में केवल एक ही प्रवेश-द्वार रखा गया था।

प्रातःकाल भीष्म का रथ युद्ध-भूमि में आया तो उन्हें अपने सामने पाण्डवों के व्यूह के सिंहद्वार पर शिखण्डी दिखाई दिया। उसे देख कर भीष्म समझ गये कि आज उनका अन्तिम दिन है। मृत्यु उनके शीर्ष पर मँडराने लगी। उनके मन ने कहा, 'आज का सैन्य-संचालन स्वयं श्रीकृष्ण कर रहे हैं।'

युद्ध-आरम्भ होने का शंख-नाद हुआ। रणभेरी बजी। दुर्योधन ने व्यूह के सिंहद्वार पर शिखण्डी को खड़ा देखा तो वह हंसा और उस पर आक्रमण किया। भीम दुर्योधन को उस ओर बढ़ते देख कर उसकी ओर लपका और इतने जोर का प्रहार किया कि वह शिखण्डी की ओर बढ़ना भूल कर भीम से भिड़ गया। भीम दुर्योधन को धकेलता हुआ वहाँ से बहुत दूर दक्षिण-दिशा में ले गया।

शिखण्डी ने भीष्म पर आक्रमण किया तो द्रोण झपट कर भीष्म के सामने आ गये और उन्होंने शिखण्डी के तीर को बीच में ही काट कर शिखण्डी पर तीर छोड़ा। अर्जुन ने द्रोण के तीर को बीच में ही काट दिया। धृष्टद्युम्न ने उसी समय द्रोण पर भीषण आक्रमण किया। धृष्टद्युम्न के आक्रमण ने द्रोण को इतनी बुरी तरह त्रस्त कर दिया कि उन्हें भीष्म का ध्यान भूल कर अपनी रक्षा की पड़ गई।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

धृष्टद्युम्न द्रोण को वहाँ से लड़ता-लड़ता उत्तर-दक्षिण की ओर पर्याप्त दूर ले गया।

शल्य शिखण्डी की ओर बढ़े तो सात्यिकी ने उन्हें आगे न बढ़ने दिया। वह उन्हें युद्ध करते हुए पूर्व की ओर ले गये। कृप ने देखा भीष्म अकेले रह गये। वह झपट कर उधर आये तो नकुल और सहदेव उन पर टूट पड़े। वे उनसे युद्ध करते हुए उन्हें पश्चिम दिशा की ओर ले गये। जयद्रथ की दृष्टि भीष्म की ओर गई तो उसने देखा भीष्म का एक भी अंग-रक्षक उनके पास नहीं रहा। उसने अपना रथ भीष्म की ओर बढ़ाने के लिये दौड़ाया। अभिमन्यु ने जयद्रथ को उधर बढ़ते देखा तो उसने उसके दोनों घोड़ों और सारथी को मार गिराया। उसने उस पर वाणों की इतनी भयंकर वर्षा कि उसे अपने आप को ही बचाना कठिन हो गया।

दादा भीष्म की सहायता के लिये एक भी अंग-रक्षक शेष न रहा। अवसर देखकर श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा, 'अर्जुन! भीष्म पर आक्रमण करो। इससे अच्छा अवसर फिर नहीं मिलेगा। यही समय है कुछ कर गुजरने का।'

उसी समय युधिष्ठिर वहाँ आ गये। युधिष्ठिर गम्भीर वाणी में बोले, 'अर्जुन! आज दादा को समाप्त करना है। दादा ने हमारे विपक्ष में अस्त्र ग्रहण करके अधर्म और अन्याय का पक्ष लिया है। हमने दादा का क्या अहित किया था जो इन्होंने हमारे विरुद्ध कौरवों का पक्ष लिया? क्या कौरवों के ही समान हम इनकी सन्तान नहीं हैं?'

कृष्ण और धर्मराज युधिष्ठिर का आदेश प्राप्त कर अर्जुन ने दादा भीष्म पर भीषण प्रहार किया। संध्या होते-होते भीष्म का बदन छलनी हो गया। उनका सारा बदन अर्जुन के वाणों से बिंध गया। सूर्यास्त तक दादा पृथ्वी पर गिर गये। उनके बदन पर इतने वाण चुभे थे कि वाणों की शय्या बन गई। वह शर-शय्या पर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

लेट गये।

भीष्म के गिरते ही कौरव-दल में हा-हाकार मच गया। युद्ध बन्द हो गया। कौरव, पाण्डव, दोनों ने आगे बढ़कर भीष्मपितामह के चरण छुए और उनकी चरण-रज लेकर अपने मस्तकों पर लगाई। सभी के नेत्रों में जल भर आया।

भीष्म ने नेत्र खोल कर कहा, 'बच्चो! मैं चाहता हूँ कि मेरी मृत्यु के साथ तुम दोनों का पारस्परिक मतभेद समाप्त हो जाये। मैं सूर्य उत्तरायण होने पर प्राण त्याग करूँगा!' फिर कुछ ठहरकर बोले, 'बच्चो! मेरा सिर नीचे लटक रहा है। मुझे इससे कष्ट हो रहा है। इसे ऊपर उठा दो।'

यह सुन कर कौरव तुरन्त मखमली तकिये ले आये। भीष्म बोले, 'मुझे ये तकिये नहीं चाहियें दुर्योधन! तीरों की शय्या पर सोने वाला भीष्म मखमल के तकिये लगायेगा?' वह अर्जुन की ओर देख-कर बोले, 'अर्जुन! मेरा सिर नीचे लटक रहा है बेटा! इसे ऊपर उठा दो।'

अर्जुन ने तुरन्त तरकश से दो तीर निकाल कर छोड़े और दादा भीष्म का सिर उपर उठा दिया। उनका सिर उन दो तीरों पर टिक गया। दुर्योधन ने इसे भी अपना अपमान समझा।

भीष्म बोले, 'बेटा मुझे प्यास लगी है।'

अर्जुन ने एक तीर भूमि में मारा। भूमि से जल की धारा निकली और पानी दादा भीष्म के मुख पर आकर गिरा। उन्होंने अपनी प्यास शान्त की।

भीष्म गद्-गद् होकर बोले, 'बेटा अर्जुन! तेरे सरीखा धनुर्धर पृथ्वी पर पैदा नहीं हुआ। तुम्हें युद्ध-भूमि में कोई परास्त नहीं कर सकता। मुझे तुम्हारे अतिरिक्त अन्य कोई परास्त नहीं कर सकता था।'

भीष्म दुर्योधन से बोले, 'बेटा दुर्योधन! मेरी मृत्यु से ही यदि

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तुम्हारी बुद्धि सुमार्ग पर आ जाये तो मैं अपनी मृत्यु को सार्थक समझूँगा। मेरा कहा मानो तो अब भी पाण्डवों को इनका आधा राज्य देकर परस्पर प्रेम-भाव से रहो। अभी कुछ नहीं बिगड़ा है। तुम चाहो तो अब भी कुरु-कुल को नष्ट होने से बचा सकते हो। अन्यथा त्राण की मुझे आशा प्रतीत नहीं देती।'

दुर्योधन पर दादा भीष्म के कहने का कोई प्रभाव न हुआ। उसका विचार था कि अब कर्ण के युद्ध-भूमि में उतरने से सब कार्य सिद्ध हो जायेगा।

कुछ रक्षकों को दादा भीष्म के पास छोड़ कर शेष सब अपने-अपने शिविरों को चले गये। दादा भीष्म शर-शय्या पर लेटे रहे।

कर्ण को यह समाचार मिला तो वह भी उनके पास आया और नेत्रों में आँसू भर कर बोला, 'दादा ! मेरा अपराध क्षमा कर दो। मैंने आपके प्रति जिन कटु-वचनों का प्रयोग किया, वह सर्वथा निन्दनीय था।'

कर्ण की बात सुन कर भीष्म मुस्करा कर बोले, 'कर्ण ! मैंने तुम्हें क्षमा कर दिया, परन्तु क्या तुम भी मेरी एक बात मान सकते हो ? यह युद्ध तुम्हारे ही कारण हो रहा है। तुम चाहो तो इसे रोक सकते हो। तुम कुन्ती के पुत्र और युधिष्ठिर के भाई हो। मेरा कहा मानकर तुम इस युद्ध को रोक दो।'

कर्ण कुछ सोच कर बोला, "पितामह ! मुझे कुन्ती माता ने त्याग दिया और मेरा पालन-पोषण महाराज दुर्योधन की कृपा से हुआ। मैं इस समय उनका साथ नहीं छोड़ सकता। महाराज दुर्योधन कभी युद्ध बन्द नहीं करेंगे, यह मैं जानता हूँ। इस लिये मैं आपकी आज्ञा का पालन करने में सर्वथा असमर्थ हूँ। मैं उनका साथ नहीं छोड़ सकता।"

भीष्म ने नेत्र बन्द करके कहा, 'तुम्हारी इच्छा कर्ण !'

भीष्म फिर एक शब्द न बोले। वह नेत्र बन्द किये लेटे रहे। कर्ण अपने शिविर को लौट गया।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दादा भीष्म के हताहत होने का शोक कौरव-दल में छा गया। दुर्योधन यों भर्त्सना के रूप में पितामह से चाहे जो कुछ भी कह देता था, परन्तु वह जानता था कि भीष्म जैसा कोई अन्य महारथी उसके पक्ष में नहीं है। उनके रण-भूमि में गिरने से दुर्योधन के हाथ-पैर टूट गये। वह कुछ देर तो सोच ही न सका कि अब क्या करे।

दुर्योधन इसी शोक में डूबा बैठा था कि उसे सामने से कर्ण आता दिखाई दिया। दुर्योधन को अधीर देख कर वह उत्साहपूर्ण वाणी में बोला, 'दुर्योधन! तुम अधीर क्यों हो? दादा भीष्म के रहते मैं शस्त्र नहीं उठा सका था। अब कल से तुम युद्ध में मेरा जौहर देखना। मुझे तुम पाण्डवों का काल समझना।'

कर्ण की उत्साहपूर्ण बातें सुन कर दुर्योधन के बैठते हुए दिल ने क्षनिक उभार लिया। डूबते को तिनके का सहारा मिल गया। वह गद्-गद् होकर बोला, 'भय्या कर्ण! सच बात तो यह है कि मैंने पाण्डवों से युद्ध एक मात्र तुम्हारे ही बल पर ठाना है। हमारे वयोवृद्ध लोगों का हृदय पाण्डवों के साथ है, हमारे साथ नहीं। इनका हमारे पक्ष में युद्ध करना भी केवल दिखाया मात्र है। यह सब कुछ तुम भली प्रकार जानते हो। हमें अब कल के सेनापति का निश्चय कर लेना चाहिये।'

कर्ण बोला, 'भीष्म के पश्चात सेनापति आचार्य द्रोण के अतिरिक्त अन्य कौन हो सकता है?'

कर्ण की इस बात का सबने समर्थन किया।

द्रोण के सामने यह प्रस्ताव पहुँचा तो उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर लिया। वह बोले, 'वत्स दुर्योधन! मैं तुम लोगों का शिक्षण-कार्य करता रहा हूँ। युद्ध का अभ्यास मुझे नहीं है। फिर भी जब यह

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भार तुमने मेरे ऊपर रखा है तो मैं इसे वहन करने को उद्यत हूँ। एक मात्र धृष्टद्युम्न को छोड़ कर मैं समस्त पाण्डव-सेना के साथ लड़ सकता हूँ। उसके साथ मैं युद्ध नहीं कर सकता।'

दुर्योधन बोला, 'आचार्य! आप किसी प्रकार युधिष्ठिर को जीवित पकड़ लें। मैं उन्हें मारना नहीं चाहता, क्यों कि उनके मरने पर अर्जुन प्रलयंकारी रूप धारण कर लेगा।'

द्रोण बोले, "धर्मराज को जीवित पकड़ लाना सरल कार्य नहीं है। जब तक अर्जुन धर्मराज के पास छाया के समान लगा रहेगा तब तक उन्हें कोई छू भी नहीं सकता। हाँ, यदि तुम अर्जुन को किसी प्रकार युधिष्ठिर के पास से हटा लो तो सम्भव है कि मैं इस कार्य में सफल हो सकूँ।'

सुशर्मा बोला, 'आचार्य! यदि युधिष्ठिर को पकड़ने की चेष्टा करें तो हम लोग अर्जुन को ललकार कर युद्ध के लिये दूर ले जा सकते हैं।'

सुशर्मा की सलाह आचार्य को पसन्द आई। वह बोले, 'यदि अर्जुन युधिष्ठिर से प्रथक हो जाये तो मैं युधिष्ठिर को बन्दी बनाने का पूर्ण प्रयास करूँगा।'

आचार्य द्रोण के अन्तिम् शब्द सुन कर दुर्योधन की आत्मा प्रसन्न हो गई। उसका हृदय उल्लास से भर गया। वह उन्मत्त होकर बोला, 'आचार्य! युद्ध में हमारी विजय होगी। कल महाबली कर्ण भी युद्ध-क्षेत्र में आयेंगे।'

कौरवों की इस मंत्रणा का समाचार पाण्डवों के दूतों ने तुरन्त जाकर कृष्ण को दिया। पाण्डवों की ओर से युद्ध-नीति का संचालन श्रीकृष्ण कर रहे थे।

कृष्ण ने निश्चय किया कि अर्जुन छाया के समान युधिष्ठिर के साथ रहेंगे। युधिष्ठिर को एक क्षण के लिये भी अकेला नहीं छोड़ा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जायेगा।

दूसरे दिन युद्ध आरम्भ हुआ। द्रोण ने व्यूह-रचना कर युद्ध आरम्भ किया। रणभेरी बज उठी और योद्धा गण अपने-अपने विपक्षियों पर टूट पड़े। घमासान युद्ध छिड़ गया।

आज कर्ण की पताका भी युद्ध-भूमि में लहरा रही थी। कर्ण के उत्साह को देख कर दुर्योधन भीष्म के अभाव को भूल गया। कर्ण को देख कर कौरव-सेना में नवीन उत्साह भर गया। कर्ण और आचार्य द्रोण के जय-घोष से आकाश गूँज रहा था। कौरव-सेना आज नये सेनापति के संचालन में नये जोश से लड़ रही थी।

पाण्डव वीर बहुत सतर्कता से युद्ध कर रहे थे। उनके व्यूह के सिंहद्वार पर अर्जुन का रथ था। कर्ण ने अर्जुन को देख कर दूर से ही ललकारा तो अर्जुन से उसके शब्द सहन न हो सके। अर्जुन ने क्रोध में भर कर एक ऐसा तीर छोड़ा जिससे कर्ण के रथ की ध्वजा कट कर आकाश में उड़ गई।

द्रोण ने आज प्रलयंकारी युद्ध किया। उनके प्रखर बाणों की वर्षा से पाण्डव-सेना त्रस्त हो गई। चारों ओर त्राहि-त्राहि मच गई। यह देख कर धर्मराज युधिष्ठिर कुछ प्रमुख वीरों के साथ द्रोण के सामने आ गये। भीम शल्य से युद्ध कर रहे थे और सात्यिकि कृतवर्मा से। भीम ने शल्य पर प्रहार किया तो वह मूर्छित होकर धराशायी हो गये। कौरव-सैनिक उन्हें उठा कर शिविर में ले गये।

द्रोण के बाणों से शूरसेन ने वीरगति पाई तो पाण्डव-दल में उदासी छा गई। यह देख कर युधिष्ठिर अकेले ही द्रोण से जूझ पड़े। दोण ने धर्मराज को बाणों की वर्षा से घायल कर दिया।

उधर अर्जुन को सुशर्मा ने बुरी तरह घेर लिया था। आचार्य द्रोण अवसर देख कर युधिष्ठिर को बाँध लेना चाहते थे। यह देख कर कृष्ण अर्जुन से बोले, 'अर्जुन! मेरा हृदय युधिष्ठिर के लिये व्याकुल

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

है। हमें तुरन्त धर्मराज की सुधि लेनी चाहिये। ऐसा न हो कोई अनर्थ हो जाये। द्रोण धर्मराज को बन्दी बनाना चाहते हैं।'

कृष्ण ने अर्जुन का रथ तीव्र गति से युधिष्ठिर की ओर बढ़ा दिया। वह पलक मारते शत्रु-सेना को काटते-छाँटते धर्मराज के पास जा पहुँचे। उन्होंने देखा द्रोण ने धर्मराज को बन्दी बनाने के लिये अपना जाल फैला दिया था और धर्मराज घायल होकर गिरने ही वाले थे।

अर्जुन ने दूर से ही एक तीर ऐसा छोड़ा कि द्रोण का पाष टुकड़े-टुकड़े हो गया। द्रोण खड़े के खड़े रह गये। तभी अर्जुन के बाण उनके चारों ओर मँडराने लगे। द्रोण अर्जुन के बाणों की वर्षा में फँस कर अपना कार्य भूल गये।

दिवसावसान समीप था। युद्ध बन्द हो गया। योद्धा गण अपने-अपने शिविरों को चले गये। द्रोण का निश्चय पूर्ण न हो सका।

द्रोण की आज की असफलता ने दुर्योधन को उदास कर दिया। द्रोण साहसपूर्ण वाणी में बोले, 'दुर्योधन! हतोत्साहित होने का कोई कारण नहीं है। मैंने कल ही तुमसे कहा था कि अर्जुन के रहते युधिष्ठिर को बन्दी बनाना कठिन है। अर्जुन के आने से मेरा प्रयास विफल हो गया। यदि अर्जुन कुछ देर और न आता तो मैंने युधिष्ठिर को पाष में बाँध लिया था। युद्ध के समय यदि अर्जुन को किसी प्रकार मेरे सामने से दूर ले जाया जा सके तो हमें सफलता मिल सकती है।'

यह सुन कर त्रिगर्तराज बोले, 'मैं आज आपके सामने शपथ लेता हूँ कि कल अर्जुन से घोर युद्ध करके उसे आपसे दूर ले जाऊँगा। कल या तो मैं ही नहीं रहूँगा या अर्जुन।'

पाण्डव-पक्ष में रात्रि को मंत्रणा-सभा का आयोजन हुआ। उसमें दूसरे दिन की युद्ध-नीति पर विचार किया गया। तभी उन्हें उनके दूतों ने कौरवों के निश्चय की सूचना दी।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उषा ने रात्रि के अन्धकार को भेदकर दर्शन दिये। पाडव-सैना मैदान में उतर आई। कौरव-सेना भी उसके सामने आ डटी।

रणभेरी बजी और त्रिगर्तराज ने अर्जुन को ललकारा। अर्जुन युधिष्ठिर से बोले, 'धर्मराज ! सत्यजित आपकी रक्षा में रहेगा। यदि सत्यजित वीरगति को प्राप्त हो जाये तो आप तुरन्त युद्धस्थल से हट जाना। द्रोण से अकेले लड़ने का प्रयास न करना, यह मेरी आपसे सानुरोध प्रार्थना है, अन्यथा बहुत बड़ा अनर्थ हो जायेगा। मुझे त्रिगर्तराज ने ललकारा है। आज उसे यमपुरी पहुँचना होगा। आपके युद्धस्थल से हट जाने पर द्रोण का कार्य-क्रम स्वयं ही विफल हो जायेगा।'

त्रिगर्तराज अर्जुन को ललकार कर इतनी दूर निकल गया कि जिससे अर्जुन युधिष्ठिर की रक्षा के लिये न आ सकें। अर्जुन श्रीकृष्ण से बोले, 'कृष्ण ! मालूम देता है त्रिगर्तराज के सिर पर काल मंडरा रहा है। मैं आज इसे जीवित नहीं छोड़ूंगा।'

कृष्ण ने रथ ले जाकर त्रिगर्तराज के सामने खड़ा कर दिया। अर्जुन की सेना ने त्रिगर्तराज की व्यूह-रचना को छिन्न-भिन्न कर दिया। उसकी सेना भाग खड़ी हुई और वह अकेला अर्जुन के सामने खड़ा रह गया।

उसे परास्त कर अर्जुन युधिष्ठिर की ओर बढ़े, परन्तु बीच में दुर्योधन असंख्य सेना लेकर आ गया। अर्जुन प्रलय के समान उस पर टूट पड़े। दुर्योधन की सेना काई की तरह फट गई। वह तनिक और आगे बढ़े तो भगदत्त से युद्ध करना पड़ा। भगदत्त ने अपने मस्त हाथी ऐरावत को अर्जुन के रथ की दिशा में छोड़ दिया।

कृष्ण ने तीव्र गति से रथ को बचा लिया। अर्जुन ने ऐरावत हाथी को मार गिराया। यह देख कर भगवत्त पागल की भाँति अर्जुन पर टूट पड़ा। अर्जुन ने एक ऐसा वाण छोड़ा कि जिससे भगदत्त की

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आँतें निकल कर बाहर आ गिरीं और वह यमलोक सिधार गया ।

उधर द्रोणाचार्य ने युधिष्ठिर के अंग-रक्षकों पर भीषण प्रहार किया । द्रोण की बाण-वर्षा ने पाण्डव-सेना को व्याकुल कर दिया । द्रोण के इस रूप को देख कर युधिष्ठिर के अंग-रक्षक भी आँधी के समान उन पर टूट पड़े । सत्यजित के बाणों ने द्रोण के रथ के घोड़ों को मार कर भूमि पर गिरा दिया । उनके सारथी को भी सत्यजित ने आहत कर दिया ।

सत्यजित की वीरता को देखकर द्रोण आश्चर्यचकित रह गये । द्रोण ने अपनी प्रतिज्ञा को भंग होते देख कर सत्यजित पर अर्धचन्द्रास्त्र से प्रहार किया, जिससे सत्यजित मृत्यु को प्राप्त हुआ ।

सत्यजित को गिरते देख कर धर्मराज युधिष्ठिर युद्ध-भूमि से हट गये । युधिष्ठिर को अपने सामने न देख, द्रोण क्रोध से पागल हो गये और पाण्डव-दल का बुरी तरह संहार करने लगे । उन्होंने कितने ही पांचालों को समाप्त कर दिया ।

उसी समय अर्जुन वहाँ आ पहुँचे । उन्होंने द्रोण का रौद्र-रूप देख कर कौरव-सेना का विध्वंस करना आरम्भ किया । अर्जुन के तीरों की मार ने मैदान खाली कर दिया । कौरव-सेना में भगदड़ मच गई । उनके सैनिक सिरों पर पैर रख कर भाग खड़े हुए । लड़ते-लड़ते सूर्यास्त हो गया और शांति-शंख बज गया ।

कौरव-दल की आज करारी हार हुई । भगदत्त की मृत्यु का शोक समस्त कौरव-दल पर छा गया । त्रिगर्तराज की पराजय ने उनके घुटने तोड़ दिये ।

दुर्योधन बहुत हताश हुआ । अब उसकी सैन्य-शक्ति पाण्डवों से कम रह गई थी । उसकी निराशा का पारावार नहीं रहा । उसके लगभग पचास से ऊपर भाई रण में खेत रहे । उसके बड़े-बड़े वीरों का

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

विनाश हो चुका था। वह विह्वल होकर आचार्य द्रोण के शिविर में जाकर बोला, 'आचार्य ! यदि युद्ध का यही रूप रहा तो हमारी पराजय निश्चित है। आपकी पाण्डवों के प्रति ममता हमारे विनाश का मूल कारण है। यदि आपने अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण न की तो मैं समझूँगा कि आप हमारे पक्ष की ओर से नहीं, पाण्डव-पक्ष के हित में युद्ध कर रहे हैं।'

दुर्योधन के ये वचन सुन कर आचार्य द्रोण मर्माहित हो गये। वह क्रुद्ध होकर बोले, 'दुर्योधन ! होश की बातें करो ! मेरे बाणों से आज सत्यजित की मृत्यु हुई। उसके पश्चात् धर्मराज युद्ध-भूमि से हट गये। नीतिकुशल कृष्ण उनके साथ हैं। उनकी नीति को समझना तुम्हारे लिये असम्भव है। तभी पराक्रमी अर्जुन त्रिगर्तों पर विजय प्राप्त कर वहाँ आ पहुँचा। क्या तुम मेरे साथ नहीं थे जो ऐसी बातें कर रहे हो ? मैंने अपनी करनी में क्या उठा रखा ? द्रोण मृत्यु को प्राप्त हो सकता है, विश्वासघात नहीं कर सकता।

कल चक्रव्यूह की रचना करूँगा। यदि कल कोई अर्जुन को यहाँ से दूर हटा कर ले गया तो निश्चय ही कल उस व्यूह में किसी पाण्डव वीर का निधन होगा।'

द्रोण रात्रि भर चक्रव्यूह की रचना कराते रहे। प्रातःकाल होते ही दोनों सेनाएँ रण-भूमि में उतर आईं। अर्जुन को फिर चित्रगर्त और संसप्तकों ने ललकारा। अर्जुन उनसे लड़ते हुए बहुत दूर निकल गये।

इधर द्रोण द्वारा चक्रव्यूह की रचना का समाचार प्राप्त कर युधिष्ठिर चिंचित अभिमन्यु उनके सामने आकर बोला, 'धर्मराज ! चिन्तित न हों, मैं चक्रव्यूह का भेदन करना जानता हूँ। मैं उससे बाहर निकलना नहीं जानता। जब मैं व्यूह को भेद दूँगा तो बाहर निकलना कौन दुष्कर कार्य होगा ? मुझे आज्ञा हो तो मैं आचार्य द्रोण के चक्र-व्यूह का भेदन करूँ।'

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

धर्मराज युधिष्ठिर ने अभिमन्यु को सेनापति-पद् से विभूषित किया ।

धर्मराज से आज्ञा प्राप्त कर अभिमन्यु उत्तरा से अन्तिम विदा लेने उसके शिविर में गया और सहर्ष बोला, 'उत्तरा ! आज तुम्हारे पति को पाण्डव-सेना का सेनापति बनने का अपूर्व सौभाग्य प्राप्त हुआ है। आचार्य ने पिताजी की अनुपस्थिति में चक्रव्यूह की रचना कर पाण्डवों पर विजय प्राप्त करने का स्वप्न देखा है। तुम देखना आज मैं आचार्य के संकल्प को किस प्रकार विफल बना कर संध्या को शिविर में लौटता हूँ ।'

उत्तरा अभिमन्यु की यह बात सुन कर भयभीत हो गई। वह बोली, 'प्राण नाथ ! आज मैंने बहुत बुरा स्वप्न देखा है। मैंने स्वप्न में देखा कि सात कौरव महारथियों ने मिल कर आपको छल-बल से हताहत कर डाला। आपसे मेरी प्रार्थना है कि आप आज रण-भूमि में न जायें ।'

अभिमन्यु उत्तरा को छाती से लगा कर बोला, 'प्राणाधिके ! वीर क्षत्राणी हो कर तुम यह क्या कह रही हो ? यह पाण्डव-कुल की प्रतिष्ठा का प्रश्न है उत्तरे ! क्या तुम चाहती हो कि तुम्हारे पति का नाम कायरों की पंक्ति में लिखा जाये ?'

उत्तरा ने अश्रुपूर्ण नेत्रों से अपने पति को विदा दी। उसका हृदय बहुत व्याकुल था। उसके नेत्र बार-बार अश्रुओं से पूर्ण हो जाते थे।

उत्तरा से विदा लेकर अभिमन्यु अपनी माता सुभद्रा के पास गया और उनके चरण छूकर विदा ली।

उसके पश्चात् वह वहाँ से माता पांचाली के पास पहुँचा। पांचाली ने अभिमन्यु को छाती से लगा लिया और नेत्रों में आँसू भर कर बोलीं, 'पाण्डव-कुल के सब से छोटे वीर सेनानी ! कौरव-कुल का विध्वंस करो और हमारे हृदयों में जलने वाली प्रखर ज्वाला को शान्त करो। तुम्हारी कीर्ति अमर हो।'

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अभिमन्यु ने स म-भूमि की ओर प्रस्थान किया तो उत्तरा के नेत्रों से अश्रुओं की धारा बह चली। उसने रात्रि में जो भयानक स्वप्न देखा था, वह साकार उसके नेत्रों की पुतलियों में उत्तर आया। उत्तरा का हृदय विदीर्ण हो गया।

माता सुभद्रा ने शोकातुर उत्तरा को अपनी अंक में भर लिया। वह अश्रु पोंछ कर बोलीं, 'बेटी उत्तरा! जिस प्रकार अभिमन्यु तेरा पति है उसी प्रकार वह मेरे भी कलेजे का टुकड़ा है। अभिमन्यु के प्राणों का मोह जितना तुझे है, उससे कम मुझे भी नहीं है। इस कठिन समय में क्षत्रियोचित कर्त्तव्य का पालन करना हमारा धर्म है। अभिमन्यु विजय प्राप्त करके लौटे, हमें यही कामना करनी चाहिये।'

शोकनिमग्न उत्तरा सकरुण वाणी में बोली, 'मैं अपने कर्त्तव्य से अपरिचित नहीं हूँ माताजी! परन्तु मैंने रात्रि को जो स्वप्न देखा था वह मेरे हृदय को विदीर्ण किये दे रहा है। मेरे नेत्रों के सामने अंधकार छा रहा है। मुझे कुछ दिखाई नहीं दे रहा।' यह कह कर वह अचेत हो गई।

माता सुभद्रा ने उत्तरा को अपनी अंक में भर कर पलंग पर लिटा दिया। सुभद्रा का हृदय उत्तरा की यह दशा देख कर अधीर हो गया। वह स्वयं भी बहुत भयभीत थीं।

अभिमन्यु अपनी सेना के साथ, उत्साह से पूर्ण, चक्रव्यूह की दिशा में बढ़ गया। उसे अपने मन में कोई शंका नहीं थी कि वह चक्रव्यूह को छिन्न-भिन्न नहीं कर देगा।

अभिमन्यु को आते देख कौरव-दल अभिमन्यु पर टूट पड़ा, परन्तु अभिमन्यु ने उसके होश उड़ा दिये। अभिमन्यु की भीषण बाण-वर्षा ने शत्रु-दल को बुरी तरह हताहत किया। द्वार-रक्षक जयद्रथ को पछाड़ कर अभिमन्यु व्यूह में घुस गया और उसके भयंकर युद्ध से वहाँ प्रलय-काल उपस्थित हो गया।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अभिमन्यु चक्रव्यूह में प्रवेश कर गया परन्तु उसके अंग-रक्षक व्यूह में प्रवेश न कर सके। उन्हें द्वार पर रोक दिया गया। कौरवों ने अपने त्रस्त व्यूह को फिर से ठीक कर लिया।

अभिमन्यु अकेला व्यूह में अपना पराक्रम दिखाने लगा। अभिमन्यु के सामने दुर्योधन न ठहर सका तो कर्ण उसकी रक्षा के लिये आ गया। कुछ देर में कर्ण को भी पीछे हटना पड़ा।

दुर्योधन के भागते ही अभिमन्यु ने विजय-शंख फूंक दिया और वह आगे बढ़-बढ़ कर शत्रु-सेना का संहार करने लगा। शल्य अभिमन्यु की ओर बढ़े तो अभिमन्यु के अचूक वाणों ने उन्हें मूर्च्छित कर दिया।

दुर्योधन ने युद्ध की यह स्थिति देखी तो वह भयभीत हो गया। उसने अपने सैनिकों को ललकारा। वह क्रोधपूर्ण वाणी में बोला, 'वीरो! आचार्य द्रोण से सहायता की आशा छोड़ दो। वह अपने शिष्य अर्जुन के पुत्र का पराक्रम देख कर युद्ध-धर्म को भूल गये हैं। तुम सब मिल कर एक साथ इस पर आक्रमण करो।'

दुर्योधन की ललकार सुन कर दुश्शासन आगे बढ़ा, परन्तु अभिमन्यु के समक्ष वह न ठहर सका। उसका सारथी उसके प्राणों की रक्षा के लिये रथ को दौड़ा कर ले गया।

अभिमन्यु ने दुर्योधन-सुत-लक्ष्मण और शल्य-सुत सक्य को मौत के घाट उतार दिया। यह देखकर कर्ण अभिमन्यु के सामने आगया।

दुर्योधन आचार्य द्रोण से बोले, 'आचार्य! आप इसे बालक जानकर इस पर दया न करें। यह कौरवों का काल बन कर आया है।'

द्रोण बोले, 'दुर्योधन! मैं तुम्हारे व्यंग्य-वाणों की चिंता न कर अपने कर्त्तव्य का पालन कर रहा हूँ। अभिमन्यु के हाथों में जब तक अस्त्र-शस्त्र हैं, इसे पराजित करना असम्भव है। तुम किसी प्रकार

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इसके अस्त्र रखवा लो तो इसका निधन सम्भव हो सकता है।'

द्रोण का आदेश सुन कर सब कौरव महारथी मिल कर अभिमन्यु पर टूट पड़े। चारों ओर के आक्रमण का अभिमन्यु ने डट कर सामना किया, परन्तु इस महायुद्ध में उसके सब अस्त्र-शस्त्र छिन्न-भिन्न हो गये। उसका सारथी मारा गया। उसका रथ टूट गया। उसके घोड़े मर कर भूमि पर गिर पड़े।

तब दुःशासन के पुत्र ने अभिमन्यु के सिर पर गदा का प्रहार किया। अभिमन्यु भूमि पर गिर पड़ा और कौरव महारथी उस पर टूट पड़े। अभिमन्यु को इस प्रकार अधर्म से मार कर कौरवों ने विजय-घोष किया।

कौरवों का विजय-घोष सुन कर पाण्डव-सैनिक भयभीत होकर शिविर की दशा में भागने लगे। युधिष्ठर यह समाचार पाकर अधीर हो गये और गरज कर बोले, 'वीरो! भागते क्यों हो? वीरता और शौर्य से कौरव-दल पर प्रलय बन कर टूट पड़ो।'

धर्मराज की ललकार सुनकर पाण्डव-पक्ष के उखड़ते हुए पैर जम गये और प्रलयंकारी युद्ध छिड़ गया। पाण्डवों का यह आक्रमण बड़े वेग का हुआ, जिसके सामने कौरव न ठहर सके।

संध्या होने पर शांति-शंख बजा और पाण्डव सेना ने अपने शिविर की ओर मुख किया तो युधिष्ठर के बढ़ते हुए कदम रुक गये। उनके नेत्रों के सामने अंधकार छा गया। आज पाण्डव-कुल के दीपक को उन्होंने अपने हाथ से बुझा दिया था।

अर्जुन युद्ध से लौट रहे थे तो अनेकों अमंगलसूचक घटनाएँ उनके सामने आ रही थीं। कौरवों के शिविर में होने वाला विजय-घोष उनके कानों में पड़ रहा था। कृष्ण समझ गये कि अभिमन्यु वीर गति को प्राप्त हो गया। उन्होंने रथ की गति को तीव्र कर दिया। वे सीधे उसी स्थान पर पहुचे जहां अभिमन्यु का शव पड़ा था।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सुभद्रा शव को अंक में लिये विलाप कर रही थीं और उत्तरा अचेत पड़ी थी, मानो करुणा मूर्तिमान रूप में सामने पड़ी हो। अर्जुन के चारों भाई और पांचाली शोकविह्वल थे।

अर्जुन और कृष्ण को सामने देख कर सुभद्रा के धैर्य का बाँध टूट गया। वह रो-रो कर पगली-सी हो गईं। अर्जुन ने अभिमन्यु का शव रक्त में लथ-पथ देखा तो वह भी खड़े न रह सके। उनका हृदय विदीर्ण हो गया। भीम ने अश्रुओं के मध्य उन्हें आज की स्थिति बताई।

कृष्ण क्रोधित होकर बोले, 'धिक्कार है तुम्हें द्रोण! तुमने निःशस्त्र बालक को अपने सामने इस प्रकार अधर्म से मरते देखा। तुमने अभिमन्यु को छल से मारा है तो तुम्हें भी इसका फल भोग भोगना होगा। सात-सात महारथियों ने मिल कर एक बालक के प्राण लिये।

अर्जुन! उठो और प्रलयंकारी रूप धारण करो।'

कृष्ण के वचन सुन कर अर्जुन के नेत्र लाल हो गये। वह सक्रोध बोले, 'अभिमन्यु के एक-एक हत्यारे को जब तक मृत्यु के घाट न उतार दूँगा, तब तक मेरे हृदय को शान्ति प्राप्त न होगी।'

श्रीकृष्ण ने पूछा, 'चक्रव्यूह के सिंहद्वार का रक्षक कौन था आर्य भीम?'

भीम ने बताया, 'जयद्रथ व्यूह के सिंहद्वार का रक्षक था। उसी ने हमें व्यूह में प्रवेश नहीं करने दिया।'

अर्जुन की क्रोधाग्नि भड़क उठी। उन्होंने दूसरे दिन जयद्रथ का सूर्यास्त से पूर्व संहार करने की प्रतिज्ञा की। अर्जुन बोले, 'कृष्ण! जिस जयद्रथ को हमने बन्दी बनाकर प्राण-दान दिया, उसी ने आज हमें यह दिन दिखाया। मैं आपकी सौगन्ध खाकर प्रतिज्ञा करता हूँ कि कल सूर्यास्त से पूर्व या तो उसे यमपुरी पहुँचा दूँगा, अन्यथा स्वयं चिता पर जल कर प्राण दे दूँगा।'

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कृष्ण ने देखा अर्जुन रौद्रावतार से प्रतीत हो रहे थे। उनके भुजदण्ड फड़क रहे थे और नेत्र आग हो गये थे।

कौरवों के गुप्तचरों ने जयद्रथ को जाकर अर्जुन के प्रण की सूचना दी तो वह कांप गया। वह दुर्योधन के शिविर में पहुँचा और भयभीत वाणी में बोला, 'महाराज! अब आप या तो मेरी रक्षा करें, अन्यथा मुझे अपने देश लौटने की आज्ञा प्रदान करें। आप कहें तो मैं कहीं किसी जगह जाकर छिप जाऊँ। कल अर्जुन जब मुझे नहीं खोज सकेगा तो वह स्वयं जल कर भस्म हो जायेगा और आपकी विजय हो जायेगी।'

दुर्योधन उस दिन की अपनी विजय के गर्व में फूला नहीं समा रहा था। अभिमन्यु को मार कर वह अपने पुत्र लक्षमण के शोक को भूल गया था। वह सगर्व बोला, 'क्या कायरों जैसी बातें करते हो जयद्रथ! तुम घर भाग जाओगे तो हमारे मस्तक पर कलंक का टीका लग जायेगा। कल हमारी सारी सेना और हमारे सब महारथी तुम्हारी रक्षा करेंगे। मैं अभी जाकर आचार्य द्रोण से मिलता हूँ। कल ऐसे व्यूह की रचना की जायेगी जो अभेद्य हो और तुम्हारे पास तक पक्षी भी पर न मार सके।'

दुर्योधन की आशापूर्ण बात सुनकर जयद्रथ के हृदय को तनिक धैर्य बंधा, परन्तु अन्दर से उसकी आत्मा भयभीत ही रही। अर्जुन के बाणों की विकरालता से वह परिचित था।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दुर्योधन का मन आज की द्रोणाचार्य की वीरता और नीतिकुशलता पर मुग्ध हो गया था। वह आज आनन्दविभोर हो रहा था। उसे अब अपनी विजय में कोई शंका नहीं रही थी। उसे विश्वास हो गया था कि द्रोण जयद्रथ के प्राणों की रक्षा में पूर्ण सफल होंगे और इसके फलस्वरूप अर्जुन चिता पर जल कर भस्म हो जायेगा। अर्जुन के मरते ही पाण्डवों की शक्ति समाप्त हो जायेगी और युद्ध-भूमि में कौरवों की विजय-पताका फहरायेगी। अर्जुन के न रहने पर कर्ण के सामने कौन ठहर सकेगा?

दुर्योधन द्रोण के शिविर में पहुँचा और उनसे भेंट करके बोला, 'आचार्य! आज पहिला दिन है जब हम गर्व से अपना मस्तक ऊँचा करके चल पाये हैं। आपकी नीतिकुशलता ने हमें यह दिन दिखाया है। यदि कल आप शकटव्यूह की रचना कर जयद्रथ के प्राणों की रक्षा में सफल हो जायें तो फिर हमारी विजय में कोई संदेह न रहे।'

द्रोण के हृदय में अभिमन्यु के अधर्मपूर्ण निधन का काँटा बुरी तरह गुभा था। उन्हें दुर्योधन की प्रशंसा भली नहीं लगी, परन्तु ऊपर से उन्होंने उत्तर दिया, 'दुर्योधन! मुझसे जितना भी जयद्रथ की प्राण-रक्षा का प्रयत्न हो सकेगा उसे करने में कोई कसर उठा नहीं रखूँगा। मेरा प्रयत्न यही रहेगा कि जयद्रथ के प्राणों की रक्षा हो।'

दुर्योधन वहाँ से प्रसन्नतापूर्वक अपने शिविर को लौटा। अर्धरात्रि में शकटव्यूह की रचना की गई और जयद्रथ को उसके पिछले भाग में छिपा कर रखा गया।

कृष्ण ने पाण्डव-पक्ष के सब महारथियों को एकत्रित कर आगामी दिन की युद्ध-नीति प्रसारित की। रात्रि भर कृष्ण और अर्जुन को नींद

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

नहीं आई। वे आगामी दिन के युद्ध की योजना बनाते रहे।

प्रातःकाल होते ही पाण्डव-सेना मैदान में उतरी। उसने देखा आचार्य द्रोण ने उनके सामने शकटव्यूह की रचना की हुई थी। आज युद्ध का चौदहवाँ दिन था।

रणभेरी बज उठी। युद्ध आरम्भ हुआ। अर्जुन का रथ तीर के समान दौड़ा और कौरवों के दुर्भेद्य व्यूह के सिंहद्वार पर जा पहुँचा। आचार्य द्रोण सिंहद्वार की रक्षा कर रहे थे। उन्होंने निश्चय कर लिया था कि वह अर्जुन को व्यूह में प्रवेश नहीं करने देंगे।

अर्जुन ने आचार्य से व्यूह में प्रवेश करने की आज्ञा माँगी तो द्रोण मुस्करा कर बोले, 'अर्जुन! यह गुरु का द्वार नहीं, युद्ध का द्वार है। इसके अन्दर प्रवेश प्राप्त करना हमारी आज्ञा पर नहीं, तुम्हारे रण-कौशल पर निर्भर करता है। आगे बढ़ो और व्यूह का भेदन करो।'

द्रोण और अर्जुन का भीषण युद्ध छिड़ गया। दोनों ओर से तीरों की वर्षा होने लगी।

आचार्य द्रोण और अर्जुन ने इतना भयंकर युद्ध किया कि अर्जुन का पर्याप्त समय वहीं निकल गया। कृष्ण बोले, 'अर्जुन! इनसे जूझते-जूझते तो सूर्य अस्त हो जायेगा और पापी जयद्रथ का संहार न हो सकेगा। मैं चुपके से अपना रथ यहाँ से हटा कर ले चलता हूँ। तुम सावधानी से द्रोण पर बाण-वर्षा करते रहो।'

अर्जुन के रथ को घूमते देख कर द्रोण बोले, 'क्या वीर अर्जुन अपनी वह प्रतिज्ञा भूल गया कि सम्मुख आये शत्रु को हराये बिना वह सामने से नहीं हटेगा।'

अर्जुन दौड़ते हुए रथ पर खड़े होकर बोले, 'अर्जुन की वह प्रतिज्ञा गुरुदेव के लिये नहीं है।'

द्रोण ने अर्जुन का पीछा किया परन्तु अर्जुन भीषण मार-काट

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

करते हुए आगे निकल गये। भीम ने आगे बढ़ कर द्रोण के रथ पर भीषण प्रहार किया। उनका रथ खण्ड-खण्ड हो गया।

अर्जुन को वहाँ से हट कर व्यूह में प्रवेश करते देख दुर्योधन भय-भीत हो गया। उसके क्रोध का पारावार न रहा। वह सक्रोध आचार्य द्रोण से बोला, 'गुरुदेव ! यदि अर्जुन पर इतनी ममता थी तो जयद्रथ को अभय-दान क्यों दिया था ? अब अर्जुन को जयद्रथ के पास पहुँचने से कौन रोक सकता है ? यदि आप सावधानी से लड़ते तो क्या वह इस प्रकार व्यूह में प्रवेश कर पाता ? क्या वह आप से बच कर निकल सकता था ?'

दुर्योधन की यह बात सुनकर आचार्य द्रोण के दिल में क्रोध की ज्वाला भड़क उठी। वह बोले, 'दुर्योधन ! मैं अब वृद्ध हो गया हूँ। मैं ही नही कृष्ण और अर्जुन को संसार में कोई परास्त नहीं कर सकता। मैं तुम्हें अभेद्य कवच पहनाता हूँ। तुम स्वयं जाकर उनके बल और शौर्य की परीक्षा लो। तुम्हारे बदन पर किसी अस्त्र का प्रभाव न होगा।'

द्रोण ने दुर्योधन को अभेद्य कवच दिया, जिसे पहन कर दुर्योधन अर्जुन से लोहा लेने चला। पाण्डवों ने आचार्य द्रोण पर आक्रमण कर दिया। कौरव-सेना में भगदड़ मच गई। आचार्य ने कुपित होकर धृष्टद्युम्न पर विकराल बाण छोड़ा, परन्तु उसने उसे बीच में ही काट दिया।

द्रोण को इधर पाण्डवों ने घेर लिया और दूसरी ओर अर्जुन जयद्रथ के निकट जा पहुँचा। अर्जुन को जयद्रथ के निकट देख कर दुर्योधन बीच में आगया। अर्जुन ने दुर्योधन पर आक्रमण किया, परन्तु उसके अस्त्र विफल हो गये। वह समझ गये कि द्रोण ने उसे अभेद्य कवच देकर भेजा है। अर्जुन ने दुर्योधन के हाथों को कवच से बाहर देख कर उन्हीं को लक्ष बनाया और उसके दोनों हाथ बेकार कर दिये। उसके हाथों

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

से अस्त्र-शस्त्र छूट कर नीचे गिर पड़े।

अर्जुन ने उग्र रूप धारण कर कौरव-सेना को रूई के समान धुनना आरम्भ कर दिया। उस समय सम्पूर्ण कौरव-सेना उसी स्थल पर आ गई थी। उसका लक्ष्य केवल जयद्रथ की रक्षा करना था।

यह भयंकर स्थिति देख कर कृष्ण ने पांचजन्य शंख फूँका। शंख की ध्वनि युधिष्ठिर के कानों में पड़ी तो वह सात्यिक से बोले, 'सात्यिक! शत्रु की असंख्य सेना अर्जुन पर आक्रमण करने जा रही है। तुम तुरन्त अर्जुन की रक्षा के लिये पहुँचो। इस समय मेरी चिन्ता छोड़ दो।'

सात्यिक अर्जुन की सहायता के लिये दौड़ा तो द्रोण उसके सामने आ गये। सात्यिक ने द्रोण के रथ, घोड़े और सारथी सभी को समाप्त कर दिया। यह देख कर द्रोण क्रोध से पागल हो गये। वह बोले, 'सात्यिकि! देख रहा हूँ तेरे शीर्ष पर काल मंडरा रहा है। यदि तू अर्जुन की भाँति भाग न खड़ा हुआ तो आज तुझे यमलोक पहुँचा दूँगा।'

सात्यकि बोला, 'जब मेरे गुरु अर्जुन आपके सामने से हट गये तो मैं भला क्या चीज हूँ आपके सामने? आचार्य के सामने मैं कैसे ठहर सकता हूँ?' यह कह कर उसने अपना रथ घुमा दिया। वह कौरवों की अपार सेना को चीरता हुआ अर्जुन के निकट जा पहुँचा।

युधिष्ठिर ने भीम से कहा, 'भीम! अर्जुन संकट में है। तुम तुरन्त उसकी रक्षा के लिये जाओ। सिंहद्वार से न जाकर व्यूह में दाँई ओर से घुसना। सामने से आचार्य द्रोण तुम्हे प्रवेश नहीं करने देंगे।'

भीम अपने शंख को बजाता हुआ दाँई ओर से व्यूह में घुस गया और शत्रु-सेना को भूमि पर बिछाता हुआ अर्जुन के पास जा पहुँचा।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भीमसेनी शंख का शब्द कौरवों के कानों में पड़ा तो कौरव-सेना काई की तरह फटती चली गई। कौरव-सेना का साहस छूटने लगा।

भीम के शंख-रव को सुन कर अर्जुन ने प्रत्युत्तर में अपना शंख बजाया। अर्जुन का हृदय कौरव-दल को भागते देख कर हर्ष से भर गया। अर्जुन और भीम की शंख-ध्वनि धर्मराज ने सुनी तो उनके व्याकुल हृदय को शांति मिली। तभी उन्होंने कौरव-सेना को भागते देखा। कौरव सेना में भगदड़ मच गई।

भीम को अर्जुन के निकट पहुँचते देख कर दुर्योधन के इक्कीस भाइयों ने एक साथ मिल कर भीम पर आक्रमण किया। भीम ने इक्कीस-के-इक्कीस को यमपुरी पहुँचा दिया। यह देख कर कर्ण भीम पर टूट पड़ा। दोनों का घमासान युद्ध आरम्भ हो गया। कर्ण के सामने भीम न ठहर सके। वह घायल हो कर भूमि पर गिर पड़े। कर्ण भीम को मारने के लिये लपका तो उसे माता कुन्ती को दिया गया अपना वचन याद आ गया। वह ठिठक कर पीछे हट गया और हंस कर बोला, 'भीम ! हो चुकी तेरी वीरता की परीक्षा। जा अपने शिविर को लौट जा।'

तब तक भीम को तनिक साँस आ गया। उसने कर्ण का धनुष छीन कर टुकड़े-टुकड़े कर डाला और खुम ठोक कर बोला, 'कर्ण ! हार-जीत अवसर की होती है। मल्ल-युद्ध में दो-दो हाथ हो जायें जरा।'

कर्ण भीम के मल्ल-युद्ध से परिचित था। भीम की भुजाओं में फंस जाना काल के मुख में जाने के समान था। उससे मल्ल-युद्ध करना उसके लिये सम्भव न था। वह भयभीत हो गया।

तभी सत्यिकि सामने से आता दिखाई दिया। भूरिश्रवा ने सात्यिकि को देख कर उस पर आक्रमण कर दिया। सात्यिकि युद्ध करते-करते थक गया था। भूरिश्रवा ने सात्यकि का रथ छिन्न-भिन्न कर दिया।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भूरिश्रवा सात्यकि पर तलवार का वार करना ही चाहता था कि अर्जुन के वाण ने उसके दोनों हाथों को काट कर गिरा दिया।

भूरिश्रवा अर्जुन से बोला, 'अर्जुन ! तुमने यह छलिया कृष्ण के कहने से धर्मविरुद्ध कार्य किया। जब मैं तुमसे युद्ध नहीं कर रहा था तो तुमने मुझ पर वार क्यों किया ?'

अर्जुन बोले, 'भूरिश्रवा ! गिरे हुए सात्यकि पर तलवार लेकर झपटना कहाँ का धर्म था ? सात महारथियों का मिल कर अस्त्रहीन अभिमन्यु को मारना कहाँ का धर्म था ?

क्या तुम लोग भी धर्म की दुहाई देने का मुँह रखते हो ?'

भूरिश्रवा मौन हो गया। उसने शर-शय्या पर बैठ कर प्राण त्याग देने का निश्चय किया।

कृष्ण ने विरथ सात्यिकि और भीम को अपने रथ पर बिठाकर रथ आगे बढ़ाया और वे ठीक जयद्रथ के रथ के पास पहुँच गये। अर्जुन के रौद्र रूप को देखकर दुर्योधन भय से काँप गया। उसने कर्ण से कहा, 'कर्ण ! आगे बढ़ कर अर्जुन को रोको।'

कर्ण बोला, 'मेरा अंग-अंग भीम ने तोड़ दिया। मैं इस समय बहुत थका हुआ हूं। फिर भी तुम्हारी आज्ञा का पालन करूँगा।'

अर्जुन शंख बजाकर बाज की तरह शत्रु-सेना पर टूट पड़े। रक्त की सरिता बह चली। शवों के ढेर लग गये। कौरव-दल हताश होकर भाग खड़ा हुआ, परन्तु तभी सब ने देखा कि सूर्य पश्चिम दिशा की लालिमा के निकट जा चुका था।

कौरव-महारथियों ने जयद्रथ को अपने पीछे छिपा लिया। वे उसकी रक्षा का युद्ध कर रहे थे। दोनों ओर से ऐसी वाणों की वर्षा हुई कि आकाश तीरों से आच्छादित हो गया और भूमि पर अंधकार छा गया। अर्जुन ने दिव्यास्त्र द्वारा आकाश को अंधकापूर्ण बना दिया। सब को लगा कि सूर्य अस्त हो गया।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सूर्य को अस्त मान कर युद्ध समाप्ति का बिगुल बज गया। बिगुल बजते ही जयद्रथ निकल कर बाहर आ गया और अर्जुन से बोला, 'अर्जुन ! अब यह गाण्डीव मेरे हवाले करो और चिता पर जलने के लिये उद्यत हो जाओ।'

अर्जुन का मुख पीला पड़ गया। उसके हाथ से गाण्डीव छूट गया। कृष्ण ने गाण्डीव अपने हाथ में ले लिया। उनका चेहरा भी गम्भीर बना हुआ था।

अर्जुन के चिता पर जलने की तैयारी होने लगी। पाण्डव-पक्ष शोकाकुल था। कौरव-पक्ष हर्ष से उन्मत्त था।

कौरवों को भ्रम में डालने के लिये कृष्ण बोले, 'धर्मराज युधिष्ठिर ! चिता तैयार कराओ। प्रणवीर अर्जुन वीरगति को प्राप्त हो रहे हैं। इसमें हताश होने की कोई आवश्यकता नहीं। यदि वह अपनी प्रथम प्रतिज्ञा पूर्ण नहीं कर सके तो दूसरी प्रतिज्ञा पूर्ण करेंगे।'

धर्मराज युधिष्ठिर ने चिता तैयार कराई और उसमें काँपते हुए हाथों से अग्नि प्रज्वलित की।

कृष्ण अर्जुन से गले मिले और गम्भीर वाणी में बोले, 'अर्जुन ! चिता पर बैठकर अपना प्रण पूर्ण करो। तुम वीर गति को प्राप्त हो रहे हो।'

अर्जुन चिता की ओर बढ़े तो हर्ष से उन्मत्त जयद्रथ कौरवों के बीच से निकल कर सामने आ गया। वह हँसकर बोला, 'तुम्हें भय लग रहा है अर्जुन ? अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करके कुरु-कुल की मर्यादा को निभाओ।'

अर्जुन मौन चिता की ओर बढ़े। कृष्ण अपने हाथ में गाण्डीव लिये उनके साथ थे। वातावरण नितान्त गम्भीर था। पाण्डव-पक्ष में शोक छाया हुआ था।

अर्जुन चिता में बैठने से पूर्व एक बार फिर कृष्ण से गले मिले।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कृष्ण मुस्कराकर पश्चिम-दिशा की ओर आकाश पर देखकर गाण्डीव अर्जुन की ओर बढ़ाते हुए बोले, 'अर्जुन ! जयद्रथ तुम्हारे सामने है। सूर्य देवता पश्चिम दिशा में मुस्करा रहे हैं। उन्हें बलि दो इस नर-पिशाच की।'

अर्जुन की दृष्टि पश्चिम-दिशा की ओर गई तो देखा आकाश में सूर्य निकल कर सामने आ गया। उनकी दृष्टि जयद्रथ पर गई। उन्होने श्री कृष्ण के हाथ से गाण्डीव लेकर तरकश से तीर निकाला और एक ही तीर से जयद्रथ का सिर धड़ से अलग कर दिया। जयद्रथ का धड़ भूमि पर गिर गया।

आकाश में सूर्य को देखकर कौरव भौंचक्के रह गये। कृष्ण ने पांचजन्य-शंख बजा कर अपने शिविर में विजय-संदेश भेजा। अर्जुन का देवदत्त शंख बजा। 'जयद्रथ मारा गया' की ध्वनि वायुमंडल में गूंज उठी। पाण्डव-शिविर में हर्षसूचक बाजे बजने लगे। अर्जुन के सब भाईयों ने अर्जुन को हाथों पर उठा लिया। श्री कृष्ण की नीति कुशलता से पाण्डव-पक्ष गद्-गद् था।

जयद्रथ की मृत्यु से कौरव-पक्ष शोक-सागर में डूब गया। दुर्योधन की निराशा का पारावार न था। भीम ने आज उसके इक्कीस भाइयों को मृत्यु के घाट उतार दिया था। भूरिश्रवा का भी आज निधन हो गया था और अन्त में उसका बहनोई जयद्रथ की मृत्यु को प्राप्त हुआ। आज का दिन कौरव-पक्ष के लिये अत्यन्त विनाशकारी सिद्ध हुआ।

दुर्योधन जला-भुना आचार्य द्रोण के शिविर में पहुँचा और क्रोधावेश में बोला, 'गुरुदेव ! क्या आपने हमारा सर्वनाश कराने का निश्चय किया है ? आप जैसा योद्धा हमारा सेनापति होने पर भी हमारी हार होती जा रही है। हमारी सेना भी अब पाण्डवों से बहुत कम रह गई है। आपका पाण्डवों से इतना अधिक मोह है तो

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

स्पष्ट कह दीजिये, जिससे मैं कोई अन्य प्रबन्ध करूं ।'

दुर्योधन की यह बात सुन कर आचार्य द्रोण क्रोधित होकर बोले, 'दुर्योधन ! तुम बराबर मेरी भर्त्सना करते चले जा रहे हो । तुम मुझ पर पक्षपात का दोष लगा रहे हो । तुम्हारा अन्नभोगी होने के कारण मैंने न्याय के विरुद्ध अस्त्र उठाये । तुम्हारे साथ मैं भी पाप का भागी बना हूँ । तुम्हारी पराजय का कारण मैं नहीं, तुम्हारा अधर्म है । कल सात महारथियों ने मिलकर अस्त्रहीन अभिमन्यु को मार डाला । क्या उसका फल तुम्हें न भोगना होगा ? तुम्हारी पराजय और तुम्हारे विनाश को ब्रह्मा भी नहीं रोक सकता । विष का बीज बोकर तुम अमृत-फल प्राप्त करने की आशा करते हो ?'

द्रोण की करारी फटकार सुनकर दुर्योधन नतमस्तक हो गया । वह चुपचाप अपने शिविर को लौट गया । उसमें अब साहस नहीं था कि उनके सामने एक शब्द भी बोल पाता ।

दूसरे दिन द्रोण ने युद्ध में जो उग्र रूप धारण किया उसे देखकर पाण्डव भयभीत हो गये । दुर्योधन भी युद्ध में अपना पराक्रम दिखाने में पीछे न रहा, परन्तु धर्मराज युधिष्ठिर की अनवरत बाण-वृष्टि के सामने उसे पीठ दिखाकर भागना पड़ा ।

महाबली भीम की दृष्टि सोमदत्त पर गई । वह पाण्डव-सेना का बुरी तरह संहार कर रहा था । भीम द्रोण को छोड़ कर सोमदत्त पर झपटे । भीम की गदा के एक ही वार से सोमदत्त मूर्छित होकर भूमि पर गिर गया । यह देखकर सोमदत्त के पुत्र ने भीम पर आक्रमण कर दिया । भीम ने एक ही वार में उसे यमपुरी पहुँचा दिया । सोमदत्त के पुत्र को गिरते देखकर दुर्योधन के सोलह भाई भीम पर टूट पड़े । भीम ने उन्हें भी समाप्त कर दिया । आज भीम ने कर्ण के सूत-जात भाई वृषथ और शकुनि के भाई शतचन्द्र को भी यमलोक पहुँचा दिया ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भीम के इस उस रूप को देखकर कर्ण पाण्डव-सेना पर टूट पड़ा। यह देखकर अर्जुन कर्ण के समक्ष आ डटे और दो ही बाणों से उसके सारथी तथा रथ को समाप्त कर कर्ण को निरथ कर दिया। कर्ण को इस प्रकार निरथ देख कृपाचार्य अपना रथ दौड़ाकर वहां पहुँच गये और उसे अपने रथ पर बिठा लिया।

कर्ण ने फिर भयंकर युद्ध करना आरम्भ कर दिया। अर्जुन उधर बढ़ने लगे तो कृष्ण ने अर्जुन को रोक कर घटोत्कच को ललकारा। घटोत्कच ने भयंकर वेग से युद्ध करना आरम्भ किया। उसके युद्ध से कौरव-दल में हा-हाकार मच गया। कर्ण के छक्के छूट गये और दुर्योधन को दिखाई दिया कि युद्ध का वही अन्तिम दिन था।

दुर्योधन बोला, 'कर्ण! तुम्हारी वह अमोध शक्ति किस दिन काम आयेगी? अर्जुन तक पहुँचने का तो घटोत्कच तुम्हें अवसर ही नहीं देगा। क्या उसे लेकर ही तुम मृत्युलोक को सिधारना चाहते हो? देख नहीं रहे हो इसने हमारी सारी सेना को काट-काट कर भूमि पर बिछा दिया है।'

दुर्योधन के ये शब्द सुन कर कर्ण ने अपनी उस अमोध-शक्ति का घटोत्कच पर प्रहार कर दिया, जिसे उसने अर्जुन के लिये सुरक्षित रखा हुआ था और घटोत्कच संज्ञाशून्य होकर भूमि पर गिर पड़ा।

घटोत्कच के मरते ही पाण्डव-सेना में हा-हाकार मच गया। पाण्डव-सेना भयभीत हो गई।

कृष्ण यह देखकर कि कर्ण उस अमोध-शक्ति का प्रयोग कर चुका, जिससे वह अर्जुन को मार सकता था, अर्जुन से बोले, 'अर्जुन! अब निर्भीक होकर कर्ण पर आक्रमण करो और इसे इसकी करनी का दण्ड दो। अब यह तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ सकता।'

कृष्ण के उत्साहपूर्ण शब्द सुनकर अर्जुन ने कर्ण पर भयंकर आक्रमण किया। अर्जुन के आक्रमण ने कौरवों के पैर उखाड़ दिये

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

और उनकी सेना भी खड़ी हुई। अर्जुन ने आचार्य कृपाचार्य और कर्ण को निरस्त्र कर दिया और उनके रथ, घोड़े तथा सारथी सब समाप्त करके कहा, 'जाओ, अब दूसरे अस्त्र, रथ, घोड़े और सारथी लेकर कल प्रातः काल अर्जुन से युद्ध करने आना। अर्जुन निरस्त्रों पर वार नहीं करता। वह उन लोगों की तरह कायर और नीच नहीं है जो निरस्त्र बालक पर सात-सात महारथी मिलकर प्रहार करते हैं।'

कर्ण और कृपाचार्य गर्दन नीची किये, अपने शिविरों को लौट गये। उनके सिर लज्जा से झुके हुए थे।

उस दिन रात्रि को कृष्ण ने फिर पाण्डव-वीरों को मंत्रणा के लिये आमंत्रित किया और बोले, 'अर्जुन! कल आचार्य द्रोण का वध करना है। द्रोण के रहते युद्ध समाप्त नहीं होगा। युद्ध को अब और लम्बा करना उचित नहीं।'

आज युद्ध में यों कर्ण ने घटोत्कच का वध अवश्य कर दिया था, परन्तु कौरवों की बहुत बड़ी क्षति हुई थी। भीम ने दुर्योधन के सोलह भाईयों, मामाओं और आत्मीय जनों को मृत्यु के घाट उतार दिया था। घटोत्कच ने तो उनकी सेना का आज सफाया ही कर दिया था। उनकी सैनिक संख्या बहुत कम रह गई थी।

दुर्योधन ने फिर द्रोण के पास जाकर अपनी वही बात दोहराई और बोला, 'गुरुदेव! आप धर्म-धर्म कहकर बराबर पाण्डवों की रक्षा करते जा रहे हैं। यदि आज रात्रि भर युद्ध होता रहता तो हम रात्रि में पाण्डवों के दल का सफाया कर डालते।'

दुर्योधन की बात सुनकर द्रोणाचार्य क्रुद्ध होकर बोले, 'जब तक मैं सेनापति हूँ धर्म विरुद्ध कोई कार्य नहीं करूंगा। रात-दिन लड़ते रहना मनुष्यों का काम नहीं है! मैं अपने रहते छल-प्रपंच को प्रश्रय नहीं दे सकता। दादा समाप्त हो गये, अब मेरी बारी है। इसके पश्चात् तुम्हारी जो इच्छा हो सो करना। जाओ, अब भविष्य में तुम्हें

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

व्यंग्य-वाण छोड़ने का अवसर नहीं मिलेगा।'

दुर्योधन वहाँ से चला आया। दूसरे दिन युद्ध आरम्भ हुआ और लोहे से लोहा बज उठा। द्रोण का विकराल रूप देखकर युधिष्ठिर कृष्ण से बोले, 'केशव ! आज द्रोण का रूप बहुत उग्र हो गया है। ज्ञात होता है दुर्योधन ने इन्हें बहुत अधिक चिढ़ा दिया है। इसी लिये यह प्रचण्ड अग्नि की वर्षा कर रहे हैं।'

कृष्ण मुस्करा कर बोले, 'दीपक की लौ, बुझने से पूर्व, इसी प्रकार आकाश को चूमती है, इसी प्रकार भड़कती है धर्मराज ! द्रोण का युद्ध-कौशल देखना है तो आज देख लीजिये। द्रोण का संरक्षण भीष्म ने किया था, दुर्योधन या धृतराष्ट्र ने नहीं। यह द्रोण उस समय थे जब दादा भीष्म के पास आये, इस समय नहीं। फिर क्यों आचार्य द्रोण ने अधर्म का पक्ष लिया ? दादा भीष्म और आचार्य द्रोण ने आपके विरुद्ध युद्ध में भाग लेकर महान् अधर्म-कार्य किया। इन दोनों ने अपने उज्जवल चरित्रों पर कालिमा पोत ली। दादा भीष्म ने अपने समस्त जीवन की अर्जित त्याग और तपस्या की निधि को दुर्योधन के अधर्म की भट्टी में झोंक दिया। इन्होंने, 'पितामह' और 'दादा' शब्दों को कलंकित किया है। आचार्य द्रोण अपने आचार्य पद को कलुषित कर रहे हैं। इन्हें पाण्डवों के विरुद्ध शस्त्र ग्रहण कदापि नहीं करने चाहिये थे।

आप कहेंगे कि दादा और द्रोण के हृदय आपके साथ हैं। मैं उन हृदयों को व्यर्थ समझता हूँ जो धर्म के मार्ग पर चलने के लिये व्यक्ति को प्रेरित न कर सकें। वे हृदय नहीं, पत्थर हैं। मैं पांचाली के अपमान को भूला नहीं हूँ। आचार्य कहलाने वाले यह द्रोण चुपचाप बैठे उस अधर्म-कृत्य को देखते रहे। इनकी आत्मा नष्ट हो चुकी थी। दुर्योधन के टुकड़ों ने इन्हें पथ-भ्रष्ट कर दिया। इनका ब्राह्मणत्व नष्ट हो चुका। मेरी दृष्टि में यह श्रद्धा नहीं, घृणा के पात्र हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

यह आज रण में पराक्रम दिखाने आये हैं। कल निरस्त्र बालक अभिमन्यु का निधन कराते इन्हें लज्जा नहीं आई। निहत्थे बालक पर सात-सात महारथियों को झपटते देख कर उसकी रक्षा के लिये इनके भुज-दण्ड न फड़के। यह अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करने का स्वप्न देखते रहे और पाण्डव-वीर के निधन के स्थान पर पाण्डव-बालक का निधन करके यह गर्व से फूल गये। धिक्कार है इनके आचार्यत्व और ब्राह्मणत्व को। इस कलंक को मिटाना होगा धर्मराज! पृथ्वी इनके पाप के बोझ से दब रही है।'

धर्मराज का हृदय द्रोण के प्रति ग्लानि से भर गया। धर्मराज उत्तेजित होकर द्रोण से भिड़ गये। महाराज विराट और द्रुपद भी उनके साथ थे। द्रोण महाराज द्रुपद को देखकर आग-बगूला हो गये। युद्ध की विकरालता बढ़ गई। द्रोण ने द्रुपद और विराट को अपना प्रधान लक्ष्य बनाया और उन्हें मृत्यु के घाट उतार दिया। इससे युद्ध का रूप और भयंकर हो गया।

द्रुपद के निधन को देखकर उनके पुत्र धृष्टद्युम्न ने अपने पिता के हंतक द्रोण को मारने की प्रतिज्ञा ली। वह प्रलय का बादल बनकर उन पर बरस पड़ा।

द्रुपद और विराट के निधन से पाण्डव-दल के क्रोध का पारावार न रहा। उन्होंने द्रोण पर भयंकर आक्रमण किया, परन्तु द्रोण अडिग रहे। उनके बाणों की वर्षा पाण्डव-पक्ष का बुरी तरह ध्वंस कर रही थी।

यह देख कर धर्मराज युधिष्ठर चिंतित हुए। कृष्ण इस स्थिति को देख कर बोले, 'धर्मराज! जब तक द्रोण के हाथों में धनुष-बाण रहेंगे तब तक इन्हें मारना असम्भव है। इस समय नीति से काम लेना होगा। यदि किसी प्रकार इनके कानों में ये शब्द पड़े कि इनका पुत्र अश्वस्थामा मारा गया तो इनके हाथ ढ़ीले पड़ सकते हैं। पुत्र के शोक

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

में विह्वल होकर धनुष-बाण इनके हाथों से गिर जायेंगे। तब इनकी मृत्यु सम्भव होगी, अन्यथा नहीं।'

धर्मराज द्रोण के निधन के लिये इस षडयन्त्र में सम्मिलित होने को उद्यत नहीं थे। कृष्ण ने तभी अवन्तिनरेश के अश्वस्थामा नामक हाथी का वध करा दिया। भीम ने कृष्ण के संकेत पर उसे मार डाला और युधिष्ठिर से ये शब्द उच्चारण करने का अनुरोध किया, 'अश्वस्थामा मृत नरो वा कुंजरो वा।'

कृष्ण के नीति संचालन में पाण्डव-पक्ष अश्वस्थामा हाथी के मरने पर एक स्वर से चिल्लाया, 'अश्वस्थामा मारा गया।'

द्रोण के कानों में अश्वस्थामा के निधन की बात पड़ी तो उन्हें उसका विश्वास न हुआ। उन्होंने कृष्ण का विश्वास नहीं किया। वह धर्मराज युधिष्ठिर से इस कथन की पुष्टि चाहते थे। वह युधिष्ठिर के अतिरिक्त अन्य किसी का विश्वास करने को उद्यत नहीं थे।

युधिष्ठिर ने कृष्ण के बताये हुए पूर्व निश्चित शब्द उच्चारण किये। उनके मुख से ज्यों ही ये शब्द निकले, 'अश्वस्थामा मृत...' कृष्ण ने घनगर्जन के समान ध्वनि में बाजे बजवा दिये। द्रोण युधिष्ठिर के केवल इतने ही शब्द सुन पाये। उनके धनुष-बाण हाथों से छूट कर गिर गये। उनके बदन में प्राण मानो शेष नहीं रहा।

धृष्टद्युम्न अवसर देख रहा था। द्रोण के हाथों से धनुष-बाण गिरते ही उसने उनका सिर उतार लिया और अपने पिता को मृत्यु-लोक पहुँचाने वाले का अन्त कर अपने हृदय में जलने वाली ज्वाला को शान्त किया।

द्रोण की मृत्यु का समाचार अश्वस्थामा ने सुना तो उसने पाण्डव-सेना का वध करने के लिये नारायणास्त्र का प्रयोग किया। इससे पाण्डव-सेना भयभीत हो गई। कृष्ण उस अस्त्र का प्रतिकार जानते थे। उन्होंने पाण्डव-सेना को सचेत कर उस अस्त्र का प्रभाव विफल कर दिया।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उस अस्त्र का प्रभाव नष्ट होने पर अर्जुन ने अश्वस्थामा को ललकारा। अश्वस्थामा ने आग्नेयास्त्र का प्रयोग किया। उस अस्त्र से अग्नि की वर्षा होने लगी। अर्जुन ने ब्रह्मास्त्र का प्रयोग कर अश्वस्थामा के अग्नेयास्त्र को ठण्डा कर दिया।

यह देख कर अश्वस्थामा रण-भूमि से भाग गया। उसके रण से भागते ही कौरव-दल के पैर उखड़ गये और सेना में भगदड़ मच गई। पाण्डव-पक्ष ने विजय-दुन्दुभी बजा दी।

आचार्य द्रोण की मृत्यु का सामाचर संजय ने धृतराष्ट्र को दिया तो वह विक्षिप्त हो गये। उन्हें अब अपने पुत्रों की रक्षा की कोई आशा न रही।

कौरव-पक्ष में घोर शोक छा गया। उनका साहस समाप्त हो गया। दुर्योधन को लगा मानो उसके हाथ-पैर टूट गये। उसके नेत्रों के सामने अंधकार छा गया। भीष्म और द्रोण को मृत्यु के घाट उतारने वाले पाण्डवों से वह भयभीत हो गया। उसने आज प्रथम बार पाण्डवों की शक्ति का अनुमान लगाया। उसका भ्रम चूर्ण हो गया, परन्तु अब उससे कोई लाभ नहीं था।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

१०

भीष्म के निधन के पश्चात् कर्ण ने युद्ध में भाग लिया था परन्तु आचार्य द्रोण के रहते उसे प्रधान सेनापति बनने का अवसर न मिला। जब द्रोण परलोक सिधार गये तो कर्ण ने प्रधान सेनापति के पद् को सुशोभित किया। अब उसे पाण्डवों से सीधा मोर्चा लेने का अवसर मिला।

कर्ण ने दुर्योधन को समझाया कि अभी तक उनकी पराजय के कारण दादा भीष्म और आचार्य द्रोण थे। उनके हृदयों में व्याप्त पाण्डवों की ममता उन्हें पाण्डवों पर जमकर प्रहार नहीं करने देती थी। फलस्वरूप कौरवों की निरन्तर हार होती गई।

कर्ण को सेनापति-पद् पर आरूढ़ कर दुर्योधन कुछ निश्चिन्त हुआ। उसे अब विश्वास था कि उसका सेनापति विश्वासपात्र है। वह अपने हृदय में पाण्डवों के प्रति ममता के स्थान पर द्वेष रखता है। आशा और उमंग से उसका सिर ऊपर उठा गया। उसकी छाती उत्साह से फूल उठी। कर्ण की वीरता और उसके पराक्रम में उसे पूर्ण विश्वास था।

दुर्योधन ने कर्ण के पक्ष में सेनापति होने की घोषणा की तो महाराज शल्य कुढ़ कर रह गये। उन्हें अपने रहते कर्ण का सेनापति बनना अपमान जनक प्रतीत हुआ।

कौरव-सेना में कुछ उत्साह का संचार हुआ। उन्होंने भीष्म तथा द्रोण को भुला देने का प्रयास किया।

कर्ण के सेनापति बनने का समाचार बाणों की शय्या पर पड़े भीष्म के कानों में पहुँचा तो उन्होंने एक सेवक को भेजकर दुर्योधन को बुलाया और मुस्करा कर बोले, "बेटा दुर्योधन! तुमने मुझ पर और

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आचार्य द्रोण पर विश्वासघाती होने का दोषारोपण किया था। हमने इस महायुद्ध का इतने दिन तक संचालन किया और इस अधर्म-युद्ध में इतने दिन धर्म का सामना किया। अब देखते हैं तुम्हारा मित्र कर्ण पाण्डवों के सामने कितने दिन ठहर पाता है।' यह कह कर दादा भीष्म ने अपने नेत्र बन्द कर लिये। इनके अतिरिक्त उन्होंने अन्य कोई शब्द उच्चारण नहीं किया।

दुर्योधन अपने शिविर को लौटा तो कर्ण शिविर के सामने खड़ा था। कर्ण को देख कर दुर्योधन गम्भीर वाणी में बोला, 'कर्ण! मुझे अभी-अभी दादा भीष्म ने चुनौती दी है। उन्होंने मुझ से उनपर लगाये गये आक्षेप का उत्तर माँगा है। वह उत्तर देना तुम्हारी वीरता पर निर्भर करता है। दादा भीष्म को अपनी पराजय पर भी गर्व है। वह कहते हैं कि वह और आचार्य द्रोण पराजित होते हुए भी इतने दिन तक पाण्डवों के सामने डटे रहे। अब देखना है कि कर्ण कितने दिन पाण्डवों से लोहा लेता है।'

अभिमानी कर्ण यह सुन कर गम्भीर वाणी में बोला, 'महाराज दुर्योधन! आपकी आज तक की पराजय के कारण केवल दादा भीष्म और आचार्य द्रोण थे। यदि मैं प्रथम दिन से सेनापति होता तो आपको यह दिन देखना न पड़ता। कौरव-पक्ष की आज तक जो क्षति हुई है वह सब आचार्य द्रोण और दादा भीष्म ने जान-बूझ कर कराई है।

मैं कितना शीघ्र इस क्षति को पूरा करता हूँ, तुम देखना।'

दुर्योधन को कर्ण के मुख से यही बात सुनने की आशा थी। सूर्य देवता उदय हुआ चाहते थे और रणभेरी बजने का समय हो गया था। दुर्योधन ने कर्ण के गले में प्रधान सेनापति का हार पहिना दिया और कर्ण रणभूमि की ओर बढ़ गया।

कर्ण ने उस दिन आधी रात से ही उठ कर अपनी सेना को अभेद्य व्यूह के रूप से गठित किया था। पाण्डव-पक्ष के व्यूह की रचना

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अर्जुन ने की थी। वही पाण्डवों के सेनापति थे।

उस दिन युद्ध विचित्र प्रकार से चला। सामूहिक आक्रमणों के स्थान पर व्यक्तिगत युद्ध मुख्य रूप से लड़े गये। अर्जुन संसप्तकों से युद्ध कर रहे थे। भीम अश्वस्थामा से लड़ रहे थे। धृष्टद्युम्न, सात्यिकि और शिखण्डी इधर-उधर शत्रुओं का संहार कर रहे थे। अन्य राजे भी इसी प्रकार युद्ध में रत थे।

कर्ण ने युद्ध में प्रवेश करते ही सर्वप्रथम पांचाल देश के वीरों को समाप्त करने का बीड़ा उठाया। उसकी अर्जुन से मुठभेड़ नहीं हुई।

अश्वस्थामा अस्त्र-शस्त्र संचालन में बहुत दक्ष्य था, परन्तु भीम के सामने उनका सब उत्साह और रण-कौशल फीका पड़ता जा रहा था। भीम ने अश्वस्थामा को मूर्च्छित कर दिया। पिता की मृत्यु के शोक ने उसे निरुत्साहित कर दिया था।

अर्जुन के सामने संसप्कत त्राहि-त्राहि करने लगे। अश्वस्थामा सचेत होकर संसप्तकों की रक्षा के लिये जा पहुंचा। अश्वस्थामा ने अर्जुन को ललकारा तो अर्जुन संसप्तकों को छोड़ कर अश्वस्थामा पर टूट पड़े। अर्जुन की मार के सामने अश्वस्थामा अधिक देर न ठहर सका। वह मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर गया।

अर्जुन ने फिर अपना रुख संसप्तकों की ओर बदला तो बीच में महारथी दण्डधर आगये। दण्डधर ने अपने हाथी को आगे बढ़ा कर कृष्ण पर तोमर का वार किया। अर्जुन ने तोमर को बीच में ही काट कर एक तीर से दण्डधर का सिर धड़ से प्रथक कर दिया। दण्डधर को गिरते देख उसका भाई अर्जुन से आ भिड़ा। अर्जुन ने उसे भी धरा-शायी कर दिया।

अर्जुन निर्भीक होकर संसप्तकों में घुस गये। उनके हृदय में उनके प्रति क्रोधाग्नि धधक रही थी, क्योंकि उन्होंने ही अर्जुन को अभिमन्यु की रक्षा से वंचित किया था। अर्जुन ने उनका चुन-चुन कर संहार करना आरम्भ किया। अर्जुन के वाणों की मार को वे

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सहन न कर सके।

संसप्तकों का विध्वंस देख कर नारायणी सेना अर्जुन के सामने आगई। सत्यसेन ने क्रोधित होकर अपने तोमर से कृष्ण पर प्रहार किया, जिससे कृष्ण का बाँया हाथ घायल हो गया। कृष्ण के हाथ से घोड़ा हाँकने का चाबुक भूमि पर गिर गया। यह देख कर अर्जुन की क्रोधाग्नि अत्यन्त प्रबल हो गई। उन्होंने एक ही बाण से सत्यसेन को समाप्त किया और तथा चित्रवर्मा चित्रसेन को भी यमलोक पहुँचा दिया।

अर्जुन के शिष्य सात्यकि ने कौरव-पक्ष में हाहाकार का वातावरण उपस्थित कर दिया। उसने कैकयराज को यमलोक पहुंचाकर उनकी सेना को रणभूमि से भगा दिया।

कर्ण पांचालों को नष्ट करने में अपनी समस्त शक्ति लगा रहा था। यह देखकर नकुल सामने आडटे, परन्तु कर्ण के बाणों ने उन्हें घायल कर दिया। वह कर्ण के सामने न ठहर सके।

इसी प्रकार युद्ध होते-होते भुवनभास्कर अस्ताचल को चले गये। शांति का बिगुल बजा और दोनों पक्षों के सैनिक अपने-अपने शिविरों को लौट गये।

उस दिन युद्ध से दुर्योधन को संतोष रहा परन्तु जो इच्छा वह लिये बैठा था वह पूर्ण न हो सकी। रात्रि को कर्ण और दुर्योधन की मंत्रणा हुई, जिसमें कर्ण ने प्रण किया, 'महाराज! कल या तो अर्जुन का निधन मेरे हाथों से होगा अन्यथा मैं स्वयं वीरगति को प्राप्त हूँगा। यह सत्य है कि अर्जुन के पास घातक अस्त्र हैं, अटूट रथ है, अक्षय तूणीर है और सबसे प्रबल शक्ति जो उसके पास है वह कृष्ण की नीति है परन्तु यह सब होने पर भी यदि मुझे योग्य सारथी मिल जाये तो मैं अर्जुन पर विजय प्राप्त कर सकता हूँ। यदि आप महाराज शल्य को इस कार्य के लिये उद्यत कर सकें तो कल के युद्ध की बाजी अपने हाथ रहेगी।'

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कर्ण के सुझाव से सहमत होकर दुर्योधन स्वयं महाराज शल्य के पास गये और चाटुकारिता से उन्हें कर्ण के सारथ्य के लिये उद्यत किया।

दुर्योधन ने शल्य को धोखे से अपने पक्ष में कर लिया था। पाण्डवों के सगे मामा होने पर भी उन्होंने दुर्योधन के धोके में आकर उसे वचन दे दिया था और उनकी ओर से युद्ध कर रहे थे।

महाराज शल्य की सारथ्य के लिये स्वीकृति प्राप्त कर दुर्योधन ने यह समाचार कर्ण को दिया तो कर्ण हर्ष से फूलान समाया उठा। महाराज शल्य ने दुर्योधन से स्पष्ट कह दिया था कि वह सारथ्य केवल इसी शर्त पर स्वीकार कर सकते हैं कि उन्हें रथ-संचालन की पूर्ण स्वतन्त्रता हो। वह जैसी परिस्थिति देखेंगे उसी के अनुसार रथ-संचालन करेंगे। उनके रथ-संचालन में कर्ण का किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं होगा।

यह निश्चित हो जाने पर कर्ण का रथ सजाया गया और शल्य ने सारथ्य ग्रहण किया। कर्ण सज-धजकर गर्व से रथ पर बैठा। मारू बाजे के स्वर से आकाश निनादित हुआ। कर्ण ने सहर्ष अपना शंख फूंका।

शल्य को सूत-पुत्र के सारथ्य का कार्य सौंपा गया था, इससे उनका हृदय ग्लानि से भरा हुआ था। उन्हें युधिष्ठिर को दिया गया अपना वचन याद था। उन्होंने युधिष्ठिर को वचन दिया था कि वह समर-भूमि में कर्ण को निरन्तर निरुत्साहित करते रहेंगे।

कर्ण युद्ध भूमि में बहुत शीघ्र पहुंचना चाहता था और शल्य रथ को धीरे-धीरे हाँक रहे थे। यह देखकर कर्ण बोला, 'महाराज! तनिक शीघ्रतापूर्वक रथ युद्ध-भूमि में ले चलिये।'

शल्य बोले, 'कर्ण! मैं रथ-संचालन में कोई कमी नहीं आने दूँगा, परन्तु सोच रहा हूँ कि अर्जुन से तुम कैसे युद्ध कर सकोगे। जिसके बाणों को दादा भीष्म जैसे बालब्रह्मचारी सहन न कर सके,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उन्हें तुम कैसे सहन करोगे ? तुम व्यर्थ अपने प्राण गंवाने की बात सोच रहे हो कर्ण ! अर्जुन के साथ युद्ध में तुम्हारा विजयी होना असम्भव है।'

शल्य की बात सुनकर कर्ण के नेत्र अंगारों के समान दहकने लगे, परन्तु वह अपने क्रोध को पी गया। वह शल्य को किसी प्रकार भी अप्रसन्न नहीं कर सकता था।

कर्ण युद्ध-क्षेत्र में पहुंच कर घन-गर्जन के समान ललकारा, 'पाण्डवो ! कहाँ है वह अर्जुन जो कल दिन भर मुझसे मुँह छिपाये इधर-उधर फिरता रहा। वह अपने को योद्धा समझता है तो मेरे सामने आये और अपनी वीरता का परिचय दे।'

कर्ण की गर्वपूर्ण बात सुनकर महाराज शल्य बोले, 'बेटा कर्ण ! क्यों व्यर्थ काल का आह्वान कर रहे हो ? मैं नहीं समझता कि तुम्हें क्या हो गया है, जो अपने शीर्ष को रण-चण्डी की भेंट चढ़ाने के लिये इस प्रकार उतावले हो रहे हो। अर्जुन को ललकार कर क्यों अपनी मृत्यु को पुकार रहे हो। उससे युद्ध करना तुम्हारे वश की बात नहीं है।'

शल्य की यह बात सुनकर कर्ण के क्रोध की सीमा न रही। वह बोला, 'महाराज शल्य ! दुर्योधन के आदेश से मैं चुपचाप आप की बातें सहन कर रहा हूँ। यदि उनका आदेश न होता तो में एक क्षण में आपको यमलोक की यात्रा करा देता।'

शल्य ने कर्ण को हतोत्साहित कर दिया। जब वह उत्साह में भर कर धनुष उठाता था, तब शल्य ऐसी बातें कहते थे कि कर्ण का तन-बदन जल जाता था। उसका मन क्षुब्ध हो गया।

कर्ण ने देखा महाबली भीम उसके सामने आकर जम गया। वह उसे युद्ध के लिये ललकार रहा था। कर्ण ने क्रोधित होकर एक बाण भीम की छाती में मारा जिससे रक्त की धार बह चली। तीर के लगते ही भीम ने रौद्र रूप धारण कर लिया। वह क्रोधित होकर कर्ण

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कर्ण के सुझाव से सहमत होकर दुर्योधन स्वयं महाराज शल्य के पास गये और चाटुकारिता से उन्हें कर्ण के सारथ्य के लिये उद्यत किया।

दुर्योधन ने शल्य को धोखे से अपने पक्ष में कर लिया था। पाण्डवों के सगे मामा होने पर भी उन्होंने दुर्योधन के धोके में आकर उसे वचन दे दिया था और उनकी ओर से युद्ध कर रहे थे।

महाराज शल्य की सारथ्य के लिये स्वीकृति प्राप्त कर दुर्योधन ने यह समाचार कर्ण को दिया तो कर्ण हर्ष से फूलान समाया उठा। महाराज शल्य ने दुर्योधन से स्पष्ट कह दिया था कि वह सारथ्य केवल इसी शर्त पर स्वीकार कर सकते हैं कि उन्हें रथ-संचालन की पूर्ण स्वतन्त्रता हो। वह जैसी परिस्थिति देखेंगे उसी के अनुसार रथ-संचालन करेंगे। उनके रथ-संचालन में कर्ण का किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं होगा।

यह निश्चित हो जाने पर कर्ण का रथ सजाया गया और शल्य ने सारथ्य ग्रहण किया। कर्ण सज-धजकर गर्व से रथ पर बैठा। मारू बाजे के स्वर से आकाश निनादित हुआ। कर्ण ने सहर्ष अपना शंख फूंका।

शल्य को सूत-पुत्र के सारथ्य का कार्य सौंपा गया था, इससे उनका हृदय ग्लानि से भरा हुआ था। उन्हें युधिष्ठिर को दिया गया अपना वचन याद था। उन्होंने युधिष्ठिर को वचन दिया था कि वह समर-भूमि में कर्ण को निरन्तर निरुत्साहित करते रहेंगे।

कर्ण युद्ध भूमि में बहुत शीघ्र पहुंचना चाहता था और शल्य रथ को धीरे-धीरे हाँक रहे थे। यह देखकर कर्ण बोला, 'महाराज! तनिक शीघ्रतापूर्वक रथ युद्ध-भूमि में ले चलिये।'

शल्य बोले, 'कर्ण! मैं रथ-संचालन में कोई कमी नहीं आने दूँगा, परन्तु सोच रहा हूँ कि अर्जुन से तुम कैसे युद्ध कर सकोगे। जिसके वाणों को दादा भीष्म जैसे बालब्रह्मचारी सहन न कर सके,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उन्हें तुम कैसे सहन करोगे ? तुम व्यर्थ अपने प्राण गंवाने की बात सोच रहे हो कर्ण ! अर्जुन के साथ युद्ध में तुम्हारा विजयी होना असम्भव है।'

शल्य की बात सुनकर कर्ण के नेत्र अंगारों के समान दहकने लगे, परन्तु वह अपने क्रोध को पी गया। वह शल्य को किसी प्रकार भी अप्रसन्न नहीं कर सकता था।

कर्ण युद्ध-क्षेत्र में पहुंच कर घन-गर्जन के समान ललकारा, 'पाण्डवो ! कहाँ है वह अर्जुन जो कल दिन भर मुझसे मुँह छिपाये इधर-उधर फिरता रहा। वह अपने को योद्धा समझता है तो मेरे सामने आये और अपनी वीरता का परिचय दे।'

कर्ण की गर्वपूर्ण बात सुनकर महाराज शल्य बोले, 'बेटा कर्ण ! क्यों व्यर्थ काल का आह्वान कर रहे हो ? मैं नहीं समझता कि तुम्हें क्या हो गया है, जो अपने शीर्ष को रण-चण्डी की भेंट चढ़ाने के लिये इस प्रकार उतावले हो रहे हो। अर्जुन को ललकार कर क्यों अपनी मृत्यु को पुकार रहे हो। उससे युद्ध करना तुम्हारे वश की बात नहीं है।'

शल्य की यह बात सुनकर कर्ण के क्रोध की सीमा न रही। वह बोला, 'महाराज शल्य ! दुर्योधन के आदेश से मैं चुपचाप आप की बातें सहन कर रहा हूँ। यदि उनका आदेश न होता तो मैं एक क्षण में आपको यमलोक की यात्रा करा देता।'

शल्य ने कर्ण को हतोत्साहित कर दिया। जब वह उत्साह में भर कर धनुष उठाता था, तब शल्य ऐसी बातें कहते थे कि कर्ण का तन-बदन जल जाता था। उसका मन क्षुब्ध हो गया।

कर्ण ने देखा महाबली भीम उसके सामने आकर जम गया। वह उसे युद्ध के लिये ललकार रहा था। कर्ण ने क्रोधित होकर एक बाण भीम की छाती में मारा जिससे रक्त की धार बह चली। तीर के लगते ही भीम ने रौद्र रूप धारण कर लिया। वह क्रोधित होकर कर्ण

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पर बुरी तरह टूट पड़ा। भीम ने एक विषैले अस्त्र का कर्ण पर प्रहार किया, जिससे कर्ण मृतवत होकर रथ पर गिर गया। शल्य चतुराई से रथ को वहाँ से हटा कर एक ओर ले गये।

कर्ण ने सचेत होकर धर्मराज युधिष्ठिर पर आक्रमण किया। इस युद्ध में कर्ण ने युधिष्ठिर और उनके साथियों को लोहूलुहान कर दिया।

युधिष्ठिर की यह दशा देख कर शल्य बोले, 'कर्ण ! होश में आ। तू अपनी शक्ति इन लोगों पर व्यर्थ नष्ट कर देगा तो फिर थके घोड़ों को लेकर अर्जुन से क्या युद्ध करेगा ? क्या तू अपनी आज की प्रतिज्ञा भूल गया ?' यह कह कर शल्य ने कर्ण का ध्यान युधिष्ठिर और उनके साथियों की ओर से हटा दिया।

कर्ण की दृष्टि भीम पर गई, जो दुर्योधन को धूलिधूसरित करने की चेष्टा में था। उसने दुर्योधन की बुरी गत बना दी थी। उसके होश उड़ रहे थे।

कर्ण ने दुर्योधन की रक्षा के लिये अपना रथ उस ओर बढ़ा दिया। नकुल और सहदेव घायल युधिष्ठिर को उठा कर शिविर में ले गये।

अर्जुन संसप्तकों को समाप्त कर वहाँ पहुंचे, जहाँ उन्होंने युधिष्ठिर और कर्ण का घमासान युद्ध होता सुना था। युधिष्ठिर को वहाँ न पाकर अर्जुन चिंतित हो गये। उन्हें पता चला कि आहत धर्मराज को नकुल और सहदेव शिविर में उठा कर ले गये।

कृष्ण तथा अर्जुन ने वहाँ जाकर धर्मराज को देखा। धर्मराज ने समझा कि अर्जुन कर्ण पर विजय प्राप्त करके आया है। परन्तु जब उन्हें पता चला कि कर्ण अभी जीवित है तो वह सक्रोध बोले, 'अर्जुन ! धिक्कार है तुम्हारा गाण्डीव और तुम्हारी प्रतिज्ञा। जिन दिव्यास्त्रों को अपने पास रखकर तुम शत्रु का नाश नहीं कर सकते, उन्हें अपने पास रखकर कलंकित न करो।'

युधिष्ठिर की भर्त्सना सुनकर अर्जुन मर्माहत हो गये। उन्होंने

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

क्रोधित होकर अपनी कृपाण निकाली और बिजली के समान युधिष्ठिर पर झपटे परन्तु कृष्ण अर्जुन को डाट कर बोले, 'अर्जुन ! क्या तुम्हारा मस्तिष्क खराब हो गया है ? कृपाण म्यान में रखो ।'

अर्जुन धर्मराज की ओर देख कर बोले, 'कृष्ण ! मैं मृत्यु को हँसकर अपनी छाती से लगा सकता हूँ, परन्तु अपमान सहन नहीं कर सकता ।'

कृष्ण बोले, 'क्या बच्चों जैसी बातें करते हो अर्जुन ! धर्मराज को कर्ण ने आहत किया है । इसी से इनका मन कर्ण के प्रति क्रोध से जल रहा है । यह उसका निधन देखना चाहते हैं । यह क्रोधाग्नि में भूल गये कि इन्हें तुमसे कैसी बातें करनी चाहिएँ । परन्तु देख रहा हूँ कि तुम सचेत होकर भी अचेत हो गये ।'

अर्जुन अपने क्रोध को शान्त करके कृपाण म्यान में रख कर बोले, 'धर्मराज ! आप आहत होकर यहाँ शय्या पर पड़े हैं । आपको क्या पता कि युद्ध में हम पर क्या गुजर रही है । मैं यहाँ आपकी दशा देखने आया था, भर्त्सना सुनने नहीं । भीम अकेला कर्ण से जूझ रहा हैं । मैं संसप्तकों का विनाश करके लौटा हूँ । मार्ग में मुझे अश्वत्थामा से युद्ध करना पड़ा ।

आप यों धर्मराज हैं और सभी आपको धर्मराज कहते हैं, परन्तु क्या धर्मराज का यही धर्म था कि आप जुआ खेलते ? आप जुआ खेलकर हमारा सब राजपाट न खो देते तो आज क्यों कर्ण से जूझना पड़ता ? क्यों हम वन-वन मारे-मारे फिरते ? क्यों पांचाली का अपमान होता ? क्यों अभिमन्यु मारा जाता ? यह सब सहन करके भी हमने कभी आपके सामने जुबान नहीं हिलाई । परन्तु आज जब आप हमारी भी भर्त्सना करने पर उतारू हो गये तो जुबान खुल गई । मैं भविष्य में कभी इस प्रकार के अपमानसूचक शब्द सहन नहीं करूँगा ।'

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

यह सुनकर धर्मराज युधिष्ठिर उठ कर बैठ गये। उन्हें अपने शब्दों पर हार्दिक खेद हुआ। वह अपनी भूलें स्वीकार करके बोले, 'बीर अर्जुन ! यह सत्य है कि सब अनर्था की जड़ मात्रमैं हूँ। मैं तुमसे सविनम्र प्रार्थना करता हूँ कि कृपाण निकालो और मुझ पापी का प्राणान्त करदो। मैं वास्तव में इसी योग्य हूँ। मुझे इतने नीच कार्य करने के पश्चात् जीने का कोई अधिकार नहीं है।'

धर्मराज की यह बात सुनकर अर्जुन पानी-पानी हो गये। उन्होंने आगे बढ़कर अपने बड़े भाई के चरण छूकर प्रार्थना की, 'धर्मराज ! अर्जुन का अपराध क्षमा करके आशीर्वाद दें कि वह कर्ण का निधन करके संध्या को सकुशल लौटे।'

धर्मराज युधिष्ठिर गद्-गद् हो गये। उन्होंने अर्जुन को छाती से लगाकर आशीर्वाद दिया। अर्जुन समर-भूमि की ओर चल दिये।

भीम को युद्ध में घायल करके कर्ण दूसरी ओर पाण्डव-सेना का संहार करने में लगा हुआ था। कर्ण के हटने पर दुःशासन भीम की ओर लपका तो आहत होते हुए भी भीम उस पर टूट पड़े। भीम ने दुश्शासन के सारथी को मृत्यु के घाट उतार दिया और दुःशासन पर गदा का इतना तीव्र प्रहार किया कि वह रथ से बहुत दूर जाकर गिरा। उसका रथ चूर-चूर हो गया। भीम लपक कर दुःशासन की छाती पर जा चढ़े और क्रुद्ध वाणी में बोले, 'नीच दुःशासन ! तेरा काल इस समय तेरी छाती पर बैठा है। तूने जिन हाथों को पांचाली का चीर-हरण करने के लिये बढ़ाया था, ला पहिले उन्हें तोड़दूँ।' यह कह कर भीम ने दुःशासन के दोनों हाथ तोड़ कर उसके शशीर से पृथक कर दिये और फिर उसकी छाती चीर डाली।

भीम ने देखा अर्जुन का रथ उनके सामने खड़ा था। भीम दुःशासन की छाती का रक्तपान करते हुए बोले, 'कृष्ण ! आज मेरे हृदय की दहकती हुई वह ज्वाला शान्त हुई, जो उस दिन भड़की थी जब इस पापी ने पांचाली का चीर-हरण करने के लिये

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हाथ बढ़ाया था।'

कृष्ण ने गम्भीर वाणी में कहा, 'तुम धन्य हो महाबली भीम ! तुम्हारे प्रण की पूर्ति देख कर मेरा हृदय हर्ष से भर गया।' यह कह कर उन्होंने अर्जुन का रथ कर्ण की ओर बढ़ा दिया।

युद्ध की यह भयानक स्थिति देख कर अश्वस्थामा दुर्योधन से बोला, 'दुर्योधन ! इस महायुद्ध में अगणित सैनिक खेत रहे। हस्तिनापुर में तुम्हें अनेकों विधवाएँ विलाप करती मिलेंगी। उन विधवाओं पर राज्य करके तुम्हें क्या मिलेगा ? इस महाकाल के मुख में जब सब-कुछ ही चला जायेगा तो राज्य क्या वन्य-पशुओं पर करोगे ? यहाँ जब कोई राज्य भोगने को ही न रहेगा तो क्या स्वर्ग से तुम्हारे भाई राज्य करने आयेंगे ? मेरा कहा मानो, अब इस युद्ध को समाप्त कर दो। युधिष्ठिर मेरा आग्रह स्वीकार कर लेंगे।'

अश्वस्थामा की नीतिकुशल बातें दुर्योधन को विषैले बाणों के समान लगीं। वह बोला, 'अश्वस्थामा ! मैं मानता हूँ कि तुम्हारी बातें कौरव और पाण्डव, दोनों के हित में हैं, परन्तु अब स्थिति वह बन गई है कि न तो पाण्डव ही अभिमन्यु और घटोत्कच के निधन को भूल सकते हैं और न मैं ही दादा भीष्म, आचार्य द्रोण, पुत्र लक्ष्मण और दुःशासन की मृत्यु को भुला सकता हूँ। इस लिये इस समय की संधि से मैं मर कर वीर गति प्राप्त करने को अधिक उत्तम समझता हूं।

इस समय मैं कर्ण और अर्जुन का युद्ध देखना चाहता हूँ। कर्ण अर्जुन से युद्ध करने को बहुत लालायित था। आज कर्ण के मन क ' निकल जाने दो। यह महायुद्ध कर्ण के ही भरोसे पर लड़ा गया था।'

कर्ण और अर्जुन का घोर युद्ध ठन गया। कभी कोई किसी की प्रत्यंचा को काट डालता था और कभी कोई। दोनों एक दूसरे को घायल कर रहे थे। दोनों के बदन रक्त से भीग रहे थे। दोनों लोहू-लुहान थे।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आज कृष्ण भी कर्ण की मार से मुक्त न रह सके। उन्हें घायल होते देख अर्जुन के रक्त में उबाल आ गया। उन्होंने कर्ण पर इतनी तीव्र बाण-वृष्टि की कि वह हक्का-बक्का रह गया।

धनुर्विद्या में परास्त होकर कर्ण ने अर्जुन को नागास्त्र का लक्ष्य बनाना चाहा तो शल्य बोले, 'कर्ण ! इस अस्त्र से अर्जुन का बाल भी बींका न होगा ?' परन्तु कर्ण ने शल्य की बातों पर ध्यान न देकर नागास्त्र का प्रहार कर दिया।

नागास्त्र को आते देख श्रीकृष्ण ने रथ के घोड़ों को घुटनों के बल बिठा दिया। इससे रथ टेढ़ा हो गया, और अस्त्र अर्जुन के किरीट को थोड़ा सा काटता हुआ आगे निकल गया।

नागास्त्र से बचकर अर्जुन ने एक ऐसा तीर छोड़ा। तभी अचानक कर्ण के रथ का पहिया कीचड़ में फँस गया। अर्जुन बाण-वर्षा बन्द करने को थे कि कृष्ण ललकार कर बोले, 'अर्जुन ! यही समय है। इस समय का धर्म भविष्य में तुम्हारी कायरता कहलायेगा।'

अर्जुन ने गाण्डीव संधानकर कर्ण पर अनवरत बाण-वृष्टि करनी आरम्भ करदी।

कर्ण भी युद्ध में जमकर अर्जुन पर बाण-वृष्टि करने लगा, कर्ण अपने रथ का पहिया कीचड़ से निकालता हुआ अर्जुन से बोला, 'अर्जुन ! धर्म कहता है कि इस अवसर पर तुम्हें बाण चलाना बन्द कर देना चाहिए। निरस्त्र पर वार करना अधर्म है।'

यह सुनकर कृष्ण ललकार कर बोले, 'जब सिर पर मृत्यु मँडराती है तो अधर्मी भी धर्म की दुहाई देते हैं कर्ण ! तुम्हारा धर्म उस समय कहाँ चला गया था जब कौरव सभा में पांचाली को चीर उतारने के लिये लाया गया था ? तुम्हारा धर्म तब कहाँ था जब तुम सात महारथियों ने मिल कर निरस्त्र बालक अभिमन्यु की निर्मम हत्या की थी ? आज तुम धर्म की दुहाई देने चले हो ?'

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अभिमन्यु का नाम कृष्ण के मुख पर आते ही अर्जुन कर्ण का काल बन गये। वह कर्ण को तीखे बाणों से बेधने लगे। अर्जुन ने अवसर देख कर एक बाण कर्ण के सिर का लक्ष्य करके छोड़ा, जिससे कर्ण निष्प्राण होकर गिर गया।

कर्ण के मृत्यु को प्राप्त होते ही पाण्डवों ने विजय-दुन्दभी बजादी। पाण्डव-पक्ष का वायुमंडल आनन्द से भर गया। उनकी विजय दुन्दभी को सुन कर कौरव-पक्ष में निराशा छा गई।

दुर्योधन कर्ण की मृत्यु का समाचार पाकर रो दिया। कौरव-पक्ष के महारथियों ने उसे लाख समझाने का प्रयास किया, परन्तु वे उसे धैर्य न बँधा सके। वह रोता-बिलखता अपने शिविर में चला गया। दुर्योधन के नेत्रों के सामने घोर निराशा का वातावरण था। उसने जो स्वप्न देखा था, उसकी छाया भी अब उसके नेत्रों के सामने से हट चुकी थी। वह किंकर्त्तव्यविमूढ़ सा अपने शिविर में जाकर अचेत होकर गिर गया।

धृतराष्ट्र को कर्ण के निधन का समाचार मिला तो वह बैठे-बैठे काँपने गये। दुःशासन की मृत्यु ने उनके हृदय को और भी विदीर्ण कर दिया। उन्हें अब अपनी पराजय के लक्षण स्पष्ट दिखाई देने लगे। उनके पुत्र दुर्योधन की रक्षा करने वाला अब कोई नहीं था। गांधारी दुःशासन की मृत्यु का समाचार प्राप्त कर अचेत हो गईं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

११

दादा भीष्म को कर्ण की मृत्यु का समाचार मिला तो उन्होंने दुर्योधन को बुलाया और गम्भीर वाणी में बोले, 'बेटा दुर्योधन ! तुम्हारा परम मित्र कर्ण भी अब मृत्यु का ग्रास हो गया। मैंने और द्रोण ने तुम्हारे विपक्षी पाण्डवों के शुभचिंतक होने पर भी पंद्रह दिन तक युद्ध-संचालन किया, परन्तु तुम्हारा परम हितैषी मित्र दो दिन भी पूरे न कर सका।

इस से तुम्हारे मन का वह भ्रम दूर हो जाना चाहिए कि हमने तुम्हारे साथ विश्वासघात किया।

मैं अब अंतिम बार तुमसे कहता हूँ कि तुम पाण्डवों से संधि करके कुरु-वंश को विनाश से बचाओ। विनाश में अब देर नहीं है।' केवल इतना यह कह कर दादा भीष्म ने नेत्र बन्द कर लिये। दुर्योधन बिना कोई उत्तर दिये अपने शिविर की ओर चल दिया। वह शिविर में पहुँचा तो कृपाचार्य आगये। कृपाचार्य का हृदय ग्लानि से भरा हुआ था। वह बोले, 'दुर्योधन ! जो होना था, सो हो चुका। दोनों पक्षों का शक्ति-परीक्षण हो गया। तुम्हारे लग-भग सभी महारथी युद्ध में खेत रहे। अब व्यर्थ ज़िद किस लिये कर रहे हो ? और क्या देखना शेष है ?

मेरा कहा मानो, युद्ध बन्द करदो। पाण्डवों के पास संधि-पत्र भेज दो। भाइयों से संधि करने में अपमान का प्रश्न नहीं उठता। पाण्डव तुम्हारे संधि-पत्र को ठुकरायेंगे नहीं, मुझे पूर्ण विश्वास है। कृष्ण भी इसे अस्वीकार नहीं करेंगे। यदि तुम चाहो तो मैं स्वयं यह संधि-पत्र लेकर पाण्डवों के शिविर में जाने को उद्यत हूँ।'

दुर्योधन बोला, 'आचार्य ! आप जो कुछ कह रहे हैं, वह मेरे

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हित की बात है। मुझे अब संदेह नहीं रहा कि विजय पाण्डवों की ही होगी। आप अभिमन्यु की मृत्यु के शोक से पीड़ित अर्जुन के हृदय की दशा को जानते हैं और भीम का प्रण भी आपसे छिपा नहीं है। पांचाली ने प्रतिज्ञा की हुई है कि जब तक उसके अपमान का बदला न लिया जायेगा तब तक वह भूमि-शयन करेगी। पाण्डवों की सब प्रतिज्ञाएँ पूर्ण हो चुकीं। केवल भीम की प्रतिज्ञा शेष है, और वह भी अवश्य पूर्ण होगी।

आप मेरे हित की बात सोच रहे हैं, परन्तु मैं अब वह रोगी हूँ जो कड़ुवी औषधि पीने की अपेक्षा प्राण देना अधिक सुखकर समझता है। अब न तो पाण्डव ही संधि-प्रस्ताव स्वीकार करेंगे और न मैं भेजूँगा ही। अपने परिवार को अपनी आँखों के समाने नष्ट कराकर मैं अकेला किस लिये जीवित रहूँ? इस समय संधि-प्रस्ताव भेजने को मैं कायरता समझता हूँ। संधि राजनीति का एक अंग अवश्य है, परन्तु अब संधि किस लिये? अब विजय या मृत्यु के अतिरिक्त मेरी अन्य कोई इच्छा नहीं है।'

तभी अश्वस्थामा आ पहुँचा। दुर्योधन ने पूछा, 'भाई अश्वस्थामा! अब किसे सेनापति बनाया जाये?'

अश्वस्थामा बोले, 'आयु, विद्या, बुद्धि और पराक्रम की दृष्टि से अब महाराज शल्य को सेनापति बनाना चाहिए।'

दुर्योधन को यह प्रस्ताव मान्य हुआ। इसकी स्वीकृति के लिये वह महाराज शल्य के शिविर में पहुँचे। उन्हें सादर प्रणाम करके दुर्योधन ने अपना प्रस्ताव उनके सामने रखा। वह बोला, 'मामा! यद्यपि रिश्ते में आप नकुल और सहदेव के सगे मामा हैं, उनसे कुछ प्रथक युधिष्ठिर भीम और अर्जुन के और फिर मेरा स्थान आता है; परन्तु आपने वचन-बद्ध होकर मेरा साथ दिया और जो वीरता दिखाई उसके लिये मैं आपका हृदय से आभार मानता हूँ। आप जैसे प्रतिज्ञा-पालक महारथी को प्राप्त कर मैं अपने को धन्य मानता हूँ। मैं आपसे सानुरोध प्रार्थना

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

करता हूँ कि आप हमारी सेना का प्रधान सेनापति-पद् ग्रहण करें।'

महाराज शल्य बोले, 'दुर्योधन ! मुझे तुम्हारा आग्रह मानने में संकोच नहीं है। मैं युद्ध-भूमि में पाण्डव तो क्या सुरराज भी आये तो उसका मुँह मोड़ सकता हूँ।'

सेनापतित्व का गौरव शल्य की नस-नस में भर गया। उनके नेत्र बन्द हो गये और धर्म-अधर्म का विचार मस्तिष्क से जाता रहा। उन्होंने सहर्ष अपनी स्वीकृति प्रदान की।

दुर्योधन ने उन्हें दूसरे दिन के युद्ध का सेनापति घोषित किया।

महाराज शल्य ने व्यूह-रचना की और स्वयं व्यूह के द्वार-रक्षक का भार सँभाला। अन्य कौरव-वीरों को यथास्थान नियुक्त कर पाण्डव-सेना पर आक्रमण करने का निश्चय किया।

शल्य की व्यूह-रचना को देख कर पाण्डवों ने भी अपनी सेना में पूर्ण तैयारी कर ली। धृष्टद्युम्न, सात्यकि और शिखंडी ने कौरवों के मुख्य द्वार पर जाकर महाराज शल्य से युद्ध किया और कृपाचार्य की सेना को भीम ने ललकारा।

धर्मराज युधिष्ठिर ने आज शल्य का रौद्र रूप देखा तो वह भी सात्यकि और धृष्टद्युम्न की सहायता के लिये व्यूह के मुख-द्वार पर पहुँच गये। युधिष्ठिर की तीखी बाण-वृष्टि के सामने कौरवों का ठहरना कठिन हो गया। शल्य ने आज पराक्रम दिखाने में कोई कसर नहीं रखी और ऐसी बाण-वर्षा की कि युधिष्ठिर का रथ बाणों की छाया में लुप्त हो गया परन्तु तभी युधिष्ठिर का एक बाण शल्य की छाती में लगा और वह मूर्च्छित होकर रथ पर गिर गये।

इस आघात से शल्य बहुत क्रोधित हुए। वह द्विगुण रोष के साथ युधिष्ठिर से लड़ने लगे, परन्तु युधिष्ठिर के बाणों ने उनके बदन को छलनी बना दिया। युधिष्ठिर ने शल्य के धनुष को काट कर फेंक दिया।

यह स्थिति देख कर शल्य तलवार लेकर रथ से कूद गये। भीम ने

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दूर से शल्य को तलवार लेकर धर्मराज युधिष्ठिर की ओर दौड़ते देखा तो वहीं से एक बाण मारा, जिससे शल्य की तलवार टूक-टूक होकर भूमि पर गिर गई। तब शल्य खाली हाथ ही युधिष्ठिर की ओर झपटे।

युधिष्ठिर ने शल्य को अपनी ओर आते देख कर एक ऐसा बाण मारा, जिससे उनकी लोक-लीला समाप्त हो गई। शल्य के मरते ही पाण्डवों ने विजय-दुन्दभी बजादी। कौरव-सेना भाग खड़ी हुई। दुर्योधन ने लाख प्रयास किया, परन्तु सेना आगे बढ़ने को उद्यत न हुई। अर्जुन के बाणों के सामने कौन जाकर अपने प्राण देता।

यह स्थिति देखकर दुर्योधन भी अपने शिविर की ओर भागा। दुर्योधन को भागते देख कर अर्जुन ने उसे ललकारा। अर्जुन की ललकार सुन कर दुर्योधन ने अपना रथ रोका और अर्जुन के बाणों का उत्तर दिया। कौरव-सेना के उखड़ते हुए पैर फिर जम गये। पाण्डव भी अर्जुन की सहायता के लिये जा पहुँचे। दुर्योधन ने भयंकर युद्ध किया, परन्तु कहाँ अर्जुन और कहाँ दुर्योधन।

कृष्ण अर्जुन से बोले, 'अर्जुन! आज इस नीच की भी प्राण-लीला समाप्त होनी चाहिए। हमें आज ही इसे समाप्त कर विजयोत्सव मनाना है।'

अर्जुन बोले, 'कृष्ण! आपकी सम्मति मैं सहर्ष स्वीकार करता हूँ, परन्तु दुर्योधन को महाबली भीम ने मारने की प्रतिज्ञा की है। यह उन्हीं का शिकार है। मुट्ठी भर कौरव अब हमारा क्या बिगाड़ सकते हैं?'

दुर्योधन ने पूर्व दिशा के तालाब में एक पीला स्तम्भ बनवाया हुआ था। वह अपनी गदा लेकर उस तालाब की ओर भाग खड़ा हुआ और जल में जा छिपा। मार्ग में उसे संजय मिला। उसे उसने अपनी सारी सेना के विनाश की कथा सुनाई। अश्वस्थामा,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

करता हूँ कि आप हमारी सेना का प्रधान सेनापति-पद् ग्रहण करें।'

महाराज शल्य बोले, 'दुर्योधन ! मुझे तुम्हारा आग्रह मानने में संकोच नहीं है। मैं युद्ध-भूमि में पाण्डव तो क्या सुरराज भी आये तो उसका मुँह मोड़ सकता हूँ।'

सेनापतित्व का गौरव शल्य की नस-नस में भर गया। उनके नेत्र बन्द हो गये और धर्म-अधर्म का विचार मस्तिष्क से जाता रहा। उन्होंने सहर्ष अपनी स्वीकृति प्रदान की।

दुर्योधन ने उन्हें दूसरे दिन के युद्ध का सेनापति घोषित किया।

महाराज शल्य ने व्यूह-रचना की और स्वयं व्यूह के द्वार-रक्षक का भार सँभाला। अन्य कौरव-वीरों को यथास्थान नियुक्त कर पाण्डव-सेना पर आक्रमण करने का निश्चय किया।

शल्य की व्यूह-रचना को देख कर पाण्डवों ने भी अपनी सेना में पूर्ण तैयारी कर ली। धृष्टद्युम्न, सात्यकि और शिखंडी ने कौरवों के मुख्य द्वार पर जाकर महाराज शल्य से युद्ध किया और कृपाचार्य की सेना को भीम ने ललकारा।

धर्मराज युधिष्ठिर ने आज शल्य का रौद्र रूप देखा तो वह भी सात्यकि और धृष्टद्युम्न की सहायता के लिये व्यूह के मुख-द्वार पर पहुँच गये। युधिष्ठिर की तीखी बाण-वृष्टि के सामने कौरवों का ठहरना कठिन हो गया। शल्य ने आज पराक्रम दिखाने में कोई कसर नहीं रखी और ऐसी बाण-वर्षा की कि युधिष्ठिर का रथ बाणों की छाया में लुप्त हो गया परन्तु तभी युधिष्ठिर का एक बाण शल्य की छाती में लगा और वह मूर्च्छित होकर रथ पर गिर गये।

इस आघात से शल्य बहुत क्रोधित हुए। वह द्विगुण रोष के साथ युधिष्ठिर से लड़ने लगे, परन्तु युधिष्ठिर के बाणों ने उनके बदन को छलनी बना दिया। युधिष्ठिर ने शल्य के धनुष को काट कर फेंक दिया।

यह स्थिति देख कर शल्य तलवार लेकर रथ से कूद गये। भीम ने

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दूर से शल्य को तलवार लेकर धर्मराज युधिष्ठिर की ओर दौड़ते देखा तो वहीं से एक बाण मारा, जिससे शल्य की तलवार टूक-टूक होकर भूमि पर गिर गई। तब शल्य खाली हाथ ही युधिष्ठिर की ओर झपटे।

युधिष्ठिर ने शल्य को अपनी ओर आते देख कर एक ऐसा बाण मारा, जिससे उनकी लोक-लीला समाप्त हो गई। शल्य के मरते ही पाण्डवों ने विजय-दुन्दभी बजादी। कौरव-सेना भाग खड़ी हुई। दुर्योधन ने लाख प्रयास किया, परन्तु सेना आगे बढ़ने को उद्यत न हुई। अर्जुन के बाणों के सामने कौन जाकर अपने प्राण देता।

यह स्थिति देखकर दुर्योधन भी अपने शिविर की ओर भागा। दुर्योधन को भागते देख कर अर्जुन ने उसे ललकारा। अर्जुन की ललकार सुन कर दुर्योधन ने अपना रथ रोका और अर्जुन के बाणों का उत्तर दिया। कौरव-सेना के उखड़ते हुए पैर फिर जम गये। पाण्डव भी अर्जुन की सहायता के लिये जा पहुँचे। दुर्योधन ने भयंकर युद्ध किया, परन्तु कहाँ अर्जुन और कहाँ दुर्योधन।

कृष्ण अर्जुन से बोले, 'अर्जुन! आज इस नीच की भी प्राण-लीला समाप्त होनी चाहिए। हमें आज ही इसे समाप्त कर विजयोत्सव मनाना है।'

अर्जुन बोले, 'कृष्ण! आपकी सम्मति मैं सहर्ष स्वीकार करता हूँ, परन्तु दुर्योधन को महाबली भीम ने मारने की प्रतिज्ञा की है। यह उन्हीं का शिकार है। मुट्ठी भर कौरव अब हमारा क्या बिगाड़ सकते हैं?'

दुर्योधन ने पूर्व दिशा के तालाब में एक पीला स्तम्भ बनवाया हुआ था। वह अपनी गदा लेकर उस तालाब की ओर भाग खड़ा हुआ और जल में जा छिपा। मार्ग में उसे संजय मिला। उसे उसने अपनी सारी सेना के विनाश की कथा सुनाई। अश्वस्थामा,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कृपाचार्य और कृतवर्मा भी उसी ओर जा रहे थे। मार्ग में उनकी संजय से भेंट हुई तो उसने उन्हें दुर्योधन के विषय में बताया। उसने कहा, 'महाराज दुर्योधन इस समय तालाब में बने स्तम्भ में छिपे हैं। मैं महाराज धृतराष्ट्र के पास उनका संदेश लेकर जा रहा हूँ।'

अश्वस्थामा दुर्योधन की ओर चल दिया। रात्रि के अंधकार में उसने दुर्योधन को पुकारा। दुर्योधन ने अश्वस्थामा की आवाज पहिचान कर उसे उत्तर दिया।

उसी समय कुछ लोग उधर से पाण्डवों की सेना का भोजन लेकर जा रहे थे। उन्हें ज्ञात हो गया कि दुर्योधन तालाब के अन्दर बने खोखले स्तम्भ में छिपा है। यह सूचना उन्होंने पाण्डवों को जाकर दी।

पाण्डव सेना सहित तालाब पर आ गये। पाण्डव-सेना को तालाब की ओर आते देख कर अश्वस्थामा बोला, 'महाराज दुर्योधन! आप स्तम्भ में छिपे रहिए। मैं वट-वृक्ष के नीचे चला जाता हूँ। पाण्डव-सेना इधर आ रही है। मैं आपसे प्रतिज्ञा करता हूँ कि आज रात्रि में पाँचों पाण्डवों का वध कर दूँगा।'

तालाब के निकट पहुँच कर कृष्ण की अनुमति से सर्वप्रथम युधिष्ठिर ने दुर्योधन को ललकारा।

दुर्योधन बोला, 'मैं अकेला हूँ और घायल होकर अपनी रक्षा के लिये यहाँ पड़ा हूं। आप लोग इस समय जाकर विश्राम करें। मैं कल समर-भूमि में आपसे लड़ूँगा।'

युधिष्ठिर बोले, 'हमने निश्चय कर लिया है कि आज भोजन तुम्हें मार कर ही करेंगे। अपने बन्धु-बान्धवों को मरवाकर यहाँ छिपते तुझे लज्जा नहीं आई। तालाब से बाहर निकल और वीर-गति को प्राप्त हो।'

दुर्योधन बोला, 'मैं अकेला हूँ युधिष्ठिर! तुम ससैन्य हो। क्या यह युद्ध धर्म-विरुद्ध नहीं होगा? अकेले-अकेले मैं तुम पांचों भाइयों से लड़ने को उद्यत हूं।'

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

युधिष्ठिर बोले, 'नीच ! धर्म का मुख से उच्चारण करते तुझे लज्जा नहीं आती। बाहर निकल और एक से ही युद्ध कर।'

अब दुर्योधन पानी में छिपा नहीं रह सकता था। वह बाहर निकल आया। भीम से उसका युद्ध आरम्भ हो गया।

उसी समय एक ओर से बलरामजी वहाँ आ गये। सब ने बलराम जी का अभिवादन किया। भीम और दुर्योधन का गदा-युद्ध हो रहा था। बलरामजी बोले, 'मैं ब्यालीस दिन के तीर्थाटन पर गया था। आज अचानक यहाँ आ पहुँचा। मेरी यह उत्कट इच्छा थी कि किसी दिन अपने दोनों शिष्यों का गदा-युद्ध देखूँ। यह स्थान गदा-युद्ध के लिये बहुत उपयुक्त है। यहीं महाभारत का अंतिम निर्णय होगा।'

दुर्योधन और भीम का भयंकर गदा-युद्ध होने लगा। दुर्योधन ने भीम के कवच की कड़ी-कड़ी तोड़ डाली। यह देख कर कृष्ण अर्जुन से बोले, 'अर्जुन ! भीम युद्ध के जोश में अपनी प्रतिज्ञा को भूल गये। इन्हें किसी संकेत से इनकी प्रतिज्ञा याद दिलाओ।'

कृष्ण का संकेत पाकर अर्जुन ने अपनी जंघा पर हाथ मार कर भीम को ललकारा तो भीम को अपनी प्रतिज्ञा याद आई।

दुर्योधन भीम पर गदा का प्रहार करके नौ-दस हाथ ऊपर कूद जाता था और भीम प्रहार सहकर भी उसपर प्रहार न कर पाते थे। इस बार ज्यों ही प्रहार करके दुर्योधन ऊपर कूदा तो भीम ने उसका पैर पकड़ कर उसे भूमि पर दे मारा और एक ही वार में उनकी जंघा तोड़ डालीं। दुर्योधन की हड्डियाँ चकनाचूर हो गईं। वह उठने योग्य न रहा।

गदा-युद्ध में कमर से नीचे प्रहार करना वर्जित था। भीम का दुर्योधन की जंघा पर प्रहार देख कर बलराम क्रुद्ध हो गये। वह भीम को मारने के लिये दौड़े।

यह देख कर कृष्ण ने बलरामजी का हाथ पकड़ लिया और उन्हें भीम की प्रतिज्ञा की याद कराते हुए भरी सभा में पांचाली को दुर्योधन

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

द्वारा अपनी जंघा पर बिठाने की बात कही तो उनका क्रोध शान्त हुआ। फिर दुर्योधन के अन्याय और सात महारथियों द्वारा मिलकर अभिमन्यु को मारने की बात उन्होंने बलरामजी को सुनाई तो वह शान्त होकर बोले, 'ठीक है कृष्ण ! मुझे यह नीतिविरुद्ध कार्य अच्छा नहीं लगा। मैं अब यहाँ नहीं ठहर सकता।' इतना कहकर बलरामजी वहाँ से चले गये।

पाण्डव भी अपने शिविर को लौट गये।

कौरव-पक्ष में अब केवल अश्वस्थामा, कृतवर्मा और कृपाचार्य शेष रह गये। वे पाण्डवों के वहाँ से चले जाने पर दुर्योधन के पास गये। दुर्योधन के बदन की सब हड्डियाँ चकनाचूर हुई पड़ी थीं।

अश्वस्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा ने दुर्योधन को पुकारा तो उसने नेत्र खोल दिये। वह बोला, 'आचार्य-पुत्र अश्वस्थामा ! यह रोने का समय नहीं है। मैं न मरता तो मुझे खेद होता। मैं स्वर्ग में जाकर अपने बन्धु-बन्धुओं से भेंट करूँगा। उनके बिना मैं जीवित रह कर क्या करता ?'

अश्वस्थामा बोला, 'महाराज ! कुछ भी क्यों न हो, मैं ब्रह्मणत्व की सौगन्ध खाकर कहता हूँ कि आज रात्रि में पाण्डवों को उनके अन्याय का फल चखाये बिना न रहूँगा। मैंने निश्चय कर लिया है कि आज रात्रि में उनका मेरे हाथों निधन होगा।'

अश्वस्थामा की बात सुनकर दुर्योधन तनिक सँभल गया, [illegible] बुझते हुए दीपक में किसी ने कुछ बूँदें तेल की डाल दीं। उसने आशा-पूर्ण दृष्टि से अश्वस्थामा की ओर देखा।

दुर्योधन ने कृपाचार्य से एक कलश पानी मँगाकर अश्वस्थामा को कौरव-सेना का अंतिम सेनापति घोषित [illegible] कहा, 'मैं तुम्हारी प्रतीक्षा करूँगा अश्वस्थामा !'

SPS
891.433 Y 1 B

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE